# माध्यमिक कक्षा पाठ्यक्रम

# संस्कृत व्याकरण ( 246 )

## पुस्तक-1

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा-संस्थान

ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर- 62

नोएडा-201 309 ( उत्तर प्रदेश )

वेबसाइट : www.nios.ac.in  निर्मूल्य दूरभाष- 18001809393

**National Institute of Open Schooling**

A 24-25, Institutional Area, Sector-62

Noida-201309 (U.P.)

© राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान National Institute of Open Schooling

प्रथम संस्करण 2017 First Edition 2017 ( Copies)

ISBN (Book 1)

ISBN (Book 2)

ISBN (Book 3)

सचिव, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर- 62 नोएडा - 201 309
(उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित। ..... द्वारा मुद्रित।

# माध्यमिक कक्षा संस्कृत व्याकरण ( 246 )

## सलाहकार समिति

**प्रो. सरोज शर्मा**
**अध्यक्ष**
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा-संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

**डॉ. राजीव कुमार सिंह**
**निदेशक ( शैक्षिक )**
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा-संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

## पाठ्यक्रम निर्माण समिति

**प्रो. डॉ. अर्कनाथ चौधरी ( समिति अध्यक्ष )**
उप-कुलपति
श्री सोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालय
वेरावल -362266 (गुजरात)

**डॉ. नीरज कुमार भार्गव ( समिति के उपाध्यक्ष )**
सहायक प्राध्यापक (संस्कृताध्ययन विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
बेलुड-मठ, हावड़ा-711 202 (प. बंगाल)

**डॉ. हरि-राम-मिश्र**
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

**स्वामी वेदतत्त्वानन्द**
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुड मठ, मण्डल हावड़ा- 711 202 (प. बंगाल)

**डॉ. विजेन्द्र-सिंह**
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

**श्रीमान् मलय-पोडे**
सहायक प्राध्यापक (W.B.E.S.) (संस्कृत विभाग)
राणीबाँध सर्वकारीय महाविद्यालय
स्थानम्-राणीबाँध, मण्डलम्-बाँकुडा-722135 (प. बंगाल)

**श्री सुमन्त-चौधुरी**
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
सबं सजनीकान्त महाविद्यालय
पत्राचार-लुटुनिया, रक्षालय- सब
मण्डल-पश्चिम मेदिनीपुर- 721 166 (प. बंगाल)

**डॉ. राम-नारायण-मीणा**
सहायक निदेशक (शैक्षिक विभाग)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-201 309

## पाठ्यक्रम-समन्वयक

**डॉ. राम नारायण मीणा**
सहायक निदेशक (शैक्षिक विभाग)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-201 309

## पाठ्य विषय सामग्री निर्मित समिति

### संपादक मण्डल

**डॉ. नीरज कुमार भार्गव ( समिति के उपाध्यक्ष )**
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत अध्ययन विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानंद विश्वविद्यालय
बेलुर मठ, हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

**स्वामी वेदतत्त्वानन्द**
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानंद वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा 711202 (प. बंगाल)

### पाठ लेखक

**( पाठः 1-9 )**
**स्वामी वेदतत्त्वानन्द**
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुड-मठ, हावड़ा-711 202 (प. बंगाल)

**( पाठः 10-14 )**
**श्रीमान् जयदेवदिण्डा**
अनुसन्धाता (संस्कृताध्ययन विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
मण्डल-हावड़ा-711 202 (प.वङ्गम्)

**( पाठः 15-18 )**
**श्रीमान् सुमन्त चौधरी**
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
सबं सजनीकान्त महाविद्यालय
पत्रालय- लुटुनिया, रक्षालय- सबं
मण्डल- पश्चिम मेदिनीपुर-721 166 (प. बंगाल)

**( पाठः 19-25 )**
**डॉ. नीरज कुमार भार्गव**
सहायक प्राध्यापक (संस्कृताध्ययन विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
बेलुड-मठ, हावड़ा-711 202 (प. बंगाल)

**( पाठः 26-29 )**
**श्रीमान् राहुलगाजि**
अनुसन्धाता (संस्कृत विभाग)
यादवपुर विश्वविद्यालय
कलिकाता-700 032 (प. बंगाल)

### अनुवादक मण्डल

**डॉ. राम नारायण मीणा**
सहायक निदेशक (शैक्षिक विभाग)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-201 309

**डॉ. विजेन्द्र सिंह**
सहायक प्रो.
संस्कृत एवं उच्च शिक्षा संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

**श्री आशुतोष मिश्रा**
प्र. प्रधानाचार्य, रा.उ.मा. विद्यालय
मूसाखाड़, चन्दौली, उ.प्र.

**श्री पुनीत त्रिपाठी**
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-201 309

**श्री सुभाष बिश्नोई**
अनुसंधाता,
संस्कृत एवं उच्च शिक्षा संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

### रेखा चित्राङ्कन व मुख पृष्ठ चित्रण

**स्वामी हररूपानन्द**
रामकृष्ण मिशन, बेलुड मठ, मण्डल-हावड़ा-711 202 (प. बंगाल)

# आप से दो बातें

**अध्यक्षीय सन्देश**

प्रिय विद्यार्थी,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए आपका हार्दिक स्वागत है।

भारत अति प्राचीन और अति विशाल है। भारत का वैदिक वाङ्मय भी उतना ही प्राचीन, प्रशंसनीय और महान है। सृष्टिकर्ता भगवान् ही भारतीयों के सम्पूर्ण विद्याओं के प्रेरक है, ऐसा सिद्धांत शास्त्रों में प्राप्त होता है। भारत के अच्छे विद्वान, सामान्य जनमानस तथा अन्य ज्ञानी लोगों का प्राचीन काल में आदान-प्रदान का माध्यम संस्कृत भाषा ही थी ऐसा सभी को ज्ञात है। इतने लम्बे काल में भारत के इतिहास में जो शास्त्र लिखे गए, जो चिंतन उत्पन्न हुए, जो भाव प्रकट हुए वे सभी संस्कृत भाषा के भण्डार में निबद्ध हैं। इस भण्डार का आकार कितना, भाव कितने गंभीर, मूल्य कितना अधिक इसका निर्धारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्राचीन काल में भारतीय क्या-क्या पढ़ते थे, वो एक श्लोक के माध्यम से प्रकट होता है-

**अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।**
**पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ ( वायुपुराणम् 61.78 )**

इस श्लोक में चौदह प्रकार की विद्याएँ बताई गई हैं। चार वेद (और चार उपवेद, छः वेदाङ्, मीमांसा (पूर्वोत्तरमीमांस), न्याय (आन्वीक्षिकी) पुराण (अठारह मुख्य पुराण व उपपुराण) धर्मशास्त्र (स्मृति) ये चौदह विद्या कहलाते हैं। अनेक काव्य और बहुत शास्त्र हैं इन सभी विद्याओं का प्रवाह जल के समान ज्ञान प्रदान करने वाला प्रगति करने वाला और वृद्धि करने वाला लम्बे समय से चल रहा है। समाज के कल्याण के लिए भारत के विद्या दान परम्परा में गुरुकुलों में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेद, राजनीति, दण्डनीति, काव्य, काव्यशास्त्र और अन्य बहुत से शास्त्र पढ़ते-पढ़ाते थे।

विद्या के शिक्षण के लिए ब्रह्मचारी परिवार को छोड़कर गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम को धारण कर जीवन बिताते थे और इन विद्याओं में परंपरागत होते थे। इन विद्याओं में आज भी कुछ पारंगत लोग हैं। प्राकृतिक परिवर्तन के कारण, विदेशी आक्रमण के कारण, स्वदेश में हो रही उठा-पटक इत्यादि अनेक कारणों से पहले जैसा अध्ययन-अध्यापन की परम्परा अब छूटती जा रही है। इन पाठ्यक्रमों की परीक्षा प्रमाणपत्र इत्यादि आधुनिक शिक्षण पद्धति के द्वारा कुछ राज्यों में होता है, परंतु बहुत से राज्यों में नहीं होता है। अतः इन प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन, परीक्षण और प्रमाणीकरण का होना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर यह पाठ्यक्रम राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। लोगों के कल्याण के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है वैसा ज्ञान इन शास्त्रों कल्याण दृष्टि से कल्याणकारी हों। किसी को कोई दुख प्राप्त नहीं हो, कोई किसी को दुःख नहीं दे, इस प्रकार अत्यंत उदार उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस नाम से इस पाठ्यक्रम की रचना की गई है। विज्ञान शरीरारोग्य का चिंतन करता है, कला विषय मनोविज्ञान को तथा मनोविज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान का पोषण करता है। विज्ञान साधना स्वरूप और सुखोपभोग साध्य है। अतः निःसंदेह रूप से कहा जा सकता है कि कला विषय शाखा विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। लोग कला को छोड़कर विज्ञान से सुख नहीं प्राप्त कर सकते हैं परंतु विज्ञान को छोड़कर कला से सुख को अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

यह संस्कृत व्याकरण का पाठ्यक्रम छात्रानुकूल, ज्ञानवर्धक, लक्ष्यसाधक और पुरुषार्थ साधक है ऐसा मेरा मानना है।

इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन हिताभिलाषी, विद्वान, उपदेष्टा, पाठलेखक, त्रुटिसंशोधक और मुद्रणकर्ता ने साक्षात् या परोक्षरूप से सहायता की, उनको संस्थान पक्ष से हार्दिक कृतज्ञता ज्ञपित करते हैं, रामकृष्ण मिशन-विवेकानंद विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान् स्वामी आत्मप्रियानन्द जी का विशेष रूप से धन्यवाद जिनकी अनुकूलता और प्रेरणा के बिना इस कार्य की परिसमाप्ति दुष्कर थी।

इस पाठ्यक्रम के अध्येताओं का विद्या से कल्याण हो, सफल हो, विद्वान हो, सज्जन हो, देशभक्त हो, समाज सेवक हो ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

**अध्यक्ष**
**राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान**

# आप से दो बातें

**निदेशकीय वाक्**

प्रिय पाठक,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम को पढ़ने की इच्छा से उत्साहित भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरागी और उपासकों का हार्दिक स्वागत करते हैं। अत्यधिक हर्ष का विषय है, की गुरुकुलों में पढ़ाये जाने वाला पाठ्यक्रम हमारे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित किया गया है। आशा है कि लम्बे समय से हमारी संस्कृति से जो दूरी थी वह अब समाप्त हो जाएगी। हिन्दू, जैन, बौद्धों के धार्मिक, आध्यात्मिक और काव्यादि वाङ्मय प्रायः संस्कृत में लिखा हुआ है। इस 24 करोड़ मनुष्यों के प्रिय विषयों की भूमिका के माध्यम से प्रस्तुत प्रवेश योग्यता के द्वारा और मन को प्रसन्न करने के लिए माध्यमिक स्तर और उच्चतर माध्यमिक स्तर में कुछ विषय पाठ के माध्यम से सम्मिलित किए गए हैं। जैसे आंग्ल, हिन्दी आदि भाषा ज्ञान के बिना उस भाषा के लिखे गए माध्यमिक स्तरीय ग्रंथ पढ़ने में और समझने में सक्षम नहीं हो सकते हैं, वैसे ही यहाँ पर प्रारम्भिक संस्कृत को नहीं जानते तो इस पाठ्यक्रम को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतः प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के जानकार छात्र यहाँ इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के अधिकारी हैं ऐसा जानना चाहिए।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्र आठवीं कक्षा तक जितना अपनी परंपरा से अध्ययन करें। नौंवीं, दसवीं, कक्षा और ग्यारहवीं तथा बारहवीं कक्षा तक भारतीय ज्ञान परम्परा के इस पाठ्यक्रम का निष्ठा से नियमित अध्ययन करें। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए योग्य होंगे।

संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में किया गया कठिन परिश्रम विद्वान्, प्राध्यापक, शिक्षक और शिक्षाविद् इस पाठ्यक्रम का प्रारूप रचना में, विषय निर्धारण के लिए विषय परिमाण निर्धारण में विषय प्रकट करने का भाषा स्तर निर्णय में और विषय पाठ लिखने में संलग्न हैं। अतः इस पाठ्यक्रम का सस्तर उन्नत होना है।

संस्कृत व्याकरण की यह स्वाध्याय सामग्री आपके लिए पर्याप्त सुबोध रुचिकर आनन्दरस को देने वाली, सौभाग्य देने वाली धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, उपयोगी रहेगी ऐसी हम आशा करते हैं। इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है कि भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। वह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है की भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। वह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम के माध्यम से पूर्ण होगा, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है। पाठक अध्ययनकाल में यदि मानते हैं कि इस अध्ययन सामग्री में पाठ के सार में जहाँ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन संस्कार चाहते हैं, उन सभी के प्रस्तावों का हम स्वागत करते हैं। इस पाठ्यक्रम को फिर भी और अधिक प्रभावी, उपयोगी और सरल बनाने में आपके साथ हम हमेशा तत्पर हैं। सभी अध्येताओं के अध्ययन में सफलता और जीवन में सफलता के लिए और कृतकृत्य के लिए हमारे आशीर्वचन-

**किं बाहुना विस्तरेण। अस्माकं गौरववाणीं जगति विरलाम् सर्वविद्याया लक्ष्यभूताम् एव उद्धरामि॥**

**सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।**
**दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।**
**शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥**
**स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।**
**मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्य हैतुकी॥**

**निदेशक**

**राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान**

# आप से दो बातें

**समन्वयक वचन**

प्रिय जिज्ञासुओं,

**ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥**

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वि हो। द्वेष भावना का नाश हो। विद्या लाभ के द्वारा सभी कष्टों की शान्ति हो।

भारतीय ज्ञान परम्परा इस पाठ्यक्रम के अङ्गभूत यह पाठ्यक्रम उच्चतर माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। जो सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को जानता है, वह इस अध्ययन में समर्थ है।

संस्कृत व्याकरण का अध्ययन स्तर के अनुसार होता है। इसलिए स्तरों के प्रत्येक पर्व का आरोहण क्रम के अनुसार ही होना चाहिए। अतः पाणिनीय अष्टाध्यायी का विद्वानों ने भिन्न क्रमानुसार व्याख्या किया है। यहाँ भी उसी प्रक्रिया का क्रम है। उसी क्रम को स्वीकार कर यह अध्ययन सामग्री सोपान, पर्व आदि के क्रम में निर्मित है। एक भाग माध्यमिक और अन्य भाग उच्चतर माध्यमिक कक्षा में है। इससे पाणिनीय तंत्र में प्रवेश के लिए छात्र की योग्यता बढ़ती है।

माध्यमिक कक्षा में दिया हुआ पाणिनीय व्याकरण विषय भी अत्यंत उपकारक है। यह सामग्री पाणिनीय व्याकरण के श्रद्धा सहित अध्ययन में प्रवेश के लिए और मन को शांति देने वाली है। इस ग्रंथ के आकार पर नहीं जाना चाहिए और न इससे भय होना चाहिए अपितु गम्भीर रूप से अध्ययन करना चाहिए।

सम्पूर्ण पाठ्य पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। इसके अध्ययन से छात्र पाणिनीय व्याकरण के मूलभूत ज्ञान को प्राप्त करेंगे।

पाठक पाठों को अच्छी तरह से पढ़कर पाठ में आए प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अंत में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएं। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणी करना चाहिए। पाठ के अंत में दिए प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ। अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर के समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ। या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्र द्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट: www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

ये पाठ्य विषय आपके ज्ञान को बढ़ाए, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, रुचि बढ़ाए, मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करते हैं।

**अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं में हार्दिकी प्रार्थना**

**ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥**

**भवत्कल्याणकामी**

**पाठ्यक्रम समन्वयक**

**राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान**

# अपने पाठ कैसे पढ़ें!

संस्कृत व्याकरण माध्यमिक स्तर की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकेत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है आइए, जानें

**पाठ का शीर्षक :** इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

**भूमिका :** यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

**उद्देश्य :** प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ के उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।

**पाठगत प्रश्न :** इसमें एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारित है इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

**आपने क्या सीखा :** यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है- कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

**पाठांत प्रश्न :** पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिखकर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केन्द्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी सकते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं।

**उत्तरमाला :** आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

## पुस्तक-1

**संज्ञा परिभाषा**

1. व्याकरण परिचय
2. संज्ञा प्रकरण-१
3. संज्ञा प्रकरण-२
4. संज्ञा प्रकरण-३
5. परिभाषा प्रकरण

**सन्धि प्रकरण**

6. अच् सन्धि में यण्-अयवायावादि सन्धि
7. अच् सन्धि में एकादेश व प्रकृतिभाव
8. हल् सन्धि में रुत्व व श्चुत्वादि सन्धि
9. हल् सन्धि में अनुस्वार सन्धि व विसर्ग सन्धि

## पुस्तक-2

**सुबन्त प्रकरण**

10. अजन्त पुंलिङ्ग में अदन्त शब्द रूप
11. अजन्त पुंलिङ्ग में अदन्तशब्द व सर्वनाम के रूप
12. अजन्त पुंलिङ्ग में इकारादि शब्दों के रूप
13. अजन्त स्त्रीलिङ्ग में रमा व नदी के शब्द रूप
14. अजन्त नपुंसकलिङ्ग
15. हलन्त प्रकरण में लिह्-दुह् इत्यादि शब्दों के रूप
16. हलन्त प्रकरण में इदम् राजन् इत्यादि शब्दों के रूप
17. हलन्त प्रकरण में तत् इत्यादि शब्दों के रूप
18. हलन्त प्रकरण में महत् इत्यादि शब्दों के रूप

## पुस्तक-3

**कारक विभक्त्यर्थ प्रकरण**

19. कारक सामान्य परिचय, प्रथमा कारक विभक्ति
20. द्वितीया कारक विभक्ति-1
21. द्वितीया कारक विभक्ति-2
22. कारक विभक्ति में तृतीया व चतुर्थी
23. कारक विभक्ति में पञ्चमी, षष्ठी व सप्तमी
24. उपपद विभक्ति में द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी
25. उपपद विभक्ति षष्ठी और सप्तमी

**कृदन्त प्रकरण**

26. कृदन्त प्रकरण
27. पूर्वकृदन्त प्रकरण-1
28. पूर्वकृदन्त प्रकरण-2
29. उत्तरकृदन्त प्रकरण

**उपपद विभक्त्यर्थ प्रकरण**

उपपद विभक्ति में द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी व पञ्चमी विभक्ति।

# संस्कृत व्याकरण

## माध्यमिक कक्षा

## प्रथम स्वाध्याय सोपान


| क्रम. सं. | विषय सूची | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| | **संज्ञा परिभाषा** | |
| 1. | व्याकरण परिचय | 1-18 |
| 2. | संज्ञा प्रकरण-1 | 19-36 |
| 3. | संज्ञा प्रकरण-2 | 37-54 |
| 4. | संज्ञा प्रकरण-3 | 55-76 |
| 5. | परिभाषा प्रकरण | 77-102 |
| | **सन्धि प्रकरणम्** | |
| 6. | अच् सन्धि में यण्-अचवायावादि सन्धि | 103-118 |
| 7. | अच् सन्धि में एकादेश व प्रकृति भाव | 119-140 |
| 8. | हल् सन्धि में रुत्व व श्चुत्व सन्धि | 141-162 |
| 9. | हल् सन्धि में अनुस्वार व विसर्ग सन्धि | 163-178 |

1

# व्याकरण परिचय

ध्यान दें:

संस्कृत भाषा के अनेक व्याकरण हैं। उनमें महर्षि पाणिनि का व्याकरण प्रमुख है। यह व्याकरण पाणिनि द्वारा विरचित है। यह व्याकरण अन्य सभी व्याकरणों में प्रमुख है। लौकिक एवं वैदिक संस्कृत का व्याकरण पाणिनि व्याकरण में है। इसलिए यह सर्वव्यापी व्याकरण है।

व्याकरण का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ इसको जानने की जिज्ञासा होती है। व्याकरण शब्द का क्या अर्थ है? व्याकरण क्या करता है? व्याकरण स्वकार्य कैसे करता है? देश और विदेश के वैज्ञानिक व्याकरण सूत्रों को देखकर अभिभूत और आश्चर्य चकित क्यों होते हैं? उनमें पाणिनीय सूत्रों का वैशिष्ट्य क्या है? इस प्रकार के अनेक विषय इस पाठ में बताए गए हैं। अत: ध्यान से पढ़ो।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- व्याकरण का आरम्भ कब हुआ यह जान पाने में;
- व्याकरण के आचार्य, ग्रन्थ और परम्परा को जान पाने में;
- व्याकरण शब्द का अर्थ बता पाने में;
- संज्ञा, संज्ञा की उपयोगिता और संज्ञा के भेदों को जान पाने में;
- पाणिनि मुनि सूत्रों में कैसे संज्ञा करते हैं इसे जान पाने में;
- वर्ण और धातु के प्रकटन को जान पाने में;
- संज्ञा को जानकर पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश प्राप्त कर पाने में;
- पाणिनीय व्याकरण में प्रयुक्त किसी भी संज्ञा को जान पाने में;
- छोटे सूत्र का अर्थ बड़ा कैसे होता है इसे जान पाने में;

# पाठ-1

## व्याकरण परिचय

ध्यान दें:

## 1.1) व्याकरण की परम्परा

### 1.1.1) व्याकरण का आरम्भ

बृहस्पति ने व्याकरण (शब्दपरायण) इंद्र को कहा। इंद्र का अध्ययन काल हजार दिव्य वर्ष था। तथापि शब्दपरायण का अध्ययन समाप्त न हो सका शब्दपरायण इतना विशाल विस्तार है शब्दापरायण अत: महर्षि पतंजलि ने कहा है-

**बृहस्पति: इन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपरायानं प्रोवाच नान्तं जगाम। बृहस्पतिश्च प्रवक्ता इन्द्रश्च अध्येता, दिव्यं वर्षसहस्त्रम अध्ययनकाल:, न चान्तं जगाम इति।**

देवता शब्दपरायण को जानने की जिज्ञासा करते हैं। परन्तु इसके लिए बहुत समय की आवश्यकता है। तब देवता इंद्र से प्रार्थना करते हैं की कोई उपाय करें। तब इंद्र ने सर्वप्रथम एक-एक शब्द के प्रकृति-प्रत्यय का विभाजन किया। इस विभाजन का फल यह हुआ कि अल्प समय एवं अल्प प्रयास में शब्दपरायण अर्थात् शब्द ज्ञान, शब्द व्याकरण को जान सके। इस प्रकार से संस्कृत-व्याकरण का प्रारम्भ हुआ। जैसे कि श्रुति है-

**वाग्वै परावागव्याकृतावदत्। ते देवा इदमब्रुवन् इमां नो वाचं व्याकुर्विति ... तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्। ... तामखण्डां वाचं मध्ये विच्छि। प्रकृतिप्रत्ययविभागं सर्वत्राकरोत्।** (तैत्तिरीयसंहिता)

अत: इंद्र संस्कृत भाषा के प्रथम संस्कर्ता हैं। प्रकृति और प्रत्यय का विभाजन, उससे पूर्व प्रकृति और प्रत्यय का मेल, शब्द निर्माण एवं संस्कार को कहते हैं। इस प्रकार संस्कार जिस भाषा का किया गया उसे संस्कृत कहते हैं। अर्थात् संस्कार सम्पन्न भाषा ही संस्कृत है।

### 1.1.2) व्याकरण के आचार्य एवं ग्रंथ

इंद्र के अविष्कार के अनन्तर अनेक ग्रन्थ विद्वानों द्वारा प्रणीत किए गए। अनेक आचार्यों ने इंद्र के द्वारा बताए गए उपायों का विस्तार किया। इंद्र ने किसको ग्रहण किया, किसको पढ़ाया इन विषयों को ऋक् तन्त्र में व्याकरण की परम्परा को इस प्रकार प्रकट किया-

**ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पति: इन्द्राय, इन्द्रो भरद्वाजाय, भरद्वाज ऋषिभ्य:, ऋषय: ब्राह्मणेभ्य:, तं खलु इमम् अक्षरसमाम्नायम् इत्याचक्षते।** (ऋक्तन्त्रप्रातिशाख्यम् 1.4)

इससे सिद्ध होता है कि व्याकरण के प्रथम आचार्य ब्रह्मा, द्वितीय आचार्य ब्रहस्पति, तृतीय इंद्र, चतुर्थ भरद्वाज, पंचम ऋषि हैं एवं व्याकरण की परम्परा में पाणिनि प्रमुख हैं।

महामुनि पाणिनि विश्वविख्यात अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ के रचियता हैं। उनके पिता पणि, माता दाक्षी और गुरु उपवर्ष थे। उन्होंने प्रयाग के अक्षयवट के नीचे घोर तप किया। उस तप से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने चौदह बार डमरू का नाद किया। इसी डमरू के नाद को चौदह सूत्र, अक्षर समाम्नाय, माहेश्वर सूत्र कहे गये हैं। इन्ही सूत्रों को आधार बनाकर महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें सूत्र हैं, आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। सूत्रों के अर्थों का विशुद्ध स्वरूप करते हुए महर्षि कात्यायन ने वार्तिकों की रचना की। उन वार्तिकों में पाणिनि के द्वारा कथित, अकथित कठिन अर्थों का विचार किया गया है।

# पाठ-1

## व्याकरण परिचय

ध्यान दें:

समय के बीतते-बीतते पाणिनीय व्याकरण के विभिन्न स्थानों पर अनेक पूर्व पक्ष उत्पन्न हो गए। उनके समाधानों के लिए शेषावतार भगवान पतंजलि ने महाभाष्य नामक ग्रन्थ प्रणित किया। पतंजलि की माता गौणिका और देश गोर्नद था। महाभाष्य में पतंजलि मुनि ने पाणिनीय सूत्रों एवं वार्त्तिकों की व्याख्या की। महाभाष्य की प्रतिपादन शैली अत्यन्त सरल परन्तु विषय अत्यन्त गम्भीर हैं। पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि इन्हें मुनित्रय कहते हैं। तीनों के योगदान से सम्पन्न व्याकरण को त्रिमुनि व्याकरण कहते हैं। पाणिनीय व्याकरण के व्याख्यानों का अध्ययन और अध्यापन दो प्रकार से होता है- सूत्रक्रम और प्रक्रियाक्रम।

### सूत्रक्रम-

पाणिनि ने जिस क्रम से सूत्रों की रचना की उसी क्रम में व्याख्यान, अध्ययन और अध्यापन होता है उसे सूत्रक्रम कहते हैं। सूत्रक्रम में जो ग्रन्थ लिखे गए हैं उनमें से कुछ का स्वल्प परिचय नीचे दिया गया है।

पतंजलि द्वारा रचित महाभाष्य के तात्पर्य ज्ञान के लिए प्रदीप नामक टीका कैय्यट ने लिखी। उद्योत नाम की टीका प्रदीप टीका पर नागेशभट्ट ने लिखी। पाणिनीय सूत्रों पर काशिका नामक ग्रन्थ वामन और जयादित्य दो आचार्यों ने लिखी। काशिका ग्रन्थ की दो टीकाएं सुप्रसिद्ध हैं। हरदत्त ने पद मञ्जरी नाम की टीका लिखी। जिनेंद्र बुद्धि ने न्यास नामक टीका लिखी।

आज भी भारत में प्राचीन व्याकरण का पठन-पाठन सूत्र क्रम में ही होता है।

### प्रक्रियाक्रम-

पाणिनि ने जिस क्रम से सूत्रों को लिखा उसी क्रम से व्याकरण का अध्ययन एक परम्परा है। वह सूत्रक्रम के अनुसार है जैसा ऊपर बताया गया है।

परन्तु जिस क्रम से पाणिनि ने सूत्रों को लिखा है उस क्रम में शब्द निर्माण प्रकिया नहीं है। एक-एक शब्द के निर्माण के लिए बहुत सारे सूत्रों विशिष्ट क्रम में होना आवश्यक होता है। अत: जिस क्रम से शब्द निर्माण प्रक्रिया होती है उस क्रम में सूत्रों को विद्वानों ने आयोजित किया है। यह व्याकरण अध्ययन परम्परा प्रक्रिया क्रम के अनुसार है।

प्रक्रिया क्रम के अनेक प्रयास हुए। उनमें भट्टोजिदीक्षित प्रणीत वैयाकरण सिद्धांत कौमुदी सर्व प्रमुख है। इसमें अष्टाध्यायी के सभी सूत्र हैं। इस ग्रन्थ की प्रमुख टीका- वासुदेव दीक्षित द्वारा लिखित बालमनोरमा, ज्ञानेन्द्र सरस्वती विरचित तत्त्वबोधिनी, नागेशभट्ट विरचित लघुशब्देन्दुशेखर, भट्टोजिदीक्षीत द्वारा स्वयं रचित प्रौढ़मनोरमा हैं।

बालक अल्पप्रयास में व्याकरण शास्त्र में प्रवेश करें इसको मन में रखकर वरदराजाचार्य ने मध्यसिद्धान्तकौमुदी, लघुसिद्धान्तकौमुदी, सारसिद्धान्तकौमुदी इनग्रंथों की रचना की। इनमें लघु सिद्धान्त कौमुदी नामक ग्रन्थ प्रारम्भिक स्तर में अत्यन्त उपयोगी है इस प्रकार का विद्वानों का मत है।

### व्याकरण के दो प्रकार हैं-

1) वैदिक (प्रातिशाख्य आदि), 2) लौकिक

# पाठ-1

## व्याकरण परिचय

ध्यान दें:



**व्याकरण के दो सम्प्रदाय हैं-**

1) ऐन्द्र सम्प्रदाय, 2) माहेश्वर सम्प्रदाय।

**व्याकरण का महत्त्व-**

**छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।**

**ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥**

**शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।**

**तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥ ( पा.शि. )**

इन दो श्लोकों में वेद पुरुष रूप में कल्पित है। उस पुरुष के पैर-छन्द शास्त्र, हाथ-कल्प शास्त्र, नेत्र-ज्योतिष शास्त्र, कान निरुक्त शास्त्र, नाक शिक्षा शास्त्र, एवं व्याकरण-मुख है ऐसा प्रतिपादित है। यहां जैसे मनुष्य के शरीर में मुख प्रमुख होता है, उसी प्रकार व्याकरण का स्थान है। यह महत्व व्याकरण शास्त्र का है। वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण शास्त्र की बहुत उपयोगिता है। व्याकरण के ज्ञान के बिना वेद का ज्ञान नहीं हो सकता। वेद के छः अंग हैं। उनमें व्याकरण प्रधान है। प्रधान के द्वारा किया गया यत्न फलवान् होता है। अतः व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए।

### 1.1.4 ) व्याकरण का स्वरूप एवं कार्य प्रणाली

व्यास, वाल्मीकि आदि मुनि शिष्ट ऋषि हैं। उन्होंने जिन शब्दों का प्रयोग किया है वे साधु शब्द हैं।

जो व्यक्ति शुद्ध शब्दों को जानकर उनका प्रयोग करता है वह अभ्युदय को प्राप्त करता है। अर्थात् उसको धर्म लाभ होता है। तथापि कहा गया है - 'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति' इति। ज्ञान पूर्वक जो शब्दों का प्रयोग करता है वह अभ्युदय से जुड़ जाता है।

शब्द प्रयोग काल में शब्द का क्या ज्ञान इष्ट है। शब्द की प्रकृति क्या है और प्रत्यय की क्या है यहां यह ज्ञान अपेक्षित है। अर्थात् शब्द का ज्ञान क्या है यह अपेक्षित है। प्रकृति और प्रत्यय के ज्ञान के लिए व्याकरण ही एक उपाय है।

**व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति एवम् अर्थ-**

व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति - व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेन इति व्याकरणम् (वि+आङ्+कृ+ल्युट् - व्याकरणम्)।

प्रकृति और प्रत्यय के योग से शब्द की व्युत्पत्ति होती है, निष्पत्ति जिस शास्त्र से करते हैं उस शास्त्र को व्याकरण कहते हैं। उसके योग का ज्ञान होता है। इससे निष्पन्न शब्द साधु शब्द होते हैं। इस प्रकार से व्याकरण साधु शब्दों का ज्ञान कराता है। इसी प्रक्रिया से व्याकरण असाधु और साधु शब्दों को पृथक् करता है। अत एव साधु शब्दों का ज्ञान व्याकरण का उद्देश्य है।

**व्याकरण के अन्य नाम-**

शब्दशास्त्र, शब्दानुशासन, पदविद्या ये व्याकरण के अन्य नाम हैं।

शब्दाः अनुशिष्यन्ते अनेन इति शब्दानुशासनम् व्याकरणशास्त्रम्।

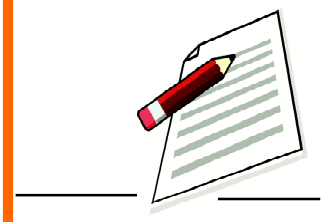

ध्यान दें:

## पाठगत प्रश्न-1

1. इन्द्र का गुरु कौन है?
2. संस्कृत भाषा का आदि संस्कर्ता कौन है?
3. इंद्र ने शब्दपरायण का संस्कार किसको दिया?
4. पाणिनि ने माहेश्वर सूत्रों को प्राप्त करके कैसे अष्टाध्यायी को लिखा इसका विवरण दें।
5. सूत्रक्रम क्या है?
6. प्रक्रियाक्रम क्या है?
7. पाणिनि के गुरु कौन हैं?

   1) पतञ्जलि  2) महेश्वर  3) इन्द्र  4) उपवर्ष

## 1.2 ) संज्ञा

हम प्रतिदिन अनेक वस्तुओं और व्यक्तियों के नाम का व्यवहार करते हैं, अर्थात् वाणी के द्वारा प्रकट करते हैं। यह वस्तु लौकिक होती है। एक-दूसरे को कुछ कहता है। तब वस्तु, व्यक्तियों का नाम बोला उच्चारित होता है। नाम का वाक् व्यवहार सम्भव नहीं है। व्यवहार में स्थित वस्तु, स्थिति और व्यक्ति अर्थ को कहते हैं।

अर्थ का कुछ नाम होता है। नाम कोई पद होता है। जैसे दशरथ का पुत्र, सीता का पति, यह अर्थ है, उस का नाम राम है। इसलिए राम नाम पद होता है। उसका अर्थ होता है- दशरथ का पुत्र और सीता का पति। इसलिए राम एक पद है। दशरथ का पुत्र यह अर्थ है। इसी को पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार के वाचक पद को संज्ञा कहते हैं। संज्ञा का अर्थ संज्ञी कहते हैं। जैसे राम पद संज्ञा है। दशरथ पुत्र संज्ञी है।

### 1.2.1 ) संज्ञा के प्रकार

संज्ञा कभी लघु (कम अक्षर वाली) होती है, कभी बहुत (अधिक अक्षर वाली) होती है। जैसे वृद्धि, गुण, संहिता, प्रत्यय, प्रातिपदिक, धातु, पद, कारक, समास इत्यादि। कभी लौक व्यवहार में प्रयुक्त पद संज्ञा रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। जैसे-टि, घु, घः, भम् इत्यादि।

कभी हम संज्ञा का निर्माण कर सकते हैं। तब उस संज्ञा को कृत्रिम संज्ञा कहते हैं। जैसे-अच् हल् अल् सुप् सुट् इत्यादि। कभी पाणिनि मुनि ने स्वयं संज्ञा को कहा। उसको अकृत्रिम संज्ञा कहते हैं। जैसे-वृद्धि, गुण, संहिता, प्रत्यय, प्रातिपदिक आदि।

संज्ञा अर्थ का बोधन कराती है और वह अर्थ व्यवहारिक पदार्थ होता है। यही अर्थ संज्ञा का है। इसलिए उसको अर्थ संज्ञा कहते हैं। जैसे- कर्ता, कर्म, करण आदि।

कभी जो संज्ञा का अर्थ होता है वह अलग होता है, वर्ण भी होता है। यहां संज्ञा शब्द है। अर्थ भी शब्द है। वह संज्ञा शब्द की है। इसलिए शब्द संज्ञा कहते हैं। जैसे वृद्धि संज्ञा है। जिस अर्थ में 'आ' 'ऐ' 'औ' वर्ण आते हैं। जैसे पद संज्ञा। तदर्थः 'रामः' 'कृष्णः' 'भवति' 'गच्छति' आदि शब्द आते हैं।

# पाठ-1

## व्याकरण परिचय

ध्यान दें:

कभी जैसा लोक व्यवहार में शब्द का अर्थ होता है वैसा ही व्याकरण में भी होता है। तब उस संज्ञा को अन्वर्थ संज्ञा कहते हैं। यहां एक लौकिक उदाहरण देखने योग्य है। किसी मनुष्य का नाम वीरेन्द्र है। यदि वह मनुष्य सर्वश्रेष्ठ वीर है तभी उसका नाम अन्वर्थ होता है। अन्वर्थ का तात्पर्य होता है- जैसा अर्थ वैसा नाम। व्याकरण में सर्वनाम, प्रातिपदिक, प्रत्यय, कर्ता, कारक इत्यादि अन्वर्थ संज्ञा वाले हैं।

किसी पुरुष का नाम कुबेर है। यदि वह निर्धन है तब उसके नाम का अर्थ नहीं है। ऐसे स्थानों पर नाम अन्वर्थ नहीं है। व्याकरण में भी टि, घु, भम्, घः इत्यादि संज्ञा अन्वर्थ नहीं होती। वह संज्ञा अनन्वर्थ कहलाती है।

| अनुक्रम | संज्ञा प्रकार | संज्ञा | संज्ञी |
|---|---|---|---|
| 1.1 | लघु | घ | तरप्, तमप् |
| 1.2 | महती | प्रातिपदिक | राम, हरि, हर |
| 2.1 | कृत्रिम | इक् | इ उ ऋ लृ |
| 2.2 | अकृत्रिम | वृद्धिः | आ ऐ औ |
| 3.1 | अर्थ संज्ञा | कर्ता | रामः गच्छति इत्यत्र दशरथपुत्रः |
| 3.2 | शब्द संज्ञा | पद | रामः, भवति |
| 4.4 | अन्वर्थ | सर्वनाम | तद्, एतद्, इदम् |
| 4.2 | अनन्वर्थ | घ | तरप्, तमप् |

### पाठगत प्रश्न-2

8. संज्ञा और संज्ञी क्या है?

9. संज्ञा के प्रकार लिखिए।

10. कर्ता यह अन्वर्थ संज्ञा है या नही?

11. इनमें से क्या अन्वर्थ संज्ञा है।

    1) घः  2) घुः  3) टि  4) कारकम्

12. सर्वनाम यदि संज्ञा है तो संज्ञी कौन?

    1) तरप्  2) कर्ता  3) घुः  4) इदम्

## 1.3 ) सूत्र

पाणिनि ने अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ लिखा। उस ग्रन्थ में आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। प्रतिपादित सूत्रों की संख्या भिन्न है।

ध्यान दें:

## 1.3.1 ) सूत्र क्या होता है?

सूत्र शब्द धातु से अच् प्रत्यय के योग से नपुंसकलिङ्ग में होता है। सूत्र शब्द के तन्तु और गुण अर्थ होते हैं। लेकिन व्याकरण में सूत्र शब्द का अर्थ होता है- सारगर्भित अत्यन्त लघु वाक्य। सूत्र का स्वरूप इस प्रकार कहा है-

**अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्।**

**अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥**

**अन्वय**- यत् अल्पाक्षरम् असन्दिग्धं सारवत् विश्वतोमुखम् अस्तोभम् अनवद्यं च भवति तत् सूत्रम् इति सूत्रविदः वदन्ति।

### श्लोक का अर्थः-

**अल्पाक्षरम्**

सूत्र में यथा सम्भव अल्प अक्षर होते हैं। अतः सूत्र अल्पाक्षर होता है।

**असन्दिग्धम्**-

सूत्र स्वयं का अर्थ बोधन कराने में सक्षम होता है, संदेह भी नहीं पैदा करता। कभी जब संधि होती है तब संदेह होता है। तब कुछ-कुछ संधियों को त्याग देता है सूत्रकार। कभी समास होने से अर्थ दुर्बोध होता है। तब सूत्रकार समास नहीं करता। इस प्रकार संदेह के बिना जो अर्थ को बताता है वह असंदिग्ध होता है।

**सारवत्**-

सूत्रकर्त्ता जिस अर्थ को प्रकट करना चाहता है उसे सूत्र करता है तभी उस सूत्र का सार होता है। अतः विविक्षित अर्थ का ज्ञात सूत्र का सार होता है।

**विश्वतोमुखम्**-

सूत्रकार सूत्र से किसी कार्य का बोधन कराता है। उस कार्य का क्षेत्र यथा संभव अधिक व्यापक होता है। एक सूत्र से अनेक स्थानों पर कार्य होता है इसलिए सूत्र विश्वतोमुखम् है।

**अस्तोभम्**-

मन्त्र आदि में केवल पाद पूर्ण के लिए प्रयुक्त वर्ण विशेष को स्तोभ कहते हैं। सामवेद के गान में बहुत अधिक ध्वनियों का उपयोग किया है। इन ध्वनियों का कोई अर्थ नहीं होता। परन्तु गाने में माधुर्य उत्पन्न होता है। इस ध्वनि को स्तोभ कहते हैं। सूत्र में इस प्रकार की ध्वनि का प्रयोग नहीं होता। उस सूत्र को अस्तोभम् कहते हैं।

**अनवद्यम्**-

कभी संधि है तो उसका निन्दनीय अर्थ होता है। एक उदाहरण यहां देखने योग्य है- धुवम् और ऋतम् शब्दों में संधि होती है तो ध्रुवमृत शब्द बनता है। यहां कभी ध्रुव-मृत इस प्रकार विचार कर सकते हैं। वहां अनिष्ट, निंदनीय अर्थ आता है। सूत्र इस प्रकार के निंदनीय अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता। उस प्रकार सूत्र में अनवद्यम् अनिन्दनीय होता है।

ध्यान दें:



## 1.3.2 ) सूत्रों के प्रकार-

सूत्र किसी कार्य का बोधन करता है। उस कार्य के अनुसार सूत्रों के प्रकार हैं। जैसे श्लोक है-

**संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।**

**अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रमुच्यते।**

सूत्र के छः प्रकार हैं।- 1) संज्ञा, 2) परिभाषा, 3) विधि, 4) नियम, 5) अतिदेश, और 6) अधिकार।

## संज्ञा सूत्र

संज्ञा क्या है? संज्ञा के प्रकार कितने हैं? इस विषय पर ऊपर विस्तृत चर्चा की गयी है। कोई पद किसी अर्थ का बोध कराने में समर्थ होता है। पद के इस सामर्थ्य को उसकी शक्ति कहते हैं। हम व्यवहार से जानते हैं कि इस पद का यह अर्थ है, अथवा इस पद का अमुक अर्थ है। तब वस्तुतः किसी अर्थ के बोधन में किस पद की शक्ति है इसको हम जानते हैं। संज्ञा सूत्र से पद की शक्ति को जानते हैं। यह पद संज्ञा, यह अर्थ संज्ञी इसका ज्ञान सूत्र से होता है।

अर्थात् सूत्र शक्ति का ग्रहण होता है। अतः संज्ञा सूत्र शक्ति ग्राहक होता है। कभी व्यवहार में प्रयुक्त शब्द भी संज्ञा रूप में व्याकरण में व्यवहार होता है। तब व्यवहार में हम उस पद का अर्थ जानते हैं। परन्तु व्याकरण में उस पद का अर्थ किञ्चित् भिन्न अथवा आंशिक भी सूत्र बताता है। अतः संज्ञा सूत्र शक्ति नियामक होता है। जैसे भूवादयो धातवः इस सूत्र में भू आदि संज्ञी होते हैं। धातु यह संज्ञा है। लौकिक व्यवहार में धातु शब्द के अन्य अर्थ भी हैं। किन्तु व्याकरण शास्त्र में धातु शब्द का अर्थ व्यवहार से भिन्न है वह यहां स्पष्ट है। सामान्यतः संज्ञा से पूर्व संज्ञी का निर्देश होता है। उसके पश्चात् संज्ञा का निर्देश होता है। किसी अर्थ को उद्देश्य करके संज्ञा का विधान होता है। इसलिए उसका उद्येश्य अर्थ होता है। संज्ञा विधेय होती है। उद्देश्य का उल्लेख पूर्व में होता है। विधेय का उल्लेख बाद में होता है। लेकिन कुछ सूत्रों विपरीत क्रम भी होता है। तब वहां कौन संज्ञा, कौन संज्ञी यह आचार्य के व्याख्यान से जाना जाता है।

## परिभाषा-

कभी किसी स्थान पर जाते समय रास्ते में जहां दो मार्ग आते हैं। और हम पहले से नहीं जानते कि किस मार्ग पर जायें तब प्रश्न होता है। दोनों मार्गों में कौन-सा ग्राह्य है? जब तक कि यह निश्चय न हो जाए कि कहां जाएं। तब तक अनियम है। तब हम किसी व्यक्ति से पूछते हैं। यदि वह जानता है तो सही मार्ग का निर्देश करता है। तब अनियम दूर होता है। तब हम निश्चित होते हैं। नियम होता है कि इस मार्ग से जान है।

व्याकरण में कभी-कभी यह प्रसंग आता है जहां एकाधिक मार्ग उपस्थित होते हैं। तब अनियम होता है। अनियम होने पर नियम आवश्यक होता है। इस प्रकार जो सूत्र अनियम में नियम करता है उस सूत्र को परिभाषा सूत्र कहते हैं। जहां-जहां अनियम होता है वहां-वहां नियम करता है परिभाषा सूत्र। अतः सभी स्थानों पर व्याप्त भाषा को परिभाषा कहते हैं।

एक उदाहरण देखते हैं- नश्च यह एक सूत्र है। न पंचमीविभक्त्यन्त रूप है। धुट् प्रथमांत है, सस्य यह षष्ठ्यन्त पद है। तब नकार से सस्य और धुट् यह सूत्र अर्थ है। यहां स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न होता है कि नकार से पहले या बाद में सस्य और धुट् विधेय हैं। अतः यहां अनियम उत्पन्न होता है। अब उसके

ध्यान दें:

उत्तर का परिभाषा सूत्र नियम करता है कि पंचमी निर्देश है जिसके बाद वह कार्य करना चाहिए। अत: अर्थ होता है कि नकार से परे सस्य और धुट् यह सूत्र अर्थ है।

अष्टाध्यायी में पाणिनि मुनि ने साक्षात् 36 परिभाषाओं का उल्लेख किया है। अन्य परिभाषा आचार्य पाणिनि के व्यवहार से सिद्ध होती हैं। कुछ परिभाषा लौकिक व्यवहार से सिद्ध होती हैं।

## विधि-

पूर्व में कहा गया है कि सूत्र कोई कार्य करता है। सभी सूत्र साक्षात् कार्य करते हैं। अथवा अन्य सूत्र के द्वारा जो वास्तविक कार्य होता है उसके अनुग्राहक या उपकारक होते हैं। तब जैसे किसी शब्द से किसी पर प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। कभी किसी वर्ण का, वर्ण समुदाय का अथवा अव्यय रूप में पहले या बाद में वर्ण या वर्ण समुदाय को जोड़ते हैं। इसे आगम कहते हैं। कभी किसी वर्ण का विस्तार करके उसके स्थान पर अन्य वर्ण को करते हैं। किसी वर्ण समुदाय के स्थान पर एक वर्ण या वर्ण समुदाय को करते हैं। कभी वर्ण या वर्ण समुदाय का लोप करते हैं। अर्थात् केवल अपसारण करते हैं।

इस प्रकार कभी केवल आनयन, कभी केवल अपसारण, कभी अपसारण करके उसके स्थान पर दूसरे का आनयन, कभी अवयव रूप में आनयन इस विधि से कार्य वास्तविक कार्य होते हैं। जहां इस प्रकार कार्य होता है वह लक्ष्य कहलाता है। जो सूत्र वह कार्य करता है वह सूत्र का लक्षण कहलाता है। इस प्रकार **लोप, स्वरादिधर्म, वर्ण विकार प्रत्यय, आगम** का विधान हि इनका वास्तविक कार्य है। सूत्र अन्य सभी जगह जो-जो कार्य करते हैं वह सभी भी इन कार्यों के पूरक, पोषक या अनुग्राहक होते हैं। इस प्रकार लोप आदि लक्ष्य का जो परिवर्तन होता है, वह लक्ष्य का संस्कार कहलाता है। इस प्रकार लक्षण लक्ष्य का संस्कार करता है। इस रूप में लक्ष्य का संस्कार करके अन्तोगत्वा साधु शब्द क्या है इसका हमें बोध होता है। लोक में इस प्रकार के ही साधु शब्दों का व्यवहार लोग करें यही व्याकरण शास्त्र का तात्पर्य है। अत: जो सूत्र साक्षात् लक्ष्य का संस्कार करता है, कुछ साधु शब्द क्या हैं इसका बोध कराता है, उस प्रकार के बोध का ज्ञान कराने वाले सूत्र विधि सूत्र होते हैं। इको यणचि इस सूत्र में इक् के स्थान पर यण का विधान होता है। इसी प्रकार अन्य सूत्र हैं।

## नियम-

**इतरनिवृत्तिफलकार्थबोधकम् भवति नियमसूत्रम्।** किसी विधान में या जब एक से अधिक कोई कार्य प्राप्त होता है तब उनमें से कुछ कार्य होता है अन्य नहीं, इस प्रकार का कार्य नियम सूत्र करता है। अर्थवदधातुरप्रत्यय: प्रातिपदिकम् में सूत्र में गामानय इस वाक्य का और राजपुरुष: इस समास की प्रातिपदिकसंज्ञा प्राप्त होती है। वहां कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र में समास अंश नियमार्थ है। तब नियम होता है जब यदि अर्थवत शब्द स्वरूप की प्रातिपदिक संज्ञा है लेकिन समास का ही अन्य का नहीं। इस नियम का फल यह है कि गामानय यद्यपि अर्थवान् समुदाय है तथापि उसकी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती। वाक्य अलग है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती, निवृत्ति हो जाती है। इतरनिवृत्तिफल के अर्थ बोधन करवाता है यह सूत्र।

## अतिदेश-

धर्म शब्द का सामान्यत: गुण धर्म अर्थ बहुत जगह होता है। एक का धर्म दूसरे का यद्यपि नहीं है तथापि है ऐसा जो सूत्र करता है उस सूत्र को अतिदेश कहते हैं। **एकत्र दृष्टानां धर्माणाम् अन्यत्र सम्बन्धोपदेश: अतिदेश:।** सामान्यत: अतिदेश सूत्र में वतिप्रत्ययान्त शब्द अतिदेश बोधन अर्थ का दिखाई देता है। अत: वति प्रत्यय को देखकर अतिदेश सूत्र परिचय होता है। स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ इस सूत्र में

ध्यान दें:



स्थानिवत् यह शब्द वति प्रत्ययान्त है। अत: यह अतिदेश सूत्र है।

### अधिकार-

गणित में हम इस प्रकार करते हैं 2ax+3ay+5az इसमें a साधारणत: ग्रहण करके एक बार ही लिखा है। तब इस प्रकार स्थिति होती है - a (2x+3y+5z). यहां a वस्तुत बीच की स्थिति में प्रत्येक पद के साथ मिलकर ही समग्र अर्थ को प्रकट करता हैं, स्वयम अकेला प्राय: निरर्थक ही अक्षर है ऐसा हम मानते हैं।

अष्टाध्यायी में इस प्रकार साधारण अंश एक बार ही लिखा हुआ है। उसके अंश का पृथक् प्राय: कोई भी अर्थ नहीं होता। परन्तु अन्य पद के साथ मिलने से ही समुदित अर्थ होता है। ऐसे सूत्र या पद को अधिकार कहते हैं। प्रत्यय: यह सूत्र अधिकार सूत्र है।। इसी प्रकार से अन्य सूत्र हैं।

## 1.3.3 ) सूत्र का अर्थ कैसे होता

एक लौकिक उदाहरण का परिशीलन करते हैं।

1) प्रात: (राम वेद पढ़ता है। लक्ष्मण जल लाता है। भरत वृक्षों को सींचता है।)

इसका विस्तृत से अर्थ इस प्रकार होता है-

प्रात: राम वेद पढ़ता है।

प्रात: लक्ष्मण जल लाता है।

प्रात: भरत वृक्षों को सिञ्चता है।

यहां प्रात: पद साधारण है। विस्तार के समय उस पद के साथ तीनों वाक्यों को पृथक्-पृथक् साथ जोड़ते हैं। तब विवक्षित अर्थ स्पष्ट होता है।

2) प्रात: राम वेद पढ़ता है। लक्ष्मण काव्य। भरत व्याकरण। आञ्जनेय फल खाता है। शाम को सुग्रीव नगर देखता है।

वाक्यों को पृथक्-पृथक् लिखते हैं-

प्रात: राम वेद पढ़ता है।

लक्ष्मण काव्य।

भरत व्याकरण।

आञ्जनेय फल खाता है।

शाम को सुग्रीव नगर देखता है।

यहां प्रथम वाक्य में प्रात: पद है, पढ़ता है यह पद बोला गया। परन्तु यह स्पष्ट है कि दोनों शब्द दूसरे और तीसरे से युक्त हैं। वहां भी चतुर्थ वाक्य में खादति (खाता है) यह पद है। अत: पठति (पढ़ता है) यह समान जातीय पद नहीं आता, केवल प्रात: यह पद ही आता है। पञ्चम वाक्य में तो सायं यह पद है। अत: प्रात: यह समान जातीय पद यहां नहीं आता, वह पद निकल जाता है। इस प्रकार देखते हैं इसी प्रकार के ही पद यहां हैं। अत: ऊपर से खादति (खाता है) यह पद नहीं आता।

ध्यान दें:

भरत व्याकरण का यह तृतीय वाक्य है। ये दोनों पद किसी भी अर्थ का बोधन कराने में सक्षम नहीं हैं। उपर से प्रातः और पठति (पढ़ता है) ये दो पद आते हैं। तब वाक्य होता है-प्रातः भरतः व्याकरणम् पठति (प्रातः भरत व्याकरण पढ़ता है)। अब यह वाक्य पूर्ण है। अब अर्थ का बोधन करने में सक्षम हैं।

इस प्रकार पाणिनि मुनि के किसी भी सूत्र को देखते हैं तो अल्प और अर्थ रहित ही प्रतीत होता है। परन्तु अनुवृत्ति द्वारा जो पद आते हैं। तब वाक्य पूर्ण होता है। सूत्र में जो पद नही है परन्तु अर्थ में है तब प्रायः अनुवृत्ति माना जाता है। इसका विस्तार अन्यत्र करेंगे।

इस प्रकार ऊपर के सूत्रों से किसी पद का नीचे के सूत्रों में लाना ही अनुवृत्ति कहलाती है। सजातीय पद अग्रिम सूत्र में है इसलिए पूर्व पद नहीं आता, अनुवृत्ति नहीं। इस प्रकार अनुवर्तमान के पद का सजातीय पद की उपस्थिति के कारण आगमन विराम होता है इसे ही निवृत्ति कहते हैं।

किस पद कि अनुवर्ति कितनी दूर तक जाति है निचे तालिका में प्रकट किया गया है। ध्यान से अवलोकन करें।

| प्रातः | रामः | वेदम् | पठति |
|---|---|---|---|
| प्रातः | लक्ष्मणः | काव्यम् | पठति |
| प्रातः | भरतः | व्याकरणम् | पठति |
| प्रातः | आञ्जनेयः | फलम् | खादति |
| सायम् | सुग्रीवः | नगरम् | पश्यति |

किस पद की किस पद तक अनुवृत्ति होती है ऐसा पाणिनि मुनि ने कई स्थानों निर्देश किया है। बहुत जगह नहीं है। अतः पतञ्जलि आदि मुनियों द्वारा व्याख्यान उसी पर्याय से किया गया है।

## 1.4 ) सूत्र संख्या

सूत्र संख्या के विषय में प्राचीन श्लोक है-

**त्रीणि सूत्रसहस्राणि तथा नव शतानि च।**

**चतुर्णवतिसूत्राणि पाणिनिः कृतवान् स्वयम्॥**

3994 सूत्र हैं इस श्लोक के अर्थ में।

नीचे पट्टिका में आठ अध्यायों, प्रत्येक पाद की सूत्र संख्या प्रदर्शित है।यह सूत्र संख्या गोपालदत्त पाण्डेय द्वारा सम्पादित चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन द्वारा प्रकाशित अष्टाध्यायी ग्रन्थ से संगृहीत हैं।

ध्यान दें:



| | | पाद | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | **प्रथम** | **द्वितीय** | **तृतीय** | **चतुर्थ** | **योग** |
| अध्याय | प्रथम | 75 | 73 | 93 | 110 | 351 |
| | द्वितीय | 72 | 38 | 73 | 85 | 268 |
| | तृतीय | 150 | 188 | 176 | 117 | 631 |
| | चतुर्थ | 178 | 145 | 168 | 144 | 635 |
| | पञ्चम | 136 | 140 | 119 | 160 | 555 |
| | षष्ठ | 223 | 199 | 139 | 175 | 736 |
| | सप्तम | 103 | 118 | 120 | 97 | 438 |
| | अष्टम | 74 | 108 | 119 | 68 | 142 |
| पूर्णयोग | | | | | | 1365 |

यहाँ इनमें माहेश्वर सूत्र की गणना नहीं हुयी है। 3983 + 14 = 3997 यह सूत्र संख्या होती है। ग्रंथों में सूत्र संख्या भिन्न ही होती है। यहाँ कारण यह है कि एक ही सूत्र का योग कुछ करते हैं कुछ नहीं।

अत्र एषु माहेश्वरसूत्राणि न गणितानि। 3983 + 14 = 3997 यह सूत्र संख्या होती है। विभिन्न ग्रंथो में सूत्र संख्या भिन्न दिखाई देती है। तत्र कारणं हि एकस्य सूत्रस्य योगं केचित् कुर्वन्ति, केचित् विभागं कुर्वन्ति।

### 1.4.1 ) सूत्र संख्या का अर्थ

पाणिनि ने आठ अध्याय लिखे हैं। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। और प्रत्येक पाद में अनेक सूत्र हैं। ग्रंथों में जब पाणिनि सूत्रों का उल्लेख होता है तब वहां **पाणिघताडघौ शिल्पिनि** (3.2.55) इस रूप में कुछ संख्या लिखी हुई है। वहां जो 3 संख्या है वह अध्याय संख्या दर्शाति है। अर्थात् **पाणिघताडघौ शिल्पिनि** यह सूत्र तृतीय अध्याय में है। इसके बाद 2 दूसरी संख्या है। वह संख्या पाद की होती है। अर्थात् द्वितीय पाद में यह सूत्र है। इसके पश्चात् 55 संख्या सूत्र के क्रम को दर्शाति है। अर्थात् तृतीय अध्याय के द्वितीय पाद का 55वां सूत्र यह है। इसी प्रकार सभी जगह जानें।

## पाठगत प्रश्न-3

13. सूत्र का स्वरूप क्या है?
14. सूत्रों के प्रकार लिखिए।
15. अनुवृत्ति क्या है?
16. (8.4.10) इस कूट संख्या का अर्थ होता है?

    1) 8-पाद, 4-अध्याय, 10-सूत्र

    2) 8-सूत्र, 4-अध्याय, 10-पाद

ध्यान दें:

3) 8-अध्याय, 4-पाद, 10-सूत्र

4) 8-अध्याय, 4-सूत्र, 10-पाद

17. यह सूत्र का प्रकार नहीं है?

1) अधिकार 2) संज्ञा 3) अतिदेश 4) अनुवृत्ति

## 1.5 ) शब्द स्वरूप

शब्द में क्रमशः विद्यमान वर्ण ही शब्द का स्वरूप होते हैं। जैसे रामाद् इस पद का स्वरूप होता है "र् आ म् आ द्" इस क्रम से विद्यमान वर्ण। इस प्राकार रामाद् इस पद का स्वरूप होता है- पाँच वर्णों का समुदाय। सदा समुदाय ही शब्द का स्वरूप होता है ऐसा नहीं है। एक वर्ण भी शब्द का स्वरूप हो सकता है। वर्णों का समुदाय भी शब्द स्वरूप होता है। जैसे राम यह वर्ण समुदायात्मक शब्द स्वरूप है। इसके पश्चात् "भ्याम्" यह प्रत्यय होता है। भ्याम् यह प्रत्यय भी वर्ण समुदाय है। भ्याम् प्रत्यय भी एक शब्द स्वरूप है। राम शब्द से परे "औ" यह प्रत्यय होता है। यहां औ एक वर्ण है, वर्ण समुदाय नहीं। अतः औ एक शब्द स्वरूप है।

## 1.6 ) वर्ण प्रकटन के उपाय

व्याकरण शास्त्र में कभी वर्ण का अपसारण करके अन्य वर्ण आ जाता है। इस विधि से कार्य होता है। तब वर्ण का उल्लेख एवं प्रकटन कैसे करते हैं ऐसा नीचे दिया गया है।

वर्ण का प्रकटन सामान्यतः अवर्ण पवर्ण इस प्रकार कह सकते हैं। तथापि शास्त्र क्या-क्या उपायों का अवलंबन करता है इसका ज्ञान आवश्यक है अतः उसका विस्तार करते हैं।

**वर्णात् कारः। रादिफः।** यह दो वार्तिक हैं। वर्ण का प्रकटन करके उसके पश्चात कार प्रत्यय जोड़ते हैं। यथा-अकार और पकार। 'र' वर्ण को प्रकट करते हैं तब इफ प्रत्यय जोड़ते हैं। जैसे- रेफः।

यद्यपि रकार ऐसा कह सकते हैं। तथापि रवर्ण को प्रकट करने के लिए ऐसा व्यवहार प्रसिद्ध है। जब कार ऐसा कहते हैं तब उसे केवल लघु ही अवर्ण प्रकट होता है ऐसा नहीं है। उसको उसके अट्ठारह भेद भी प्रकट होते हैं ऐसा जाना चाहिए। कार प्रत्यय का योग नित्य करना चाहिए ऐसा नियम नहीं है। 'अस्य च्वौ' यहां 'अस्य' इस पद में साक्षात् 'अ' वर्ण का षष्ठी एकवचन प्रयुक्त दिखाई देता है।

व्यंजन के उच्चारण अनंतर स्वर का उच्चारण नहीं कर सकते। अतः व्यंजन के पूर्व या बाद में कहीं स्वर को जोड़ते हैं। सामान्यतः लघु अकार को जोड़ते हैं। जैसे- णो नः यह एक सूत्र है। यहां नः यह पुंसि प्रथमान्त पद है। यहां केवल नकार ऐसा समझना ही ठीक है। अकार सहित नकार (न्+अ) नहीं। परंतु उच्चारण ठीक हो इसलिए अकार जोड़ते हैं।

स्वर को प्रकट करने के लिए किसी भी व्यंजन की आवश्यकता नहीं है। **स्वयं राजन्ते इति स्वराः।** तथापि एक से अधिक स्वरों को एक साथ प्रकट करने के लिए संधि करनी अति आवश्यक है। संधि जब होती है तब अर्थ दुर्बोध हो जाता है। अतः स्वर के पश्चात तकार जोड़ते हैं। जैसे- एत्। इसका अर्थ है एवर्ण अथवा एकार। इसका उदाहरण है जैसे- एदैतोः कण्ठतालु। एत् ऐत् इनका उच्चारण स्थान कंठतालु यह अर्थ है।

ध्यान दें:



स्वर के पहले या बाद में तकार के प्रयोग का अन्य अर्थ भी होता है। यदि केवल लघुअकार को प्रकट करते हैं तभी अत् ऐसा कहते हैं। अत् इसका अर्थ लघु अकार ऐसा होता है। कब तकार का उच्चारण सुंदर गृहीत होता है या कब लघु और दीर्घ का प्रकटन से गृहित होता है ऐसा व्याख्यान में देखकर जानना चाहिए।

## 1.7 ) धातु प्रकटनस्य उपायः

धातु स्वरांत और व्यंजनांत होती हैं। धातु के आने पर कोई कार्य होता है। धातु का उल्लेख एवं प्रकटन कैसे करना चाहिए यह नीचे दिखाया गया है।

इक्-शितपौ धातु निर्देशे। यह वार्तिक है। धातु के प्रकटन में इक् प्रत्यय जोडें अथवा शितप्-प्रत्यय जोड़ें।

जसे इक् का योग करके गम्-धातु से गम्+इ=गमि। गमि शब्द पुलिङ्ग होता है। गमि यह प्रथमान्त रूप होता है। मिदेर्गुणः आदि स्थान में मिद्+इ=मिदिः, उसका षष्ठि मिदेः यह रूप होता है।

शितप् प्रत्यय कर्तरि होता है। भू धातु से शितप् प्रत्यय के योग से "भवति" यह शब्द (प्रातिपदिक) निष्पन्न होता है। उसके विभक्त रूप होते हैं। इसलिए भवतेरः इस सूत्र में भवतेः षष्ठि एकवचन होता है।

बहुत जगह साक्षात् भू धातु, पठ् धातु आदि रूपों का भी प्रकटन व्याख्या में होता है।

### पाठगत प्रश्न-4

18. वर्ण कैसे प्रकट होते हैं?

19. धातु कैसे प्रकट होती हैं?

20. गमिः यहां क्या प्रकट होता है।

21. वर्ण प्रकाशन में इसका प्रयोग होता है।

    1) कारप्रत्यय

    2) तिप्-प्रत्यय

    3) तद्धितप्रत्यय

    4) स्त्रीप्रत्यय

22. धातु के प्रकटन में किसका उपयोग करते हैं।

    1) इक्  2) शितप्

    3) तिङ्  4) इक् शितप्

ध्यान दें:

23. परस्पर सम्बधित का मिलान करो।

| **क-स्तम्भ:** | **ख-स्तम्भ:** |
|---|---|
| 1) पतञ्जलि: | 1) वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी |
| 2) महेश्वर: | 2) वर्णात् कार: |
| 3) इन्द्र: | 3) महाभाष्यम् |
| 4) पाणिनि: | 4) श्तिप् |
| 5) वर्ण प्रकटनम् | 5) वर्ण समाम्नाय: |
| 6) धातु प्रकटनम् | 6) अल्पाक्षरम् |
| 7) कृत्रिम संज्ञा | 7) अष्टाध्यायी |
| 8) सूत्रम् | 8) अक् |
| 9) प्रक्रियाक्रम: | 9) आदिवैयाकरण: |

## पाठ सार

इंद्र ने सर्वप्रथम एक-एक शब्द का प्रकृति प्रत्यय के रूप में विभाग किया। इस प्रकार विभक्ति, प्रकृति-प्रत्यय के मेल से शब्द का निर्माण किया। अत: इंद्र ने शब्द का संस्कार किया। इस प्रकार संस्कार कृत् की हुई ऐसी भाषा संस्कृत भाषा को कहा जाता है। इंद्र के गुरु बृहस्पति एवं इंद्र ने देवों को व्याकरण विषय का ज्ञान दिया। व्याकरण के मुख्य आचार्य कौन थे ऐसा वहीं ही प्रकटित है।

पाणिनि मुनि ने शिव के डमरू के निनाद से सूत्रों को प्राप्त किया। उन्हीं को माहेश्वर सूत्र कहते हैं। उन सूत्रों को अपनाकर पाणिनि ने अष्टाध्यायी की रचना की।

अष्टाध्यायी ग्रंथ का अध्ययन दो प्रकार से होता है सूत्रक्रम एवं प्रक्रिया क्रम। सूत्रक्रम से कुछ व्याख्यान ग्रंथ लिखे गए हैं। उसी प्रकार प्रक्रिया क्रम से भी वैयाकरण सिद्धांत कौमुदी इत्यादि ग्रंथ लिखे गए हैं।

शब्द शास्त्र, पद विद्या इत्यादि व्याकरण के विभिन्न नाम है। व्याकरण के दो संप्रदाय हैं। जैसे किसी पुरुष का मुख सबसे प्रमुख होता है उसी प्रकार वेद रूपी पुरुष का मुख व्याकरण शास्त्र को कहा जाता है। ऐसी महिमा है इस शास्त्र की।

व्याकरण शास्त्र में प्रक्रिया माध्यम से साधु शब्दों का निर्माण कैसे करते हैं यह दिखाया जाता है। व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति - व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा: अनेन इति व्याकरणम्।

व्यवहार में संज्ञा उपयोगी होती है। अत: पाणिनि ने अपने शास्त्र में विविध संज्ञाओं को किया है। उनके भेदों को इस पाठ में हम ने दर्शाया है।

महर्षि पाणिनि ने सूत्रों को लिखा। कितने सूत्र हैं और सूत्र क्या होते हैं। सूत्रों के कितने प्रकार हैं इन विषयों का वर्णन किया गया है। अपितु अनुवृत्ति आदि द्वारा सूत्र का अर्थ कैसे होता है इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।

# पाठ-1

## व्याकरण परिचय

ध्यान दें:

कार प्रत्यय को योग करके वर्ण प्रकट करते हैं। जैसे- अकार, मकार आदि। इक् शितप् इन दोनों के प्रयोग से धातु को प्रकट करते हैं। जैसे- भवति, गमि: आदि।

इस प्रकार प्रथम पाठ में व्याकरण का अध्ययन का आरंभ कैसे होता है यह बताया है। और भी व्याकरण के अध्ययन काल में कौन-कौन से मूल विषय है इसका भी यहां पर वर्णन किया गया है।

## योग्यतावर्धन

ज्ञान से योग्यता बढ़ती है। अर्जित ज्ञान के प्रयोग से प्रयोग कौशल बढ़ता है। 'य: क्रियावान् स पण्डित:' यह बुद्धिमान लोगों की उक्ति है। केवल व्याकरण को जानना ही पर्याप्त नहीं है। उसका व्यवहार में प्रयोग करना चाहिए। विशुद्ध संस्कृत का प्रयोग व्याकरण का लक्ष्य होता है। अत: क्रियावान् अर्थात् अर्जित ज्ञान का छात्र व्यवहार करें। तभी वह वस्तु सही सिद्ध होती है।

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।' यह श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि ज्ञान सब को पवित्र करता है। कैसे पवित्र करता है। जब ज्ञान अर्जित करते हैं तब उसके अनुसार व्यवहार भी आवश्यक है। वह ज्ञान आश्रित की अशुद्धियों का संशोधन करता है। स्वयं के व्यवहार में परिवर्तन करके पवित्रता लाता है। स्वयं की वाणी को दोष रहित करता है। स्वयं के अंत: करण को शुद्ध, पवित्र एवं निर्मल करता है।

**व्याकरणं वाङ्मयस्य, भाषायां स्थितानां दोषाणां च वारणे समर्थम्।**

व्याकरण के बिना दोष निवारण दु:साध्य है। अतएव श्रेष्ठ जन कहते हैं - 'यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।' अर्थात् यदि कम पढ़ना है तो पहले व्याकरण पढ़ो।

पढ़ने वाले स्वयं की योग्यता को बढ़ा सकें, स्वयं की व्युत्पत्ति को समझ सकें, स्वयं के भाषा प्रयोग को शुद्ध कर सकें, ऐसे विषयों का इसमें अवलोकन किया गया है। दिए गए निर्देशों का अनुसरण करें।

- व्याकरण का प्रयोग क्षेत्र साहित्य आदि में है। अत: जब संस्कृत साहित्य पढ़ते हैं तब काव्य आदि में व्याकरण के अंशों को संग्रहित करें।
- संग्रहीत अंशों का व्याकरण की दृष्टि से साधुत्व समर्थन।
- अशुद्ध प्रयोगों का निवारण। इससे भाषा शुद्धि होती है। जिससे व्याकरण का प्रधान लक्ष्य सिद्ध करता है।
- संकलित शब्दों से स्वयं के भाषण एवं लेखन के द्वारा व्यवहार में लाना। इन नूतन शब्दों के प्रयोग से विद्वता बढ़ती है। भाषण की महिमा वर्धित होती है।
- देश-विदेश में व्याकरण के अनेक ग्रंथ प्रादेशिक भाषा में अनुवादित एवं प्रकाशित है। अपने देश में अपनी मातृभाषा के कौन से ग्रंथ है उसको लेकर पढ़ते हैं। वहां जो सुलभ सुबोध एवं सुकर जो कुछ भीहै वह उपादेय है।
- प्रारंभिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी ग्रंथ है लघु सिद्धांत कौमुदी इस ग्रंथ का भीमसेन शास्त्री ने हिंदी भाषा में अनुवाद किया है जिसे भैमी व्याख्या के नाम से जाना जाता है यह छह खंडों में बहुत से संदेशों का समाधान करता है जो बहुत उपयोगी है।

ध्यान दें:

## पाठान्त प्रश्न

1. व्याकरण का आरंभ कैसे होता है।
2. इंद्र का परिचय देते हुए उसके द्वारा कृत व्याकरण संस्कार का परिचय करें।
3. सूत्रक्रम में लिखित ग्रंथों का परिचय दीजिए।
4. प्रक्रियाक्रम में लिखित ग्रंथों का परिचय दीजिए।
5. व्याकरण की महिमा का वर्णन करें।
6. व्याकरण शब्द का अर्थ लिखकर व्याकरण क्या करता है कैसे करता है इसका विस्तार से वर्णन करें।
7. संज्ञा के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
8. सूत्र के स्वरूप को विभाजित कीजिए।
9. सूत्र के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
10. वर्ण प्रकटन के उपायों को प्रकट कीजिए।
11. धातु प्रकटन के उपायों को उपस्थापित कीजिए।
12. यदि सूत्र का क्रम 5.3.8 है तब इसका क्या अर्थ है।

## पाठगत प्रश्नोत्तर

उत्तर-1

1. इन्द्र के गुरु बृहस्पति हैं।
2. संस्कृत भाषा के आदि संस्कर्ता इन्द्र हैं।
3. इन्द्र ने शब्दपारायण का संस्कार किया।
4. महर्षि पाणिनि ने महेश्वर की उपासना की। महेश ने प्रसन्न होकर 14 बार डमरु का नाद किया। यही डमरु का नाम चौदहसूत्री, अक्षरसमाम्नाय, माहेश्वरसूत्र आदि कहलाते हैं। इन सूत्रों को आधार बनाकर महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी नामक ग्रंथ की रचना की। इसमें सूत्र हैं। 8 अध्याय हैं। प्रतीक अध्याय में चार पाद हैं।
5. पाणिन ने जिस क्रम में सूत्रों की रचना की उसी क्रम में व्याख्यान, अध्ययन एवं अध्यापन होता है इसलिए यह सूत्रक्रम कहलाता है।
6. जिस क्रम से सूत्रों को पाणिनि ने लिखा है क्रम में शब्द निर्माण प्रक्रिया नहीं है। एक-एक शब्द के निर्माण के लिए बहुत से सूत्रों में विशिष्ट क्रम की आवश्यकता होती है। अत: जिस क्रम में शब्द निर्माण की प्रक्रिया होती है उसी क्रम में सूत्रों को आयोजित करते हैं विद्वान। यह व्याकरण अध्ययन की परम्परा प्रक्रियाक्रम अनुसार है।

ध्यान दें:



7. (4)

**उत्तर-2**

8. अर्थ के वाचक को पद संज्ञा कहते हैं। संज्ञा का अर्थ संज्ञी कहलाता है।

9. लघु-गुरु, कृत्रिम-अकृत्रिम, अर्थ संज्ञा-शब्द संज्ञा, अन्वर्था-अनन्वर्था ये सब संज्ञाओं के प्रकार हैं।

10. कर्ता अन्वर्थ संज्ञा है।

11. 4)

12. 4)

**उत्तर-3**

13. अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्।

    अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः।।

    यह श्लोक सूत्र के स्वरूप को बताता है।

14. सूत्रों के 6 प्रकर हैं। वे हैं- 1) संज्ञा, 2) परिभाषा, 3) विधि, 4) नियम, 5) अतिदेश, 6) अधिकार।

15. उपर वाले सूत्र से नीचे वाले सूत्र में किसी भी पद का आना अनुवृत्ति कहलाता है।

16. 3)

17. वर्णात् कारः रादिफः यहां दो वार्तिक हैं। वर्ण का प्रकटन जब करते हैं तब उसके बाद कारप्रत्यय जोड़ते हैं। जैसे- अ-कार, प-कार आदि। रवर्ण को जब प्रकट करते हैं तब उसके बादइफ-प्रत्यय जोड़ते हैं। जैस - रेफः।

**उत्तर-4**

18. इक्शितिपौ धातु निर्देश में वार्तिक है। धातु को जब प्रकट करते हैं तब इक् प्रत्यय जोड़ते हैं अथवा शितप्-प्रत्यय जोड़ते हैं। जैसे इक् जोडकर गम्-धातु से गम्+इ=गमि बनता है। गमिशब्द पुंलिङ्ग होता है। गमिः यह प्रथमान्तं रूप होता है। शितप् प्रत्यय कर्तरि होता है। भू-धातु से शितप् प्रत्यय के योग से 'भवति' यह रूप निष्पन्न होता है। उसके विभक्ति रूप होते हैं। अतैव भवतेरः इस सूत्र से भवतेः यह षष्ठी एकवचन रुप बनता है।

19. इक्शितिपौ धातु निर्देश में यह वार्तिक इक् योग से होता इक् जोडकर गम्-धातु से गम्+इ=गमि बनता है। गमिशब्द पुंलिङ्ग होता है। गमिः यह प्रथमान्तं रूप होता है। गमिः इसका अर्थ गम् यह धातु होता है।

20. गम् यह धातु है।

21. 1)

22. 4)

23. 1-3, 2-5, 3-9, 4-7, 5-2, 6-4, 7-8, 9-1

ध्यान दें:

# 2

# संज्ञा प्रकरण-1

व्याकरण का आरम्भ कैसे होता है, कौन मुख्य आचार्य हैं, कौन से मुख्य ग्रन्थ हैं यह आपने जाना। व्याकरण क्या करता है, कैसे करता है इन विषयों को प्रथम पाठ में जाना। व्याकरण में साधु शब्द निर्माण करते हैं। शब्द वर्ण समुदायात्मक होते हैं। अर्थात् कौन शब्द है तब वर्णों का समुह शब्द होता है यह उत्तर है। अत: संस्कृत में कौन से वर्ण हैं, उनका विभाजन कैसे करते हैं, उनके क्या नाम हैं, उनका उच्चारण कैसे होता है आदि अनेक विषयों का इस पाठ अन्तर्भाव होता है। इस पाठ का सम्यक् ज्ञान अग्रिम पाठ के अध्ययन में अत्यन्त उपयोगि है। यहाँ वर्जित संज्ञाओं का आने वाले अध्यायों में विपुल प्रयोग है। अत: यह पाठ अत्यन्त महत्व रखता है।

किसी विषय के प्रतिपादन के लिए हि शास्त्र प्रवरत होते हैं। उसके विषय का प्रतिपादन और सरलता पूर्वक कार्य सम्पादन हेतु बहुत उपाय प्राप्त होते हैं। उन उपायों में सन्धि अन्यतम उपाय होता है। संस्कृत में संज्ञा के पर्याय शब्द हैं - नाम, नामधेयम्, आख्या, अभिधानम्, आह्व: आदि। जो विभिन्न पदार्थ शास्त्र में दिखाई देते हैं उनके विविध नाम होते हैं। एक शास्त्र में एक संज्ञा किसी अर्थ को बताती है, अन्य शास्त्र में वह संज्ञा किसी भिन्न अर्थ को बताती है। व्याकरण शास्त्र में कोई संज्ञा: जिस अर्थ में होती है वह अन्य शास्त्र में भिन्न अर्थ वाली होती है। अगले तीनों पाठों में संज्ञा की यही विशिष्टता हमारे अवलोकन का विषय है।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- संस्कृत की वर्णमाला को जान पाने में;
- संस्कृत में कितनें वर्ण हैं, वे कौन से हैं इसको बता पाने में;
- माहेश्वर सूत्रों का ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- प्रत्याहारों का निर्माण करने में समर्थ हो पाने में;
- पाणिनि सूत्रों में अनुवृत्ति आदि कैसे होती हैं इसको जान पाने में;
- सूत्रों की व्याख्या कर पाने में;
- इत्, लोप, सर्वण आदि संज्ञाओं का ज्ञान प्राप्त कर पाने में;

# पाठ-2

## संज्ञा प्रकरण-1

ध्यान दें:

- वर्ण उच्चारण की प्रक्रिया को जान पाने में;
- उदात्त क्या है, अनुदात्त क्या है इत्यादि को सुस्पष्ट जान पाने में;
- वर्णों के उच्चारण स्थान एवं यत्नों को जान पाने में;
- तपरकरण क्या है इसको जान पाने में;

## 1.1 ) वर्णमाला

पुस्तक में पाठ होते हैं। पाठ में परिच्छेद होते हैं। परिच्छेदों में वाक्य होते हैं। वाक्यों में पद होते हैं। पदों में वर्णा होते हैं। वर्ण में क्या होता है। भाषा का यह अन्तिम जिसका और विभाजन न हो सके वर्ण या अक्षर कहलाता है। संस्कृत भाषा में कितने अक्षर या वर्ण हैं इस विषय को विस्तार से जानते हैं।

सामान्यत: बहुत सी पुस्तकों में निम्न 44 वर्ण बताए गए हैं। परन्तु संस्कृत में इस प्रकार नहीं है।

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ऐ ओ औ (13)

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म (25)

य र ल व श ष स ह (8)

वस्तुत: संस्कृत में निम्न 63 वर्ण हैं।

अ आ अ३ इ ई इ३ उ ऊ उ३ ऋ ॠ३ ऌ ऌ३ ए ए३ ऐ ऐ३ ओ ओ३ औ औ३ (22)

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म (25)

य यँ र ल लँ व वँ श ष स ह (11)

ळ, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय (5) 22+25+11+5=63

वर्णों का सविस्तार परिचय नीचे दिया गया है।

**स्वरा:** - अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ऐ ओ औ (अं अ: अनुस्वार और विसर्ग)

| **वर्गे** | **प्रथम** | **द्वितीय** | **तृतीय** | **चतुर्थ** | **पञ्चम** | **उच्चारण स्थानम्** | **अन्त:स्थ:** | **ऊष्मा** |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| स्पर्श वर्ण | अल्प प्राण | महा प्राण | अल्प प्राण | महा प्राण | अल्प प्राण | | | |
| कु-कवर्ग | क | ख | ग | घ | ङ | कण्ठ | | ह, विसर्ग |
| चु-चवर्ग | च | छ | ज | झ | ञ | तालु | य | श |
| टु-टवर्ग | ट | ठ | ड | ढ | ण | मूर्धा | र | ष |
| तु-तवर्ग | त | थ | द | ध | न | दन्ता | ल | स |
| पु-पवर्ग | प | फ | ब | भ | म | ओष्ठौ | | |

**अन्त:स्थ वर्ण - य र ल व (यणोऽन्तस्था:।)**

**ऊष्म वर्ण - श ष स ह (शल ऊष्माण:।)**

ध्यान दें:

**वर्णमाला का वैशिष्ट्य**- संस्कृत वर्णमाला अत्यन्त सुचिन्तित एवं वैज्ञानिक है। उसके अनेक वैशिष्ट्य हैं उनमें से कुछ नीचे दिए गए हैं-

- पहले स्वर हैं उसके पश्चात् व्यञ्जन हैं। स्वर और व्यञ्जन मिश्रित नहीं हैं।
- स्वरों में शुद्ध स्वर हैं (अ आ अ ३ इ ई इ३ उ ऊ उ३ ऋ ॠ ऋ३ ऌ ऌ३)। ए ए३ ऐ ऐ३ ओ ओ३ औ औ३ ये जन्य (स्वरों से उत्पन्न) स्वर बाद में हैं। अ+इ=ए, अ+ए=ऐ, अ+उ=ओ, अ+ओ=औ इस प्रकार से ये स्वर बनते हैं।
- व्यञ्जनों को लिखने में तो अत्यन्त सूक्ष्मता है। 25 स्पर्श व्यञ्जन पहले हैं। उसके पश्चात् 7 अन्त:स्थ व्यञ्जन हैं। अन्त में 4 ऊष्म व्यञ्जन हैं।
- स्पर्श व्यञ्जन हि वर्गीय व्यञ्जन कहलाते हैं। उनके 5 वर्ग हैं। जिनके उच्चारण स्थान समान हैं उन 5 स्पर्श व्यञ्जनों को एक जगह स्थापित किया गया है। जैसे- जिनका उच्चारण स्थान कण्ठ है- क ख ग घ ङ इन 5 स्पर्श व्यञ्जनों को एक जगह स्थापित किया गया है। इस समुदाय का नाम कवर्ग है। इसी प्रकार चवर्ग- च छ ज झ ञ का उच्चारण स्थान तालु है। टवर्ग- ट ठ ड ढ ण का उच्चारण स्थानम मूर्धा है। तवर्ग- त थ द ध न का उच्चारण स्थान दन्त है। पवर्ग- प फ ब भ म का उच्चारण स्थान औष्ठ है।
- प्रत्येक वर्ग में प्रथम व्यञ्जन अल्पप्राण, द्वितीय महाप्राण, तृतीय अल्पप्राण, चतुर्थ महाप्राण, पञ्चम अल्पप्राण होता है।
- पांचों वर्गों में अन्तिम वर्ण अनुनासिक है। जैसे- ङ ञ ण न म।
- प्रत्येक वर्ग में पहले 2 व्यञ्जन कठोर उच्चारित होते हैं। अन्तिम 3 व्यञ्जन मृदु उच्चारित होते हैं। क ख ये कठोर हैं। ग घ ङ ये मृदू हैं। इसी प्रकार सभी वर्गों में है।
- वर्गीय व्यञ्जनों के बाद ७ अन्त:स्थ व्यञ्जन हैं। उनमें रेफ का अनुनासिक नहीं होता। अन्य का अनुनासिक यँ वँ लाँ: होता है।
- और अन्त में च श ष स ह ये वर्ण होते हैं इन्हें ऊष्म व्यञ्जन कहते हैं।
- सूक्ष्म (गहन) चिन्तन से यह जान सकते हैं कि मुख में उच्चारण के 5 स्थान हैं। एक स्थान से कुछ स्वर, पञ्च वर्गीय व्यञ्जन, एक अन्त:स्थ व्यञ्जन, एक ऊष्म व्यञ्जन उत्पन्न होता है। जैसे तालु स्थान से इ, चवर्ग, य, श ये वर्ण उच्चारत होते हैं। इनमें इ - स्वर:, च छ ज झ ञ ये वर्गीय व्यञ्जन, य - अन्त:स्थ, श - स्पर्श हैं।

## 1.2 ) माहेश्वर सूत्र

**अइउण् ।१। ऋऌक् ।२। एओङ् ।३। ऐऔच् ।४।**

**हयवरट् ।५। लण् ।६। ञमङणनम् ।७। झभञ् ।८। घढधष् ।९। जबगडदश् ।१०।**

**खफछठथचटतव् ।११। कपय् ।१२॥ शषसर् ।१३। हल् ।१४।**

ये चतुर्दश (14) माहेश्वर सूत्र हैं। इन सूत्रों के अन्त में ण् क् ङ् आदि एक-एक व्यञ्जन है। उसका नाम 'इत्' है। इन सूत्रों का प्रयोग प्रत्याहार निर्माण के लिए किया जाता है। प्रत्याहार संक्षेप होता है।

**माहेश्वर सूत्रों का वैशिष्ट्य**- वर्णसमाम्नाय, चतुर्दश सूत्री ये भी माहेश्वर सूत्र के अलग नाम

ध्यान दें:



हैं। वर्णसमाम्नाय में आ, ई, ऊ, ऋ, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, अनुस्वार ये वर्ण, और वर्ण सदृश ध्वनि नहीं हैं। **वर्णानां सर्वादृतः यः नैसर्गिकः क्रमः वर्तते तस्य महान् विपर्यासः अत्र परिलक्ष्यते।** स्वरों का क्रम प्रायः ऐसे ही बताया है। व्यञ्जनों में क्रम इस प्रकार है - हकार (ऊष्म), अन्तःस्थ, वर्गपञ्चम अनुनासिक, वर्ग चतुर्थ, वर्ग तृतीय, वर्ग द्वितीय, वर्ग प्रथम, ऊष्म। णकार की दो इत् संज्ञाएं होती हैं। लँण्-सूत्र में लकार से परे (बाद में) अँकार अनुनासिक होता है अतः इसकी इत् संज्ञा होती है। उस अवर्ण के साथ उच्चारित रेफ और रत्न संज्ञा होती है। अल् प्रत्याहार में सभी वर्ण होते हैं अतः अल् शब्द को वर्ण के अन्त तक गिनते हैं। अच् स्वर होते हैं और हल् व्यञ्जन यह विभाग परिलक्षित होता है।

## 1.2.1 ) प्रत्याहार निर्माण की प्रक्रिया

प्रत्याहार निर्माण की प्रविधि नीचे दी गई है।

अष्टाध्यायी में आचार्य पाणिनि कुछ वर्णों क समुह को प्रकट करने की इच्छा करते हैं। सामान्य उपाय तो यह है की उन वर्णों का साक्षात् उल्लेख हो। जैसे - इ उ ऋ ऌ के स्थान में क्रमशः य् व् ल् वर्ण करने चाहिएं यदि इ उ ऋ ऌ के बाद अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ये वर्ण आएं तो। इस प्रकार से करना हालांकि सम्भव है परन्तु यह कठिन प्रक्रिया है, बड़ी है। यदि लघु उपाय सम्भव हो तो अति उत्तम। वही उपाय प्रत्याहार हैं। **तब इस प्रकर होता है- ये वर्णाः प्रकटनीयाः सन्ति ते संकलनीयाः।** उसके बाद माहेश्वर सूत्रों में जो क्रम है उस क्रम में जोड़ते हैं। वहां जो आदि अर्थात् प्रथम वर्ण होता है वह ग्राह्य होता है। उनमें जो अन्तिम होता है, वह माहेश्वर सूत्रों में कहां है देखते हैं। उसके बाद जो इत् संज्ञक वर्ण होता है वह ग्राह्य होता है। इस प्रकार आदि वर्ण के साथ इत् संज्ञक के मेल से प्रत्याहार बनता है।

**उदाहरण-**

जैसे- ऋ ऌ इ उ इन वर्णों की इच्छा करता हूँ। तब इनको माहेश्वर सूत्र क्रम में लिखता हूँ जैसे- इ उ ऋ ऌ । अब इनमें प्रथम वर्ण 'इ' है। अन्तिम वर्ण 'ऌ' है। माहेश्वर सूत्रों में उसके पश्चात् इत्-संज्ञक वर्ण 'क्' है। अब प्रथम वर्ण 'इ' के साथ इत्-संज्ञक 'क्' का मेल करता हूँ, तब 'इक्' यह शब्द होता है। यह 'इक्' प्रत्याहार बनता है। प्रत्याहार एक संज्ञा होती है। 'इक्' प्रत्याहार का अर्थ इ उ ऋ ऌ ये चार वर्ण होता है।

इस प्रकार र् ल् व् य् इन वर्णों का संक्षेप में प्रकटन सम्भव होता है। इनका माहेश्वर सूत्रों में जो क्रम है उस क्रम में इस प्रकार लिखते हैं - य् व् र् ल्। उनमें आदि वर्ण 'य्' है। उनमें अन्तिम वर्ण 'ल्' है। माहेश्वर सूत्रों में उसके पश्चात् इत्संज्ञक वर्ण 'ण्' है। 'य्' इसका 'ण्' के साथ मेल करने पर 'यण' यह प्राप्त होता है। 'यण' प्रत्याहार है। अतः यह 'यण' संज्ञा है। इसके संज्ञि य् व् र् ल् ये वर्ण हैं। यण् इस शब्द में य वर्ण के बाद अ वर्ण जोड़ते (य्+'अ'+ण्)। तब यण् का उच्चारण सुकर होता है।

माहेश्वर सूत्रों में अन्तिम वर्ण का क्या उपयोग है - चतुर्दश सूत्रों में अन्तिम वर्ण इत् संज्ञक होता है, इसका उपयोग केवल प्रत्याहार के निर्माण के लिए होता है। परन्तु इसकी संज्ञि में गणना नहीं होती। जैसे यण् यह प्रत्याहार संज्ञा है। इसके संज्ञि य् व् र् ल् ये वर्ण हैं। इनमें ट् नहीं है, ण् नहीं है। यण् प्रत्याहार की जब गणना करते हैं तो हयवरट्, लण् इन दो सूत्रों का ग्रहण करते हैं। वहां हयवरट् सूत्र का अन्तिम वर्ण ट् है। इसको संज्ञि में नहीं गिनते। जैसे- लोक में गिलास से जल पीते हैं परन्तु गिलास को नहीं पीते। गिलास का उपयोग जल को धारण करने के लिए है पीने के लिए नहीं। उसी प्रकार इत् संज्ञक का उपयोग प्रत्याहार के निर्माण के लिए होता है संज्ञि के साथ व्यवहार के लिए नहीं।

ध्यान दें:

इस प्रकार अनेक प्रत्याहार हो सकते हैं। जैसे अच् प्रत्याहार के सभी स्वर संज्ञि होते हैं। हल् प्रत्याहार के सभी व्यञ्जन संज्ञि होते हैं। अत: अच् स्वर का पर्याय है। हल् व्यञ्जन का पर्याय है। अल् वर्ण का पर्याय है।

### उपदेश:-

'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इस सूत्र में पाणिनि ने उपदेश पद का प्रयोग किया है। उप यह उपसर्ग है दिश् यह धातु है। दिश्-धातु से भाव में घञ् प्रत्यय प्रयुक्त हुआ है। तब उपदेश यह शब्द निष्पन्न होता है। उप शब्द का आदि यह अर्थ है। दिश्-धातु का अर्थ: उच्चारण क्रिया है। इस प्रकार उपदेश शब्द का अर्थ आदि उच्चारण होता है। इसमें कर्मधारय समास है। महेश्वर-पाणिनि-कात्यायन-पतञ्जलि के प्रथम उच्चारण को आदि उच्चारण कहते हैं। पूर्व में अज्ञात पद को मुनि ने प्रथम उच्चरित किया। यही उच्चारण आदि उच्चारण है। रूपावतारग्रन्थ में सुप्रसिद्ध कारिका में कहा है-

**धातुसूत्रगणोणादिवाक्यलिङ्गानुशासनम्।**

**आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः॥ इति।**

अन्य किसी जगहं कारिका है-

**प्रत्ययाः शिवसूत्राणि आदेशा आगमास्तथा।**

**धातुपाठो गणेपाठ उपदेशाः प्रकीर्तिताः॥ इति।**

पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी, धातु पाठ, लिङ्गानुशासन और गण पाठ इन चार व्याकरण के ग्रन्थों की रचना की। उणादि सूत्रों को पूर्व में किसी ने लिखा। कात्यायन मुनि ने वार्तिक लिखे। उनको वार्तिक वाक्य भी कहते हैं। इस प्रकार- धातु, सूत्र, गण में पठित शब्द, उणादि सूत्र, वार्तिक, लिङ्गानुशासन, आगम, प्रत्यय, आदेश आदि उच्चारण हैं।

## पाठगत प्रश्न-1

1. संस्कृत में कितने वर्ण हैं?
2. माहेश्वर सूत्रों में द्वितीय सूत्र क्या है?
3. माहेश्वर सूत्रों में इत्-संज्ञक वर्ण कौन-सा है?
4. प्रत्याहार शब्द का अर्थ क्या है?
5. वर्ग के तृतीय वर्ण किस प्रत्याहार में हैं?
6. शरि प्रत्याहार में कौन-से वर्ण आते हैं?
7. उपदेश कौन-कौन हैं?
8. वर्ण का पर्याय है?

   1) हल्

   2) अच्

ध्यान दें:



3) अल्

4) य

9. स्वर का पर्याय है?

1) हल्

2) अच्

3) अल्

4) य

10. व्यञ्जन का पर्याय है?

1) हल्

2) अच्

3) अल्

4) य

11. पवर्ग में कौन-सा वर्ण नहीं है?

1) म

2) क

3) ब

4) भ

12. संस्कृत भाषा में कितने वर्ण है?

1) 44

2) 45

3) 54

4) 63

13. जश्-प्रत्याहार में यह वर्ण नहीं है?

1) ग

2) झ

3) ब

4) ड

14. कात्यायन मुनि ने अष्टाध्यायी पर क्या लिखा है?

1) उणादि सूत्र

2) धातु पाठ

ध्यान दें:

3) सूत्र पाठ

4) वार्तिक

## 2.1 आदिरन्त्येन सहिता॥ ( 71.1.1 )

**सूत्रार्थः** - अन्त्येन इता सह आदिः मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा भवति

**सूत्र व्याख्या** - यह संज्ञा सूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। आदिः अन्त्येन सह इता यह पदच्छेद है। आदिः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। अन्त्येन यह तृतीया एकवचनान्त पद है। सह यह अव्यय पद है। इता यह इत् शब्द का तृतीया के एकवचन का रूप अर्थात् इता यह तृतीया एकवचनान्त पद है। जिसका पूर्व नहीं है वह आदि है। जिसका पर नहीं है वह अन्त है। अन्त में जो होता है वह अन्त्य है। स्वं रूपं शब्दस्या शब्द संज्ञा इस सूत्र से स्वं यह प्रथमान्त पद अनुवर्तित होता है। अन्त्येन इता सह आदिः स्वस्य यह अन्वय है। यह सूत्र संज्ञा प्रकरण में पढ़ा गया है। अतः संज्ञा यह पद आने में सक्षम है। तब पद होते हैं - अन्त्येन इता सह आदिः स्वस्य संज्ञा भवति। जब आदि और अन्तिम का ग्रहण करते हैं तब आदि से अन्तिम वर्ण तक जितने आते हैं उनका सबका ग्रहण होता है। अत मध्यगानाम् इसका आक्षेप करते हैं। अतएव सूत्र का सरलार्थ होता है - आदि से अन्तिम वर्ण तक जितने मध्य में आते हैं उनका सबका ग्रहण होता है।

**उदाहरणम्** - अण् इण् अच् हल्।

**सूत्रार्थ समन्वयः** - माहेश्वर सूत्रों में अ इस वर्ण का ण् इस अन्तिम इत्संज्ञक वर्ण के साथ मेल करके सह अण् यह प्रत्याहार प्राप्त होता है। माहेश्वर सूत्रों में अ इस आरम्भ के वर्ण से ण् इस इत्संज्ञक वर्ण पर्यन्त मध्य में इ उ ये दो वर्ण हैं। उस अन्तिम ण् इत्संज्ञक के साथ आदि अण् इ उ इन मध्य वाले और स्वयं के आदि अकार का समन्वय करते हैं। अर्थात् अण् शब्द में अ इ उ इन वर्णों की संज्ञा होती है।

इस प्रकार अन्तिम इत्संज्ञक के साथ, आदि एच् यह वर्ण, मध्यों ओ ऐ औ इनके स्वयं के (आदि एकार) की संज्ञा होती है। अर्थात् एच् इस शब्द में ए ओ ऐ औ इन चार वर्णों की संज्ञा होती है।

इस प्रकार आदि वर्ण अन्तिम इत् वर्ण के साथ मिलकर अण् अच् एच् आदि प्रत्याहार कहलाते हैं। अण् अच् एच् इनकी प्रत्याहार संज्ञा होती है।

**शब्दावली - अन्वयः** - सम्बन्ध। एक पदार्थ का अपर (दूसरे) पदार्थ के साथ सम्बन्ध ही अन्वय है। प्रथम वाक्य का श्रवण होता है। वाक्य में स्थित पदों का जो पृथक्- पृथक् अर्थ है उसका स्मरण होता है। इस स्मरण को ही उपस्थिति कहते हैं शास्त्रों में। इस प्रकार स्मृत अर्थों का आकाङ्क्षा आदि से परस्पर सम्बन्ध होता है। यह सम्बन्ध ही अन्वय है। जिस क्रम से अर्थों का सम्बन्ध होता है उसी क्रम से पदों का लेखन व उच्चारण अन्वय में सामान्यतः करते हैं।

**व्यवहरति** - व्यवहार करते हैं। उपयोग करते हैं।

**प्रत्ययः** - प्रत्यय शब्द का बहुल (बहुत) प्रयोग है व्याकरण में। रामः यह शब्द है। इसमें राम+सु यह विभाग है। यहां राम प्रकृति सु यह प्रत्यय है। राम इस शब्द में भी रम्+घञ् यह विभाग है। यहां रम् धातु प्रकृति है, घञ् प्रत्यय है। अतः रामः इस शब्द में दो प्रकृति और दो प्रत्यय हैं। तथापि जब सु को प्रत्यय मानते हैं तब राम ही प्रकृति है। इसीलिए राम शब्द को उद्देश्य करके सु प्रत्यय का विधान करते हैं। जब घञ् प्रत्यय मानते हैं तब उसकी प्रकृति रम् धातु है। इसीलिए रम् धातु को उद्देश्य करके घञ् प्रत्यय का विधान करते हैं। इस प्रकार वहां-वहां प्रकृति-प्रत्यय का विभाग करना चाहिए। यहां पाणिनि

# पाठ-2

## संज्ञा प्रकरण-1

ध्यान दें:

मुनि ने अष्टाध्यायी में प्रत्यय अधिकार सूत्र किया। उसके अधिकार में जो कहा गया है वे प्रत्यय भी जानने चाहिए। परन्तु अधिकार आदि के ज्ञान के बिना उसको नहीं जान सकते। अतः अलं तेन।]

### पाठगत प्रश्न-2

15. आदिरन्त्येन सहेता इस सूत्र में संज्ञा-संज्ञि का निर्णय कीजिए?

16. आदिरन्त्येन सहेता यह किस प्रकार का सूत्र है?

17. आदिरन्त्येन सहेता इस सूत्र का अर्थ लिखिए?

18. आदिरन्त्येन सहेता इस में निर्मित एक प्रत्याहार को बताते हुए उसके संज्ञि को लिखिए?

19. आदिरन्त्येन सहेता सूत्र यह संज्ञा नहीं करता?

    1) इक्  2) हश्  3) खर्  4) खश्

20. स्तम्भ में परस्पर सम्बन्ध का मेल करो। **क स्तम्भ** में शब्द हैं। **ख स्तम्भ** में उनके लिए प्रत्याहार हैं। किसका कौन है मेल कीजिए।

| **क-स्तम्भः** | **ख-स्तम्भः** |
|---|---|
| 1) वर्णपर्यायः | क) ञय् |
| 2) स्वरपर्यायः | ख) शल् |
| 3) व्यञ्जनपर्यायः | ग) यण् |
| 4) वर्गप्रथमाः | घ) झष् |
| 5) ऊष्माणः | ङ) एच् |
| 6) अनुनासिकाः | च) अल् |
| 7) अन्तःस्थाः | छ) अच् |
| 8) स्पर्शाः | ज) चय् |
| 9) महाप्राणाः | झ) ञम् |
| 10) जन्यस्वराः | ञ) हल् |

## 1.3 ) इत्संज्ञा

यहां इत् संज्ञा किसकी होती है इस विषय को प्रस्तुत किया है। अष्टाध्यायी में अनुवृत्ति, विभक्ति विपरिणाम इत्यादि कैसे होता है इस विषय को भी प्रस्तुत किया है।

अष्टाध्यायी में इत्संज्ञक विधायक कुछ सूत्र क्रम से हैं। उनका उसी ही क्रम में यहां विमर्श करेंगे। उनकी व्याख्या भी यहां युगपद् करेंगे।

अष्टाध्यायी में सूत्र क्रमशः इस प्रकार हैं-

**[ 2.2 ] उपदेशेऽजनुनासिक इत्॥ ( 1.3.2 )**

**[ 2.3 ] हलन्त्यम्॥ ( 1.3.3 )**

**[ 2.4 ] न विभक्तौ तुस्माः॥ ( 1.3.4 )**

**[ 2.5 ] आदिर्ञिटुडवः॥ ( 1.3.5 )**

**[ 2.6 ] षः प्रत्ययस्य॥ ( 1.3.6 )**

**[ 2.7 ] चुटू॥ ( 1.3.7 )**

**[ 2.8 ] लशक्वतद्धिते॥ ( 1.3.8 )**

**[ 2.9 ] तस्य लोपः॥ ( 1.3.9 )**

इन सूत्रों में उपर के सूत्रों से कुछ पदों की अनुवृत्ति आती है। उसको नीचे दिखाया है। वहां जिस पद की अनुवृत्ति आती है उसको पीन (bold) किया है। सूत्र का पदच्छेद भी वहीं स्पष्ट दिया है।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | उपदेशे | | | अच् अनुनासिकः | इत् | 1.3.2 |
| 2. | उपदेशे | | | हल् अन्त्यम् | इत् | 1.3.3 |
| 3. | उपदेशे | विभक्तौ | तुस्माः न | हल | इत् | 1.3.4 |
| 4. | उपदेशे | | ञिटुडवः | आदिः | इत् | 1.3.5 |
| 5. | उपदेशे | षः | प्रत्ययस्य | आदिः | इत् | 1.3.6 |
| 6. | उपदेशे | चुटू | प्रत्ययस्य | आदिः | इत् | 1.3.7 |
| 7. | उपदेशे | अतद्धिते लशकु | प्रत्ययस्य | आदिः | इत् | 1.3.8 |
| 8. | | | तस्य | लोपः | इतः | 1.3.9 |

अनुवृत्ति के पश्चात् जो वाक्य होता है वहां शब्दों में विभक्ति रूपों में परिवर्तन होता है। वह परिवर्तन करके पदों के क्रम का परिवर्तन करके नीचे प्रकट किया है।

1. उपदेश में अच् अनुनासिक होता है।
2. उपदेश में अन्तिम हल् इत् होता है।
3. उपदेश में विभक्तौ हलः तुस्माः इतः न भवन्ति। (इतः-प्रथमा बहुवचनम्)
4. उपदेश में आदि ञिटुडवः इत् होते हैं।
5. उपदेश में प्रत्यय के आदि षः का इत् होता है।
6. उपदेश में प्रत्यय के आदि चुटू का इत् होता है। (इतौ - प्रथमा द्विवचन)
7. उपदेश में अतद्धित प्रत्यय के आदि लशकु का इत् होता है।
8. उस इत् का लोप होता है। (इतः - षष्ठी एकवचन)

**इनका इससे भी सरल भाषा में नीचे वर्णन करते हैं।**

1. उपदेश में जो अनुनासिक अच् है उसकी इत् संज्ञा होती है।

ध्यान दें:

ध्यान दें:



2. उपदेश में जो अन्तिम हल् है उसकी इत् संज्ञा होती है।

3. उपदेश में विभक्ति संज्ञक प्रत्यय में तवर्ग, सकार, मकार जो हल् वर्ण हैं उनकी इत् संज्ञा नहीं होती।

4. उपदेश में आदि में जो ञि टु डु हैं उनकी इत् संज्ञा होती है।

5. उपदेश में प्रत्यय के आदि जो षवर्ण वर्ण है उसकी इत् संज्ञा होती है।

6. उपदेश में प्रत्यय के आदि जो चवर्ग, टवर्ग हैं उनकी इत् संज्ञा होती है।

7. उपदेश में जो तद्धित भिन्न प्रत्यय के आदि लवर्ण, शवर्ण, और कवर्ग इनकी इत् संज्ञा होती है।

8. जिसकी इत् संज्ञा होती है उसका लोप होता है।

जिसकी इत् संज्ञा होती है वह अनुबन्ध भी कहलाता है। इन इत् संज्ञक वर्णों की आगे सन्धि -प्रकरण आदि में बहुलता से प्रयोग एवम् उपयोग देखेंगे। अत: उदाहरण वहीं स्पष्ट होंगे।

## 2.10 अदर्शनं लोप:॥ ( 1.1.9 )

**सूत्रार्थ** - प्रसक्त का उच्चारण अभाव लोप संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - यह संज्ञा सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। न दर्शनम् अदर्शनम् यह नञ्-तत्पुरुष समास है। दर्शन शब्द का प्राथमिक अर्थ नेत्र ज्ञान है। सामान्य अर्थ ज्ञान है। तथापि यहां उच्चारण यह अर्थ ग्रहण करते हैं। अत: अदर्शन दर्शन अभाव, उच्चारण अभाव यह सुलभ है। सूत्र में उच्चारण अभाव का लोप यह संज्ञा होती है। किसके उच्चारण के अभाव को लोप यह नाम दें यह प्रश्न है। वह देखते हैं यहां।

**लौकिक उदाहरण से सूत्र के अर्थ का स्पष्टीकरण**- आज शाम 7 बजे चन्द्रमा दिखाई देगा यह हम जानते हैं। यदि शाम को 7 बजे चन्द्रमा दिखाई नहीं देता तो कहते हैं कि चन्द्रमा लुप्त है या चन्द्रमा का लोप है। 7 बजे चन्द्रमा के दर्शन होंगे इस अन्य प्रकार से भी प्रकट कर सकते हैं। जैसे शाम को 7 बजे चन्द्रमा प्रकट है। इस प्रकार प्रकट चन्द्रमा का दर्शन अभाव लोक में लोप के रूप में व्यवहार करते हैं। ऋतु परिवर्तन होने पर वृष्टि, उष्णता, सर्दी भी परिवर्तित होते हैं। उस ग्रीष्म ऋतु में उष्णता होती है। वर्षा ऋतु में बारिश होती है। इसी प्रकार ऋतु के अनुसार वृक्षों में फल होते हैं। अर्थात् कोई भी विशिष्ट कारण नहीं होता उन-उन फलों के होने का। इस प्रकार जिस शब्द का या वर्ण का उच्चारण प्राप्त था उस प्राप्त उच्चारण का अभाव लोप कहा जाता है। इस सूत्र में उच्चारण अभाव संज्ञी है, लोप यह संज्ञा है। अत: सूत्र का अर्थ होता है ख्र प्राप्त हुए उच्चारण का अभाव लोप संज्ञा है।

उदाहरण - अ इ उ ण् । ऋ ऌ क्। इन दो सूत्रों में ण् क् इन दोनों वर्णों की इत् संज्ञा है, उनका लोप होता है।

सूत्र के अर्थ का समन्वय - जब अक् इस प्रत्याहार में कौन-से वर्ण हैं यह प्रश्न होता है तब अ इ उ ऋ ऌ ये पांच वर्ण ही होते हैं यह उत्तर होता है। उत्तर में ण् क् इन वर्णों का उच्चारण नहीं होता, गणना नहीं होती। यदि इनकी इत्-संज्ञा नहीं होती तो उच्चारण भी होता। जिसकी इत्-संज्ञा उसका लोप होता है, अर्थात् उसका उच्चारण अभाव होता है। इस प्रकार प्राप्त हुए का उच्चारण अभाव या व्यवहार अभाव लोप कहलाता है।

ध्यान दें:

## पाठगत प्रश्न-3

1. तस्य लोपः इस सूत्र से किसका लोप होता है।
2. अनुबन्ध किसे कहते हैं।
3. अदर्शनं लोपः इस सूत्र का क्या अर्थ है।
4. अदर्शनं लोपः इस सूत्र में अदर्शन शब्द का क्या अर्थ है।
5. अदर्शनं लोपः इस सूत्र में संज्ञासंज्ञि का निर्णय करो।
6. किसका लोप होता है।

   1) अदर्शन का  2) सूत्र का  3) धातु का  4) इत्-संज्ञा का
7. जश् इस प्रत्याहार में किसकी गणना नहीं होती है।

   1) ज्  2) श्  3) ब्  4) ड्

## ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः॥ ( 1.2.27 )

**सूत्रार्थ** - तीनों उकारों के उच्चारण के काल की तरह उच्चारणकाल है जिस अच (स्वर का) वह अच् क्रमपूर्वक ह्रस्वसंज्ञक दीर्घसंज्ञक व प्लुतसंज्ञक होता है।

**सूत्रव्याख्या** - यह सूत्र संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। ऊकालः अच् ह्रस्वदीर्घप्लुतः यह पदच्छेद है। सभी पद प्रथमा एकवचनान्त है। ह्रस्वः च दीर्घः च प्लुतः च ह्रस्वदीर्घप्लुतः यहां समाहारद्वन्द्वसमास है। (समाहारद्वन्द्व नपुंसकलिङ्ग वाला होता है। किन्तु सूत्र में पाणिनिमुनि ने ऐसा नहीं किया। सूत्र में यह सम्भव है।) उश्च ऊश्च उ३श्च वः। ऊकार का प्रथमाबहुवचनान्त रूप वः है। वाम् यह षष्ठीबहुवचन का पद है। तेषाम् वाम् (उ ऊ उ३ इनका) उच्चारणकाल की तरह उच्चारणकाल है जिस अच (स्वर का) वह अच् क्रमशः ह्रस्वसंज्ञक दीर्घसंज्ञक व प्लुतसंज्ञक होवे यह सूत्रार्थ है।

अर्थात् उकार के उच्चारण के लिये जितना काल आवश्यक है उतना ही काल जिस स्वर के उच्चारण के लिये आवश्यक होता है उस स्वर की ह्रस्व यह संज्ञा होती है।

ऊकार के उच्चारण के लिये जितना काल आवश्यक है उतना ही काल जिस स्वर के उच्चारण के लिये आवश्यक होता है उस स्वर की दीर्घ यह संज्ञा होती है।

उ३कार के उच्चारण के लिये जितना काल आवश्यक है उतना ही काल जिस स्वर के उच्चारण के लिये आवश्यक होता है उस स्वर की प्लुत यह संज्ञा होती है।

**सूत्रार्थ का विवरण** - स्वृ शब्दोपतापयोः यह धातु है। स्वर्यन्ते शब्द्यन्ते इति स्वराः। उदात्तादियों के द्वारा जो स्वयं प्रकाशित होते हैं वे स्वर कहलाते हैं। अर्थात् स्वर का उच्चारण अन्यवर्ण की साहायता के विना सम्भव है। परन्तु स्वर के बिना केवल व्यञ्जन का उच्चारण जगत में कोई भी नहीं कर सकता है। व्यञ्जन के उच्चारण के लिये व्यञ्जन से पूर्व अथवा पर में कोई स्वर लगाया जाता है। एक व्यञ्जन के उच्चारण के लिये जितना काल आवश्यक है उसका परिणाम अर्धमात्रा कहलाता है। व्यञ्जन का उच्चारणकाल स्थिर ही होता है। वह न तो किसी के द्वारा बढाया जा सकता है और न ही किसी के द्वारा कम किया जा सकता है। इस तरह से व्यञ्जन अर्धमात्रिक होता है। अर्धमात्रा के दुगुने काल का

ध्यान दें:



परिमाण एकमात्रा होती है। इसप्रकार ह्रस्व एकमात्रिक होता है। दीर्घ द्विमात्रिक होता है। प्लुत त्रिमात्रिक होता है।

इस प्रकार एकमात्रिक अच् संज्ञी की ह्रस्व संज्ञा, द्विमात्रिक अच् संज्ञी की दीर्घ संज्ञा व त्रिमात्रिक अच् संज्ञी की प्लुत यह संज्ञा होती है।

कुक्कुट कु कू कु३ ऐसी आवाज करता है। वहां क्रमशः ह्रस्व दीर्घ व प्लुत उकार सुनाई देते हैं। कुक्कुट शब्द में उकार है। इससे सूत्र में आचार्य पाणिनिमुनि उकार का आदान करके प्रतिपादन किया है। अन्यथा तो अवर्ण वर्णमाला में माहेश्वरसूत्रों में प्रथम है। उसी का ही ग्रहण युक्त (उचित) था।

इसप्रकार अवर्ण इवर्ण उवर्ण व ऋवर्ण के ह्रस्व दीर्घ प्लुतभेद से तीन प्रकार होते हैं। ष्वर्ण के ह्रस्व व प्लुत के भेद से दो प्रकार होते हैं। उसका दीर्घ नहीं है। ए ओ ऐ औ इनका दीर्घ व प्लुतभेद से प्रत्येक के दो प्रकार हैं। इनके ह्रस्व नहीं होते हैं।

## उच्चैरुदात्तः॥ ( 1.2.29 )

**सूत्रार्थ** - तालवादि समान भागों में ऊर्ध्वभाग में निष्पन्न अच् उदात्तसंज्ञक होता है।

**सूत्रव्याख्या** - यह संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। उच्चैः उदात्तः यह सूत्रगतपदच्छेद है। तालवादि समान भागों में ऊर्ध्वभाग में निष्पन्न अच् उदात्तसंज्ञक होता है यह सूत्रार्थ है।

**सूत्रार्थविवरण** - नीचे समाहारः स्वरितः इस सूत्र की व्याख्याप्रसङ्ग में सविस्तर दिया गया है।

## नीचैरनुदात्तः॥ ( 1.2.30 )

**सूत्रार्थ** - तालवादि समान भागों में निम्नभाग में निष्पन्न अच् अनुदात्तसंज्ञक होता है।

**सूत्रव्याख्या** - यह संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। नीचैः अनुदात्तः यह सूत्रगतपदच्छेद है। न उदात्तः अनुदात्तः इति नञ्-तत्पुरुषः समासः। तालवादि समान भागों में निम्नभाग में निष्पन्न अच् अनुदात्तसंज्ञक होता है यह सूत्रार्थ है।

**सूत्रार्थविवरण** - नीचे समाहारः स्वरितः इस सूत्र की व्याख्याप्रसङ्ग में सविस्तर दिया गया है।

## समाहारः स्वरितः॥ ( 1.2.31 )

**सूत्रार्थ** - उदात्तत्व व अनुदात्तत्व ये दोनों वर्णधर्म जिस अच् में समाहित होते हैं वह अच् स्वरितसंज्ञक होता है।

**सूत्रव्याख्या** - यह संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। समाहरः स्वरितः यह सूत्रगतपदच्छेद है। समाहरण एकत्रीकरण अथवा मेलन समाहारशब्द का अर्थ होता है।

उदात्तत्व व अनुदात्तत्व ये दोनों वर्णधर्म जिस अच् में समाहित होते हैं वह अच् स्वरितसंज्ञक होता है यह सूत्रार्थ है। जिस अच् में उदात्तत्व व अनुदात्तत्व ये दोनों वर्णधर्म मिलित है वह अच् संज्ञी होता है। स्वरित यह संज्ञा है।

**सूत्रार्थविवरण** - तीनों ही सूत्रों का विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

**वर्णों के उच्चारणस्थान** -

ध्यान दें:

वर्णों के उच्चारण के लिये मुख के विविध स्थानों का उपयोग होता है। वे स्थान आठ हैं। यहां पांच स्थानों का ही वर्णन है।

गले में अथवा ग्रीवा के सम्मुख में उन्नत भाग होता है। वह ठोडी के निम्न भाग में होता है। उसका नाम काकलक है। वही लोक में कण्ठमणि कहलाता है। काकलक से लेकर ओष्ठ तक पांच स्थान उच्चारण के लिये व्यवहित होते हैं। और वे - 1) कण्ठ, 2) मूर्धा, 3) तालु, 4) दन्ता, 5) औष्ठ ।

अवर्ण के उच्चारण के लिये श्वासनलिका का आकुञ्चन किया जाता है। नलिका का जो अंश आकुञ्चित होता है उसका नाम कण्ठ है। मुखविवर में उपरितन गोलाकार उन्नततम स्थान मूर्धा होता है। उसके पश्चात् दान्तों तक विस्तीर्ण विभाग का जो मध्यबिन्दु है वह तालु कहलाता है। दन्ता: दशना: यह प्रसिद्ध है। और दो ओष्ठ।

**उदात्त क्या होता है** -

कण्ठ का जितना भाग उच्चारण के लिये उपयोगी होता है उसके दो भाग कर लेने चाहिये। ऊर्ध्वभाग व अधोभाग।

यहां उच्चौ: इस शब्द का अर्थ होता है - ऊर्ध्वभाग में। उच्चौ: इसका महान् ध्वनि यह अर्थ यहां नहीं है। कण्ठ के ऊर्ध्वभाग में अभिघात से जो स्वर उत्पन्न होता है वह उदात्त कहलाता है।

जैसे कण्ठ के भाग कल्पित हैं। उसका ऊर्ध्वभाग व अधोभाग कल्पित है। उसी प्रकार तालु, मूर्धा, दन्त व ओष्ठ के भी भाग कल्पनीय है।

**अनुदात्त क्या होता है** -

सूत्रस्थ नीचौ: इस शब्द का अर्थ होता है - निम्नभाग में। नीचौ: इसका निम्न ध्वनि यह अर्थ यहां नहीं है। कण्ठ के निम्नभाग में अभिघात से जो स्वर उत्पन्न होता है वह अनुदात्त कहलाता है।

**स्वरित क्या है** -

उदात्त स्वर का धर्म उदात्तत्व। अनुदात्त स्वर का धर्म अनुदात्तत्व। जिस स्वर में उदातत्व व अनुदात्तत्व मिलित होते हैं वह स्वर स्वरित स्वर कहलाता है। अत: स्वरितके उच्चारण में कण्ठादि ऊर्ध्वभाग व अधोभाग भी व्यवहित होता है।

**स्वरित में उदात्तत्व व अनुदात्तत्व का विभाग** -

स्वरित के किस भाग में उदात्तत्व व किस भाग में अनुदात्तत्व है यह ज्ञान अपेक्षित है। स्वरितस्वर में पूर्वार्धभाग उदात्त होता है। उत्तरार्धभाग अनुदात्त होता है। स्वरितस्वर के बाद यदि अन्य उदात्त अथवा स्वरित स्वर हो तो इस अनुदात्तभाग का उच्चारण अनुदात्त ही होता है। यदि इस स्वरितस्वर से परे अनुदात्तस्वर होवे तो स्वरित का जो अनुदात्तभाग है उसका उच्चारण उदात्ततर होता है। अर्थात् उदात्त से भी ऊर्ध्वभाग में निष्पन्न होता है।

स्वरित से परे उदात्त अथवा स्वरित यह स्थिति हो तो अनुदात्तभाग का उच्चारण अनुदात्त ही होगा।

स्वरित से परे अनुदात्त अथवा प्रचय यह स्थिति हो तो अनुदात्तभाग का उच्चारण उदात्ततर होता है।

**प्रचय अथवा एकश्रुति**

स्वरितस्वर के अनन्तर अनुदात्तस्वर व उसके बाद यदि उदात्त इति होवे तब उदात्त से पूर्व विद्यमान

ध्यान दें:



एक अनुदात्त अधोरेखा से चिह्नित होता है। उससे पूर्व विद्यमान अनुदात्त स्वरचिह्नहीन होते हैं। उन्हीं अनुदात्तों का नाम प्रचय अथवा एकश्रुति है।

**उदाहरण** - अग्निमीळे पुरोहितम् (ऋ.1.1.1)। उप त्वाग्ने दिवेदिवे (ऋ.1.1.7)। अप्रयुतामेवयावो मतिं दा:'। (ऋ.7.100.2)

**सूत्रार्थसमन्वय** - अग्निमीळे पुरोहितम् ये ऋग्वेद के अग्निसूक्त के प्रथम शब्दत्रय हैं। इसमें अग्निमीळे यहां अकार अनुदात्त है। इकार उदात्त है। ईकार स्वरित है। एकार प्रचय है। अत एव ईकार का जो उत्तरार्धभाग है उसका उदात्ततर उच्चारण होता है। व्यञ्जन के उदात्तत्वादिक नहीं होते हैं।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे (ऋ.1.1.7) यहां उप इसमें उकार उदात्त, पकार से परे अकार स्वरित। दिवे यहां दकार से परे इकार अनुदात्त है। 'त्वाग्ने' यहां सभी स्वर प्रचय हैं।

अप्रघ्युतामेवयावो मघतिं दा:घ। (ऋ.७.१००.२) यहां अप्रघ इसमें प्रथम अकार उदात्त व द्वितीय अकार स्वरित है। मघतिं यहां मकार से परवर्ती अकार अनुदात्त है। श युतामेवयावो श यहां सभी स्वर प्रचय है।

## पाठगत प्रश्न-4

8. ह्रस्व संज्ञा किसकी होती है।
9. उदात्त क्या होता है।
10. स्वरित संज्ञा विधायक सूत्र कौन-सा है।
11. स्वरित के किस भाग में उदात्तत्व है।
12. प्रचय क्या है।
13. एक वैदिक उदाहरण देकर वहां उदात्त अनुदात्त स्वरित व प्रचयों को बोलो।
14. किसका उच्चारण अन्यों की साहायता के बिना होता है।

    1) विसर्गस  2) अनुस्वार  3) स्वर  4) व्यञ्जन

15. क्या स्वरित नहीं होता है।

    1) ह्रस्व  2) दीर्घ  3) प्लुत  4) व्यञ्जन

16. प्रचय वस्तुत: क्या होता है।

    1) उदात्त  2) अनुदात्त  3) स्वरित  4) इनमें से कोई नहीं

## मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः ( 1.1.8 )

**सूत्रार्थ** - मुखसहित नासिका से उच्चार्यमाण वर्ण अनुनासिकसंज्ञक होते हैं।

**सूत्रव्याख्या** - यह संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। मुखनासिकावचन: अनुनासिक: यह पदच्छेद है। दोनों ही पद प्रथमान्त है। मुखसहिता नासिका इति मुखनासिका यहां मध्यमपदलोपी तत्पुरुषसमास है। उच्यते उच्चार्यते इति वचन:। जो कहा जाता है वह उच्चारण का कर्म वचन कहलाता है। अर्थात् उच्चारणविषय। मुखनासिकया वचन: इति मुखनासिकावचन: यहां तृतीयातत्पुरुष समास है। मुखसहित

ध्यान दें:

नासिका से जो वर्ण उच्चरित होते हैं वे वर्ण अनुनासिक कहलाते हैं। यहां मुखनासिका सहित उच्चारित वर्ण संज्ञी होता है। अनुनासिक यह संज्ञा होती है।

**उदाहरणम्** - अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ।

कुल मिलाकर किस वर्ण के कितने भेद होते हैं, कितने प्रकार होते हैं यह एकत्र दर्शन आवश्यक है। ऊपर उक्तरूप से एक अवर्ण के ह्रस्व दीर्घ प्लुत ये तीन भेद होते हैं। उनमें ह्रस्व के भी उदात्त अनुदात्त स्वरित ये तीन  भेद होते हैं एवं दीर्घ के भी उदात्त अनुदात्त व स्वरित ये तीन भेद होते हैं एवं इसीप्रकार प्लुत के भी उदात्त अनुदात्त स्वरित ये तीन भेद होते हैं। इस तरह नौ भेद स्पष्ट हैं।

उन नौ भेदों में भी एक एक भेद के अनुनासिक व अननुनासिक ये दो भेद होते हैं। अत: कुल मिलाकर एक अकार के अठारह भेद सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार अ इ उ ऋ इन प्रत्येक वर्णों के अठारह भेद होते हैं। ऌवर्ण ह्रस्व व प्लुत होता है दीर्घ नहीं होता है । अत: उसके बारह भेद ही होते हैं। इस प्रकार ए ओ ऐ औ इन एचों के दीर्घ व प्लुत ये भेद होते हैं, उनका ह्रस्वभेद नहीं होता है। अत: एच् प्र्त्याहार के भी प्रत्येक वर्ण के बारह भेद ही होते हैं।

य् व् ल् इन तीनों के भी अनुनासिक व अननुनासिक  भेद होते हैं। एवम् य् यँ , व् वँ, ल् लँ ये प्रकार होते हैं।

**अकार के भेद चित्रमुख से प्रकटित हैं-**

अ

ह्रस्व अ     दीर्घ आ     प्लुत अ३

उदात्त अ     अनुदात्त अ     स्वरित अ     उदात्त आ     अनुदात्त आ     स्वरित आ

अनुनासिक अँ

अननुनासिक अ     उदात्त अ३     अनुदात्त अ३     स्वरित अ३

## पाठ सार

संस्कृतभाषा में 63 वर्ण हैं। उसमें ळकार, अनुस्वार, दो जिह्वामूलीय, दो उपध्मानीय भी अन्तर्भूत होते हैं। वर्णमाला का जो नैसर्गिक क्रम है वह किसी के द्वारा भी आयोजित है ऐसा ज्ञात नहीं होता है परन्तु यह अतीव वैशिष्ट्यपूर्ण है। प्रथम स्वर, तदनन्तर व्यञ्जन ये सब बहुत वैशिष्ट्ययुक्त हैं।

लघु उपाय से व्याकरण के सूत्र बनाने के लिये पाणिनिमुनि ने महेश्वर से चौदह (14) सूत्र प्राप्त किये। वे ही माहेश्वरसूत्र कहलाये। उनमें प्रतिसूत्र जो अन्तिम वर्ण है वह इत्-संज्ञ होता है। उसकी साहायता से प्रत्याहार बनाये जाते हैं। प्रत्याहारनिर्माण की प्रक्रिया में आदिरन्त्येन सहेता यह सूत्र पाणिनि ने बनाया।

व्याकरण के तीन मुनियों द्वारा उक्त प्रत्ययादि उपदेश कहलाते हैं। उन उपदेशों में कुछ वर्ण इत्-संज्ञक होते हैं। इत्-संज्ञाविधायक सात सूत्र हैं। उन सूत्रों से विविध वर्णों व वर्णसमुदायों की इत्-संज्ञा की जाती है। इत्-संज्ञक ही अनुबन्ध कहलाता है। अनुबन्ध का लोप अर्थात् व्यवहाराभाव तस्य लोप: इस सूत्र से होता है।

# पाठ-2

## संज्ञा प्रकरण-1

ध्यान दें:

इत्-संज्ञाविधायकसूत्र जहां आलोचित है वहीं पाणिनिसूत्रों में अनुवृत्ति, पद का वचनविपरिणाम, अनुवर्तमान पद की निवृत्ति ये सब विषय आलोचित हैं।

प्रसक्त शब्दस्वरूप के उच्चारण का अभाव व्यवहार का अभाव लोप होता है यह अदर्शनं लोपः इस सूत्र का अर्थ आलोचित है।

संस्कृतभाषा में जितने वर्ण हैं उनमें स्वर व व्यञ्जन ये दो भाग होते हैं प्राधान्य से। स्वर ही अच् हैं। व्यञ्जन ही हल् है।

उकार के उच्चारण के लिये जितना काल आवश्यक है उतना काल जिस स्वर के उच्चारण के लिये आवश्यक होता है उस स्वर की ह्रस्व यह संज्ञा होती है ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः सूत्र का यह अर्थ है। इसी सूत्र से दीर्घसंज्ञा व प्लुतसंज्ञा भी की जाती है। इस तरह स्वरों के ह्रस्व दीर्घ प्लुत ये तीन भेद सम्पन्न होते हैं।

उच्चैरुदात्तः इस सूत्र से उदात्तसंज्ञा, नीचैरनुदात्त इस सूत्र से अनुदात्तसंज्ञा व समाहारः स्वरितः इस सूत्र से स्वरितसंज्ञा की जाती है। स्वरित स्वर का प्रथमार्धभाग उदात्त होता है, उत्तरार्धभाग अनुदात्त होता है। पूर्व में जिनके ह्रस्व दीर्घ प्लुतभेद होते हैं उनकी पुनः इन सूत्रों से अनुदात्त उदात्त स्वरित ये तीन भेद होते हैं।

जिस वर्ण के उच्चारण के लिये मुख के साथ नासिका का भी व्यवहार होता है वह वर्ण अनुनासिक कलाता है ऐसा मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः इस सूत्र का अर्थ है। यद्यपि अननुनासिकसंज्ञा विधायक कोई सूत्र नहीं है तथापि यह समझना चाहिये कि जिसका केवल मुख से उच्चारण होता है वह अननुनासिक अथवा निरनुनासिक कहलाता है। इससे प्रत्येक स्वर दो भाग होते हैं - अनुनासिक व अननुनासिक । इस प्रकार अ इ उ ऋ इनके प्रत्येक के अठारह भेद होते हैं। ञ ए ओ ऐ औ इनके प्रत्येक के बारह भेद होते हैं।

### योग्यतावर्धन

इस पाठ में प्रत्याहारनिर्माण की प्रक्रिया को हमने पढा। पठित विषय में दृढता सम्पादित करने के लिये निम्नबिन्दुओं का अवलोकन कर निर्देशानुसार छात्र कार्य करें।

- जिसी भी प्रत्याहार में कौन कौन से वर्ण हैं यह सुस्पष्ट ज्ञान अपेक्षित है तो माहेश्वरसूत्रों कण्ठस्थ करने के अलावा कोई उपाय नहीं है। अतः उनके स्मरण के लिये प्रकृष्ट यत्न श्रद्धया करना चाहिये।
- पठित सूत्र अष्टाध्यायी में जहां हैं सन्ति उस स्थल को अष्टाध्यायी में उद्घाटित कर किस सूत्र से क्या पद अनुवर्तित है, कौन सा अधिकार आता है यह देखे।
- प्रत्येक स्वर के सभी प्रकरणों का चित्ररूप में प्रकटन करना चाहिये।
- गुरुमुख से वेद पढ कर वहां उदात्त अनुदात्त स्वरित व प्रचयों का चयन करे।

### पाठान्त प्रश्न-5

नीचे अभ्यास के लिये प्रश्न दीये जा रहे हैं। छात्रों को पाठ को सम्यक् पढ, समझ व विमर्श कर

इन प्रश्नों के उत्तर स्वयं की टिप्पणीपुस्तिका में लिखिये। प्रायः अनेक जगह उत्तर दीर्घ होवे।

1. संस्कृत की वर्णमाला लिख कर उसका वैशिष्ट्य लिखिये।
2. माहेश्वरसूत्रों का वैशिष्ट्य लिखिये।
3. प्रत्याहार निर्माण की प्रक्रिया को संक्षेप से वर्णित करें।
4. उपदेश कौन-से हैं स्पष्ट करिये।
5. आदिरन्त्येन सहेता इस सूत्र को व्याख्यायित करिये।
6. अदर्शनं लोपः इस सूत्र को व्याख्यायित करें।
7. स्वरित के किस भाग में उदात्तत्व व किस भाग में अनुदात्तत्व होता है यह सोदाहरण स्पष्ट करिये।
8. अवर्ण के सभी भेदों को लिखिये।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

नीचे पाठगतप्रश्नों के उत्तर लिखित हैं। वे सूचकोत्तर हैं। अर्थात् अत्यन्त लघु उत्तर हैं। परीक्षा में उत्तरलेखन काल में स्पष्ट वाक्य लिखें तो अच्छा रहेगा।

**उत्तर-1**

9. 63
10. ऋलृक्।
11. अन्त्य। अनुनासिक।
12. संक्षेप।
13. जश्।
14. शषस।
15. धातु, सूत्रा, गण में पठित शब्द, उणादिसूत्र, वार्तिक, लिङ्गानुशासन, आगम प्रत्यय व आदेश इनका ए आद्योच्चारण ही उपदेश है।
16. 3)
17. 2)
18. 1)
19. 2)
20. 4)
21. 2)

ध्यान दें:

ध्यान दें:



22. 4)

**उत्तर-2**

23. अन्त्य इत्संज्ञक के साथ, आदि वर्ण व मध्यगत वर्णों की संज्ञा होती है। आदि और मध्यगत संज्ञी होते हैं।

24. संज्ञा सूत्र।

25. अन्त्य इत् के साथ आदि व मध्यगत स्वर की संज्ञा होती है।

26. प्रत्याहार - यण। तत्संज्ञी - यवरल।

27. 4)

28. 1) च) 2) छ) 3) ञ) 4) ज) 5) ख)
6) झ) 7) ग) 8) क) 9) घ) 10) ङ)

**उत्तर-3**

29. इत्संज्ञक का।

30. इत्संज्ञक का।

31. प्रसक्त के उच्चारणाभाव लोपसंज्ञक होता है।

32. उच्चारण का अभाव।

33. प्रसक्त के उच्चारण के अभाव का अर्थ संज्ञी, लोप यह संज्ञा है।

34. 4)

35. 2)

**उत्तर-4**

36. उकार के उच्चारण के लिये जितना काल आवश्यक है उतना काल जिस स्वर के उच्चारण के लिये आवश्यक होता है उस स्वर की ह्रस्व यह संज्ञा होती है।

37. कण्ठ के ऊर्ध्वभाग में अभिघात से जो स्वर उत्पन्न होता है वह उदात्त कहलाता है।

38. समाहार: स्वरित:।

39. स्वरितस्वर में पूर्वार्धभाग उदात्त होता है।

40. स्वरितस्वर के अनन्तर अनुदात्तस्वर उसके पश्चात् उदात्त यह स्थिति जब होती है तब उदात्त से पूर्व विद्यमान एक अनुदात्त अधोरेखा से चिह्नित होता है। उससे पूर्व विद्यमान अनुदात्त स्वरचिह्नहीन होते हैं। उन्हीं अनुदात्तों का नाम प्रचय अथवा एकश्रुति है।

41. अप्रयुतामेवयावो मतिं दा:'। (ऋ.7.100.2) यहां अप्र' इसमें प्रथम अकार उदात्त, द्वितीय अकार स्वरित। मतिं यहां मकार से परवर्ती अकार अनुदात्त। 'युतामेवयावो' यहां सभी स्वर प्रचय है।

42. 3)

43. 4)

44. 2)

3

# संज्ञा प्रकरण-2

ध्यान दें:

पूर्व के पाठ में वर्ण, उनके भेद, भेदों के नाम, वर्णोच्चारण प्रक्रिया, स्वरों के बहुविधि प्रकार के बारे में बताया गया है। आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न के विषय में भी बताया है। सवर्ण संज्ञा करके कौन-सा वर्ण कब अपने स्व सवर्ण की संज्ञा होती है इस विषय पर भी पूर्व पाठ में आलोचना की है। इससे शब्द का जो मूल घटक है वह वर्ण, उसका व्याकरणोपयोगिता विवरण सम्पन्न हुआ।

इस पाठ में सभी वर्ण के उच्चारण स्थान आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न की आलोचना करेंगे। इसके उपयोग से एक वर्ण का अपर वर्ण सवर्ण कैसे होता है यह भी जानना चाहिए। वहां ही एक सवर्ण अपर सवर्ण का ग्रहण कब करता है मुख्य विषय है। तपरकरण का अर्थ और तात्पर्य ये दूसरा विषय आगे है। किन्तु व्याकरण में कैसे शब्द को लेकर कार्य होता है व्याकरण का वैशिष्ट्य भी यहाँ ही आगे है। अनेक सूत्रों में तदन्तविधि और तदादिविधि होती है। अत: वह विषय आलोच्य है।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- वर्णोच्चारण की प्रक्रिया को जान पाने में;
- वर्ण के उच्चारण स्थान आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न को भी जान पाने में;
- कौन अनुस्वार, कौन उपध्मानीय, कौन जिह्वामूलीय इत्यादि विषय में जान पाने में;
- अनिष्ट सवर्ण को हटा पाने में;
- ग्रहणकशास्त्र को जान पाने में;
- एक सवर्ण अपर सवर्ण का ग्रहण कब करता है जान पाने में;
- तपरकरण कर पाने में;
- व्याकरण शास्त्र में शब्द का संस्कार होता है अर्थ का नहीं इस विषय में पाणिनि सूत्र को पढ़ पाने में;
- तदन्त विधि और तदादि विधि कर पाने में;

ध्यान दें:



## 3.1 तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्॥ ( 1.1.9 )

**सूत्रार्थ**- जिस वर्ण का जिस वर्ण से तुल्य उच्चारण स्थान है, किन्तु तुल्य आभ्यन्तर प्रयत्न होता है तो उन दोनों सवर्ण है। एक वर्ण अपर वर्ण का सवर्ण संज्ञक होता है यह अर्थ है।

**सूत्र व्याख्या**- संज्ञा सूत्र है। सूत्र में दो पद है। तुल्यास्यप्रयत्नम् प्रथमान्त पद है। सवर्णम् प्रथमान्त संज्ञापद है। तुल्यशब्द का सदृश अर्थ है। आस्य इसका मुख अर्थ है। किन्तु इस सूत्र में अर्थ होता है- आस्ये मुखे भवम् आस्यम् इति। मुख में विद्यमान अर्थ है। मुख में तालु दन्त मूर्धा ओष्ठ और कण्ठ पांच स्थान है। अतः प्रकरणोपयोगिता से आस्य शब्द का ताल्वादिस्थान अर्थ है। प्रकृष्टः यत्नः प्रयत्नः इति प्रादितत्पुरुषसमासः। आस्यं च प्रयत्नः च आस्यप्रयत्नौ इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमासः। तुल्यौ आस्यप्रयत्नौ यस्य वर्णजालस्य तत् तुल्यास्यप्रयत्नम् इति बहुव्रीहिसमासः। जिस वर्ण का जिस अपर वर्ण से तुल्य सदृश उच्चारण स्थान और भी तुल्य आभ्यन्तर प्रयत्न होता है वह वर्ण उस अपर का सवर्ण संज्ञक होता है।

**व्युत्पत्तिः** - किसी भी शब्द का अर्थ प्रकट करने के लिए इस रूप से उसका अवलम्बन करते हैं-

तुल्य शब्द का सदृश अर्थ है।

'तुल्य सदृश'।

'तुल्य शब्द सदृश का पर्याय' है।

'तुल्य कहने पर सदृश अर्थ' है।

इन सभी वाक्यों का अर्थ समान ही है। परन्तु जब 'प्रचयः एकश्रुतिः' ऐसा कहते हैं तब उसका अर्थ क्या होता है शीघ्रता से उसका ज्ञान प्रारम्भिक अवस्था में छात्रों को नहीं होता है। परन्तु वहां अर्थ करना चाहिए- प्रचय को ही एकश्रुति कहते हैं। अपर उदाहरण - 'विसर्जनीयः विसर्गः' इसका अर्थ - विसर्जनीय इसका पर्याय शब्द विसर्ग है। अथवा विसर्जनीय ही विसर्ग कहलाता है।

इस प्रकार से वहां-वहां जानना चाहिए

### स्थान

यहाँ प्रश्न होता है कि किस वर्ण का क्या उच्चारण स्थान है। उसका ही यहाँ उल्लेख किया है। नीचे शिक्षा ग्रन्थ में स्थित कुछ वचन उसके अर्थ के लिए उपस्थापित करते हैं।

**1 ) अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। 2 ) इचुयशानां तालु। 3 ) ऋटुरषाणां मूर्धा। 4 ) लृतुलसानां दन्ताः। 5 ) उपूपध्मानीयानामोष्ठौ। 6 ) ञमङणनानां नासिका च। 7 ) एदैतोः कण्ठतालु। 8 ) ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। 9 ) वकारस्य दन्तोष्ठम्। 10 ) जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्। 11 ) नासिकानुस्वारस्य।**

**अर्थ-**

1) अ कु (कवर्ग - क ख ग घ ङ) ह विसर्जनीय इनका उच्चारणस्थान कण्ठ है। कण्ठदेश का आकुञ्चन करके वायु को रोध करके इन वर्ण का उच्चारण करते हैं। यहाँ अ इससे उसके 18 भेद समझने चाहिए।

ध्यान दें:

2) इ चु (चवर्ग - च छ ज झ ञ) य श इनका उच्चारण स्थान तालु। यहाँ इ इससे उसके 18 भेद समझना चाहिए।

3) ऋ टु (टवर्ग - ट ठ ड ढ ण) र ष का उच्चारण स्थान मूर्धा है। यहाँ ऋ इससे उसके 18 भेद समझना चाहिए।

4) ऌ तु (तवर्ग - त थ द ध न) ल स का उच्चारण स्थान दन्त होता है। यहाँ दन्त इसका अर्थ दन्तमूल है। यहाँ ऌ इससे उसके 12 भेद जानने चाहिए।

5) उ पु (पवर्ग: - प फ ब भ म) उपध्मानीय का उच्चारणस्थान ओष्ठ होता है। यहाँ उ इससे उसके 18 भेद जानने चाहिए।

6) ञ म ङ ण न का उच्चारण स्थान नासिका भी है। अर्थात् ञकार का तो उच्चारणस्थान तालु कहा ही है। परन्तु केवल तालु नहीं अपितु नासिका भी है। अत: ञकार का उच्चारण स्थान तालु और नासिका है। मकार का उच्चारण स्थान ओष्ठ और नासिका है। ङकार का उच्चारण स्थान कण्ठ और नासिका है। णकार का उच्चारण स्थान मूर्धा और नासिका है। नकार का उच्चारणस्थान दन्त और नासिका है।

7) ए ऐ दोनों का उच्चारण स्थान कण्ठ तालु है। यहाँ ए ऐ इन दोनों से उनमें प्रत्येक के 12 भेद जानना चाहिए।

8) ओ औ दोनों का उच्चारण स्थान कण्ठोष्ठ होता है। यहाँ ओ औ दोनों के 12 भेद समझने चाहिए।

9) व का उच्चारणस्थान होता है दन्तोष्ठ।

10) जिह्वामूलीय का उच्चारणस्थान जिह्वामूल होता है।

11) अनुस्वार का उच्चारणस्थान नासिका होता है।

उपर में प्रयुक्त कुछ शब्दो के अर्थ-

**विसर्जनीय**- विसर्जनीय शब्द विसर्ग का पर्याय है। विसर्ग को प्रकट करने के लिए स्वर वर्ण से पर ':' इस प्रकार बिन्दु दो देते है लेखन काल में। विसर्ग स्वर से पर ही होता है। पूर्व स्वर का प्रभाव विसर्ग के उच्चारण में होता है। उसको यहाँ प्रदर्शित करते हैं।

| क्रम | स्थिति | उच्चारण |
|---|---|---|
| 1 | अ: / राम: | प्राय: ह इव |
| 2 | आ: / रामा: | प्राय: हा इव |
| 3 | इ: / हरि: | प्राय: हि इव |
| 4 | उ: / भानु: | प्राय: हु इव |
| 5 | ए: / हरे: | प्राय: हे इव |
| 6 | ऐ: / देवै: | प्राय: हि इव |
| 7 | ओ: / भानो: | प्राय: हो इव |
| 8 | औ: / गौ: | प्राय: हु इव |

ध्यान दें:



**उपध्मानीय**- पकार से पूर्व अथवा फकार से पूर्व यदि विसर्ग है तो उसके स्थान में अर्धविसर्ग के समान लिखते हैं और उच्चारण करते हैं। तब उसका नाम उपध्मानीय होता है। उदा. - रामः पश्यति - रामपश्यति। वृक्षः फलति - वृक्षफलति। यहाँ उपध्मानीय है।

**जिह्वामूलीय**- ककार से पूर्व अथवा खकार से पूर्व यदि विसर्ग है तो उसके स्थान में अर्धविसर्ग के समान लिखते हैं और उच्चारण करते हैं। तब उसका नाम जिह्वामूलीय होता है। उदा. - रामः कथयति - रामकथयति। रामः खादति - रामखादति। यहाँ जिह्वामूलीय है।

**अनुस्वार**- स्वर से पर व्यञ्जन होने पर स्वर पर बिन्दु यदि लिखा है तो वह अनुस्वार कहलाता है। उदा. - रामं पश्यति। यहाँ मकार उत्तर अकार से पर विद्यमान बिन्दु अनुस्वार है।

## प्रयत्न

किस वर्ण का क्या प्रयत्न होता है। उसका ही यहाँ आलोचना की है। वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी ग्रन्थ से यहाँ उस भाग को कुछ परिवर्तन करके उपस्थापित करते हैं।

**यत्न** दो प्रकार के हैं। **आभ्यन्तर** और **बाह्य। आदि** चार प्रकार का। **स्पृष्ट ईषत्स्पृष्ट विवृत** और **संवृत भेद** से। वहां स्पृष्ट प्रयतन स्पर्शों का। ईषत्स्पृष्ट अन्तःस्थो का। विवृत ऊष्म का और स्वरो का। ह्रस्व अवर्ण का प्रयोग होने पर संवृत है। प्रक्रिया दशा में तो विवृत ही है।

बाह्यप्रयत्न तो ग्यारह है। विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

वर्ग का प्रथम द्वितीय खय जिह्वामूलीय उपध्मानीय विसर्ग शषसा इनका विवार, श्वास और अघोष है। अन्य तु संवार, नाद और घोष है। वर्ग का प्रथम, तृतीय, पञ्चम, य,र,ल और व अल्पप्राण है। अन्य महाप्राण है।

## अर्थ-

सूत्र में वस्तुत प्रयत्न शब्द है। परन्तु प्रसङ्ग से उससे अतिरिक्त विषय की आलोचना यहाँ की है।

आभ्यन्तर और बाह्य यत्न के दो प्रकार हैं।

आभ्यन्तर यत्न ही प्रयत्न कहलाता है। और वह चार प्रकार का है- स्पृष्ट, ईषत्-स्पृष्ट, विवृत और संवृत है।

बाह्ययत्न के ग्यारह भेद है। वे हि- विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित है।

यहाँ प्रश्न होता है कि कौन स्पर्श आदि है।

**वर्णोच्चारण प्रक्रिया**- नाभि प्रदेश से प्रयत्न द्वारा प्रेरित प्राण नाम वायु ऊर्ध्व जाता है। तब जिह्वा का अग्र, उपाग्र, मध्य और मूल मुख में विभिन्न स्थान पर वायु को विधारता है, (अग्रभाग वायु को विदीर्ण करता है।) वायु के मार्ग अवरोध करता है अर्थ। इस प्रकार विधार्यमाण वायु मुख में उस उस स्थान को चोट करता है। उस स्थान पर आघात करता है। उस स्थानाभिघात से वर्ण उत्पन्न होता है। अर्थात् वर्ण अभिव्यञ्जक ध्वनि उत्पन्न होती है। मुख के जिस स्थान पर वायु का अभिघात होता है उस स्थान पर वर्णध्वनि उत्पन्न होती है। उस स्थान को ही उस वर्ण का उच्चारणस्थान कहते है। उदा.- जैसे जिह्वा

ध्यान दें:

का मूल कण्ठ में वायु को विदीर्ण करता है। वह वायु कण्ठ को चोट करता है। उस स्थान अभिघात से अ वर्ण ध्वनि उत्पन्न होता है। अत: अकार का उच्चारणस्थान कण्ठ है।

**स्पर्श**- जब जिह्वा का अग्र, उपाग्र, मध्य अथवा मूल को मुख के किसी भी स्थान पर सही स्पर्श करता है। तब जो वर्ण उत्पन्न होते हैं वे स्पर्श कहलाते हैं। वर्णमाला में प्रदर्शित ककार से आरम्भ करके मकारपर्यन्त 25 वर्ण स्पर्श होते हैं। अत: कहते हैं कि **कादयो मावसाना: स्पर्शा:** इति। ञय्-प्रत्याहारस्थ स्पर्श होते हैं। इनका आभ्यन्तप्रयत्न स्पृष्ट होता है।

**अन्त:स्था:** - जब जिह्वा के अग्र, उपाग्र, मध्य अथवा मूल को ईषत् स्पर्श होता है। तब जो वर्ण उत्पन्न होते हैं वे अन्त:स्थ कहलाता है। यण्-प्रत्याहारस्थ अर्थात् य व र ल ये चार अन्त:स्थ कहलाते हैं। इनका आभ्यन्तरप्रयत्न **ईषत्-स्पृष्ट** होता है।

**ऊष्मवर्ण**- जब जिह्वा दूर से ही स्पृश करता है तब सभी स्वर और ऊष्म वर्ण उत्पन्न होते हैं। ऊष्मवर्ण शल्-प्रत्याहारस्थ श ष स ह चार है। स्वर अच्-प्रत्याहारस्थ है। इसी प्रकार अचो का और शल का आभ्यन्तरप्रयत्न **विवृत:** होता है। यद्यपि ऊष्माण और स्वर समानस्थान से समान आभ्यन्तरप्रयत्न से उत्पन्न होता है फिर भी **स्वयं राजन्ते इति स्वरा:** है, अर्थात् उनके उच्चारण में अन्य किसी भी वर्ण सहायता की आवश्यकता नहीं है। ऊष्माण का ऊष्मत्व होने पर बाह्यत्न कारण होता है। अत: स्वर के लिए ऊष्माण भेद बाह्यत्नवश से है।

जब जिह्वा समीपता से स्पृश करता है तब ह्रस्व अवर्ण उत्पन होता है। अइसका आभ्यन्तरप्रयत्न **संवृत:** होता है। ह्रस्व अवर्ण का लोक व्यवहारकाल में तो आभ्यन्तरप्रयत्न संवृत ही होता है। परन्तु जब रूप सिद्धि प्रक्रिया होती है तब वहा इसका विवृत: आभ्यन्तरप्रयत्न मानना चाहिए प्रक्रिया की सुगमता के लिए। वर्ण की उत्पत्तिकाल में ही स्पर्शादि होता है। अत: आभ्यन्तर प्रयत्न कहलाता है।

## बाह्यत्न

नाभिप्रदेश से ऊर्ध्व जाती हुई वायु मूर्धा से टकराती है। उसके बाद वह वायु निवृत्त होती है। निवृत्त वह कोष्ठ को चोट करती है। वायुनलिका में कण्ठमणि के अधोभाग को कोष्ठ कहते है, जिससे वायु उपर प्रेरित होती है।

अभिहनन से जब गलबिल विवृत होता है। उससे विवार: नाम वर्ण धर्म उत्पन्न होता है। जब गलबिल विवृत होता है तब उससे अव्यक्त शब्द उत्पन्न होता है। वह शब्द श्वास: कहलाता है। जब श्वास अनुप्रदान करता है तब श्वास ध्वनि सङ्ग से अघोष: उत्पन्न होता है।

अभिहनन से जब गलबिल संवृत होता है। तब **संवार:** नाम वर्णधर्म उत्पन्न होता है। संवृत गलबिल होने पर उससे अव्यक्त शब्द उत्पन्न होते हैं। वह शब्द **नाद:** कहलाता है। जैसे घण्डवादन से कुछ काल ध्वनि होती है और क्रमश: लघु होती है। यह ध्वनि नाद कहलाती है तथा यह नाद समझना चाहिए। जब नाद अनुप्रदीप्त होता है, तब नादध्वनिसङ्ग से **घोष:** होता है। जेद्से पर्वतों में ध्वनि करते हैं तो उसकी प्रतिध्वनि होती है। वैसे ही घोष इसका अर्थ प्रतिध्वनि है।

श्वासनाद को अनुप्रदान भी कहते हैं।

जब महान् वायु व्यवहार करतई है तब **महाप्राण:** वर्ण उत्पन्न होता है। जब अल्प वायु व्यवहार करती है तब **अल्पप्राण:** वर्ण उत्पन्न होते हैं।

ध्यान दें:



**उदात्त अनुदात्त स्वरित** तीनों पूर्व ही वर्णित है।

खय् शर् जिह्वामूलीय उपध्मानीय विसर्ग इनका बाह्यप्रयत्न विवार श्वास और अघोष है। हश् और अनुस्वार का बाह्यप्रयत्न संवार नाद और घोष है। चय् जश् और यम् अल्पप्राण है। झष् शल् ख फ छ ठ थ ये महाप्राण है। अचो का बाह्यप्रयत्न उदात्त अनुदात्त और स्वरित होता है। बाह्यप्रयत्न का उपयोग आन्तरतम्यपरीक्षा में होता है। उसका उदाहरण प्रक्रिया और प्रसङ्ग में कहते हैं।

एक वर्ण अपर का सर्वण कैसे होता है।

चकार का जकार से सावर्ण्य का विचार करते हैं।

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् सवर्णसंज्ञाविधायक सूत्र है। जिन दो वर्ण का मुख में उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न दोनों तुल्य है तो उन दोनों वर्ण की मिथ सवर्ण संज्ञा होती है। इचुयशानां तालु वचन से चकार का और जकार का उच्चारण स्थान तालु है। स्पृष्टं प्रयतनं स्पर्शानाम् वचन से चकार का और जकार का आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट है। अत: दोनों वर्ण का उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न तुल्य है। अत: चकार जकार का सवर्ण होता है। जकार और चकार का सवर्ण होता है। अर्थात् चकार जकार का मिथ सावर्ण्य होता है।

**सावर्ण्यविचारकाल में नासिका की गणना होती है अथवा नहीं**- पकार का उच्चारण स्थान ओष्ठ। मकार का उच्चारण स्थान ओष्ठ और नासिका। दोनों का आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट है। यहाँ विप्रतिपत्ति जो पकार मकार का सवर्ण है अथवा नहीं। कहाँ से। उच्चारणस्थान दोनों का समान नहीं है। मकार का नासिका अधिक है। वहां कहते हैं कि सावर्ण्यनिर्णयकाल में आस्यम् अर्थात् मुख में विद्यमान ही उच्चारणस्थान ग्राह्य है। मुख से बाहर विद्यमान स्थान की गणना नहीं है। नासिका तो मुख में नही है। उससे यद्यपि मकार का नासिका उच्चारणस्थान है। फिर भी उसकी गणना यहाँ नहीं करते है। अत: पकार मकार का सावर्ण्य होता है। अत: कहते हैं - आस्यभवयावत्स्थानसाम्यं सावर्ण्यप्रयोजकमिति।

## ऋकार ऌकारयो: सवर्णविधि: ( वार्तिक )

होतृऌकार: स्थल पर होतकार: सवर्णदीर्घ सन्धि इष्ट है। किन्तु ऋकार ऌकार का सवर्ण नहीं है। कहाँ से नहीं है सवर्ण। ऋकार का उच्चारणस्थान मूर्धा। ऌकार का उच्चारणस्थान दन्त है। दोनों का उच्चारणस्थानसाम्य नहीं है। अत: सावर्ण्य सम्भव नहीं है। अत: सवर्णदीर्घ सन्धि उन दोनों की नहीं होती है और इष्ट है। अत: वार्तिककार मुनि कात्यायन ने वार्तिक की रचना की- (वा.) ऋकार ऌकारयो: सवर्णविधि:। अत इस वार्तिक बल से ऋकार और ऌकार परस्पर सवर्ण होते हैं। यह ही वार्तिक वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में भट्टोजिदीक्षितवर्य से कुछ परिवर्तन करके लिखा है- **ऋऌवर्णयो: मिथ: सावर्ण्यं वाच्यम्** इति।

## अनिष्टं सावर्ण्यम् तस्य वारणं च।

वर्णों का अनिष्ट सावर्ण्य कैसे प्राप्त है। और उसका निवारण कैसे होता है नीचे आलोचना करते है।

**अनिष्टं सावर्ण्यम्**- अवर्ण का उच्चारणस्थान कण्ठ है। हकार का भी कण्ठ है। स्वरो और ऊष्माण का आभ्यन्तप्रयत्न विवृत है। अत: अकार हकार को सावर्ण्य प्राप्त है।

इकार का स्थान तालु। शकार का भी तालु। स्वरो का और ऊष्माण का आभ्यन्तप्रयत्न विवृत है। अत: इकार शकार को सावर्ण्य प्राप्त है।

ध्यान दें:

ऋवर्ण का उच्चारणस्थान मूर्धा। षकार का भी मूर्धा। स्वरो का और ऊष्माण का आभ्यन्तप्रयत्न विवृत है। अत: ऋकार षकार को सावर्ण्य प्राप्त है।

**वारणम्**- इस प्रकार से अनेक स्थान पर सन्धि प्रदेश में अनिष्ट रूप बनते हैं। अत: इन सावर्ण्य को हटाने के लिए पाणिनिमुनि द्वारा नाज्झलौ (1.1.10) सूत्र की रचना की। (न आ-अच्-हलौ) इस सूत्र का तात्पर्यार्थ है- अच् हल् परस्पर सवर्ण नहीं होते हैं। अर्थात् स्वर का व्यञ्जन के साथ सावर्ण्य नहीं होता है।

**ह्रस्व अकार का आभ्यन्तर प्रयत्न**- अइउण् माहेश्वर सूत्र में अकार विवृत है। साधुपद का निर्माण अष्टाध्यायी सूत्र करते हैं। अष्टाध्यायी में अन्तिम सूत्र अ अ (8.4.68) इति। उसका अर्थ- प्रक्रिया दशा में जो विवृत अकार वह लोक में व्यवहार के लिए संवृत का विधान करते हैं। इस सूत्र का अष्टाध्यायी में प्रभाव नहीं है। जब रूप बनते हैं तब वहां यदि ह्रस्व अकार हो तो प्रक्रियान्त में उसे वह संवृत करता है।

यद्यपि एकार का ऐकार से प्रकृत सूत्र से सावर्ण्य प्राप्त होता है। फिर भी एकार ऐकार का सवर्ण स्वीकार नहीं करते हैं।

यद्यपि ओकार का औकार से प्रकृत सूत्र से सावर्ण्य प्राप्त होता है तथापि ओकार औकार का सवर्ण स्वीकार नहीं करते हैं।

## पाठगत प्रश्न-1

1. अनुनासिक संज्ञा विधायक सूत्र लिखकर अर्थ लिखिए?
2. अकार के कितने भेद हैं?
3. सवर्ण संज्ञा विधायक सूत्र लिखकर अर्थ लिखिए?
4. पकार का उच्चारण स्थान क्या है?
5. चवर्ग का उच्चारण स्थान क्या है?
6. उपध्मानीय कौन है?
7. आभ्यन्तरप्रयत्न के भेदों को लिखिए।
8. हकार का बाह्यत्न क्या है।
9. नासिका के साथ मुख से उच्चारित वर्ण की क्या संज्ञा है?

   1) अननुनासिक 2) मूर्धन्य 3) अनुनासिक 4) इत्

10. किसका दीर्घ: प्रकार नहीं है?

    1) ऋ 2) इ 3) ऌ 4) ऐ

11. यह ऊष्मा वर्ण है?

    1) ढ 2) भ 3) ख 4) स

ध्यान दें:



12. तकार का बाह्यत्न क्या है?

1) घोष 2) नाद 3) श्वास 4) महाप्राण

13. ऋकार का सवर्ण क्या है?

1) र 2) ट 3) इ 4) ऌ

14. अनुप्रदान क्या है?

1) घोष 2) नाद 3) विवार 4) महाप्राण

## 3.2 अणुँदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः॥ ( 1.1.69 )

**सूत्रार्थ**- अण प्रत्याहार तथा उदित अपने स्वरूप तथा अपने सवर्ण का भी ग्रहण कराने वाले हैं होते हैं प्रत्यय को छोड़कर।

**सूत्र व्याख्या**- संज्ञा सूत्र है। पांच पद है। अण् उँदित् सवर्णस्य च अप्रत्ययः सूत्रगतपदच्छेद है। अण् उँदित् अप्रत्ययः तीन प्रथमान्त पद है। सवर्णस्य षष्ठी एकवचनान्त। च अव्ययपद है। स्वं रूपं शब्दस्या शब्द संज्ञा सूत्र से स्वम् पद की अनुवृति है और षष्ठ्यन्तत्व से विपरिणाम है।

प्रकृत सूत्र में अण् प्रत्याहार पर णकार से ग्राह्य है। उसमे अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल वर्ण है।

अप्रत्ययः अण् इसका विशेषण उँदित् इसका भी। उँदित् अप्रत्ययः अण् च सवर्णस्य स्वस्य इति पद योजना। संज्ञा प्रकरण में यह सूत्र पढ़ा गया है। अतः संज्ञा पद प्राप्त करता है। तब सूत्र का अर्थ होता है - अण प्रत्याहार तथा उदित अपने स्वरूप तथा अपने सवर्ण का भी ग्रहण कराने वाले हैं होते हैं प्रत्यय को छोड़कर।

प्रत्यय पद का क्या अर्थ है। उँदित्-पद का क्या अर्थ है। अण् किस णकार से प्रत्याहार प्रश्नों की नीचे आलोचना करते हैं।

**प्रत्ययः** (3.1.1) एक सूत्र है। वहां प्रत्यय शब्द का अर्थ होता है कि तृतीय चतुर्थ और पञ्चम अध्याय में जो जो विधान किया है उनकी संज्ञा हि प्रत्यय है। सभी जगह प्रत्यय शब्द का यह ही अर्थ ग्राह्य है। परन्तु इस सूत्र में प्रत्यय शब्द का वह अर्थ ग्राह्य नहीं है। यहाँ तो प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः। अर्थात् अष्टाध्यायी में जिसका विधान होता है वह विधीयमान प्रत्यय है। न प्रत्ययः अप्रत्ययः इति नञ्-तत्पुरुषसमासः। इस प्रकार अप्रत्यय शब्द का अविधीयमान इत्यर्थ है।

पाणिनिमुनि क ख ग घ ङ कवर्ग को प्रकट करने के लिए कुँ पद का प्रयोग किया। इसी प्रकार ही अन्य वर्गो को प्रकट करने के लिए चुँ टुँ तुँ पुँ व्यवहार करते हैं। वहां उँकार अनुनासिक है। अतः वह इत्-संज्ञक होता है। उँकार ही उँत्। उँत् इत् जिसका वह उँदित्। उँदित् इससे कुँ चुँ टुँ तुँ पुँ ये अर्थात् ञय्-प्रत्याहारस्थ सभी वर्ग के वर्ण को जानना चाहिए।

अण् प्रत्याहार है। माहेश्वरसूत्र में अइउण् और लण् दो सूत्र में णकारः इत्-संज्ञक है। दोनों के साथ अकार अण् प्रत्याहार का निर्माण करता है। वहां अण् प्रत्याहार कब पूर्व णकार से अथवा कब पर णकार से प्रश्न। उसके उत्तरार्थ के लिए यहाँ एक कारिका-

**परेणैवेण - ग्रहाः सर्वे पूर्वेणैवाण - ग्रहा मताः।**

**ऋतेऽणुदित्सवर्णस्येत्येतदेकं परेण तु॥**

**अर्थः**- इण् प्रत्याहार हमेशा पर णकार से ही होता है। अण् प्रत्याहार सदा पूर्व णकार से होता है। केवल अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः सूत्र में अण् प्रत्याहार पर णकार से होता है। अणुदित्-सूत्र में नियम का व्यतिक्रम है।

किस वर्ण का कौन संज्ञिन ऐसा निर्णय करना चाहिए।

एक उदाहरण की आलोचना करते हैं।

इको यणचि सन्धि सूत्र है। इस सूत्र का अर्थ होता है- इक के स्थान में यण् हो अच परे। सरलार्थ - यदि अच के पूर्व इक् है तो इक्-स्थान में यण् करना चाहिए। पूर्व स्थित और इक् अच् है। नूतनता से उन दोनों का विधान आनयन योग होता है अथवा नहीं। अतः और इक् अच् अविधीयमान है, अप्रत्यय है। यण् तो पूर्व उस स्थान में नहीं है। नूतनता से लाते हैं प्र्योग करते हैं। अतः यण् विधीयमान है। पूर्व विद्यमान अविधीयमान अप्रत्यय है। नूतनता से जिसका प्रयोग होता है वह विधीयमान प्रत्यय होता है। इस प्रकार इको यणचि सूत्र में इक् अच् अविधीयमान है और यण् विधीयमान है।

**उसका उदाहरण**-

सुधी उपास्यः। इस उदारहण में पकार से पूर्व जो उकार वह अच् है। वह पूर्व से है। अतः उकार सूत्रस्थ अच्-पद से जाना जाता है। अच् अविधीयमान अप्रत्यय है। धकार से पर जो ईकार है वह इक् है अथवा नहीं आलोचना करते हैं।

(ईकार पूर्व से विद्यमान है। अतः स अविधीयमान अप्रत्यय है।)

यहाँ इक् इति संज्ञा। संज्ञी कौन है। संज्ञी होते है - इ उ ऋ ऌ माहेश्वरसूत्र में उल्लेखित वर्ण। माहेश्वरसूत्र को वर्णसमाम्नाय कहते हैं। उसमें उल्लेखित वर्ण वार्णसमाम्नायिक कहलाते हैं। इनमें दीर्घ ईकार नहीं है। उससे दीर्घ ईकार इक्-पद से जाना नहीं जा सकता है। सूत्र तो कहता है कि इक्-स्थान में यण् हो। अतः इको यणचि सूत्र से सुधी उपास्यः उदाहरण में दीर्घ ईकार के स्थान में यण् नहीं कर सकते हैं। फिर भी होता है इक् इससे दीर्घों का भी ग्रहण हो। वैसे ग्रहण पाणिनिमुनि के सम्मति के बिना नहीं होता है। अतः अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः सूत्र की रचना मुनि द्वारा ही की गई है। इस सूत्र में अण् इससे दीर्घों का भी ग्रहण कराता है। अतः यह सूत्र ग्रहणकशास्त्र नाम से व्याकरण सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है। ग्रहण अकारादि से अपने सवर्णों का भी ग्रहण होता है। इसी प्रकार इक्-प्रत्याहार ह्रस्व दीर्घ और प्लुतो का बोधक होता है। उससे सुधी उपास्यः इत्यादि स्थल पर ईकार को यण् होता है। प्रक्रिया से सुध्युपास्यः रूप सिद्ध होता है।

अण् संज्ञा। संज्ञी है - अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल इति।

**अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः** प्रकृतसूत्र से अ इ इत्यादि की भी संज्ञा कही है। तो संज्ञी कौन है। अपने सवर्ण संज्ञी है। अकार के कौन सवर्ण है। जिनका उच्चारणस्थान और आभ्यन्तरप्रयत्न अकार से तुल्य है वे वर्ण। वे वर्ण कौन-से है। वे वर्ण होते हैं अकार के अट्ठारह भेद। वे मुखनासिकावचनो -नुनासिकः सूत्र में विस्तार सहित वर्णित है।

अकार संज्ञा। उसके संज्ञी- अकार के अट्ठारह भेद।

ध्यान दें:

ध्यान दें:

इकार संज्ञा। उसके संज्ञी- इकार के अट्ठारह भेद।

उकार संज्ञा। उसके संज्ञी- उकार के अट्ठारह भेद।

ऋकार संज्ञा। उसके संज्ञी- ऋकार के अट्ठारह भेद और ऌकार के बारह भेद। ये कहाँ से। क्योंकि ऋ ऌवर्ण का सावर्ण्य है।

ऌकार संज्ञा। उसके संज्ञी- ऌकार के बारह भेद और ऋकार के अट्ठारह भेद। ये कहाँ से। क्योंकि ऋ ऌवर्ण का सावर्ण्य है।

यह यहाँ जानना चाहिए - ह्रस्व ऌकार के छः भेद है। प्लुत ऌ३कार के छः भेद हैं। दीर्घ ऌकार संस्कृत में नहीं है। अतः ऌकार के बारह ही भेद कहे हैं।

एकार संज्ञा। उसके संज्ञी- एकार के बारह भेद।

ओकार संज्ञा। उसके संज्ञी- ओकार के बारह भेद।

ऐकार संज्ञा। उसके संज्ञी- ऐकार के बारह भेद।

औकार संज्ञा। उसके संज्ञी- औकार के बारह भेद।

एकार, ओकार, ऐकार और औकार का ह्रस्व प्रकार नही है। उससे केवल बारह ही प्रकार प्रत्येक के हैं।

ए ओ ऐ औ वस्तुत दो स्वरो के मिलाने से उत्पन्न स्वर है। इसलिए उनका ह्रस्व नहीं होता है। कैसे मिलान करने से उत्पन्न हुए। जैसे-

अ+इ=ए, अ+उ=ओ, अ+ए=ऐ, अ+ओ=औ

य व ल इन तीनों के अनुनासिक और अननुनासिक प्रकार है।

जैसे - य् यँ , व् वँ , लँ् लँ् इति। इसलिए य व ल इनके दो-दो की संज्ञा है।

कुँ संज्ञा। उसके संज्ञी - क ख ग घ ङ।

चुँ संज्ञा। उसके संज्ञी - च छ ज झ ञ।

टुँ संज्ञा। उसके संज्ञी - ट ठ ड ढ ण।

तुँ संज्ञा। उसके संज्ञी - त थ द ध न द्य

पुँ संज्ञा। उसके संज्ञी - प फ ब भ म।

## 3.3 तपरस्तत्कालस्य॥ ( 1.1.70 )

**सूत्रार्थ**- तपर (त परेवाला तथा जो त से परे) वर्ण वह अपने काल वाले सवर्णो का तथा अपना भी ग्रहण कराता है, भिन्न कालवाले सवर्ण का नहीं।

**सूत्र व्याख्या**- संज्ञा सूत्र है। सूत्र में दो पद हैं। तपरः तत्कालस्य सूत्रगतपदच्छेद है। तपरः पद की दो बार आवृति है। अर्थात् दो बार ग्रहण करते हैं। उससे तपर तपर तत्काल की स्थिति होती है। उन दोनों में एक तपरशब्द का बहुव्रीहिसमास ग्रहण करते है। तः परः यस्मात् सः तपरः इति। अपर तपरशब्द का

ध्यान दें:

पञ्चमी तत्पुरुष समास ग्रहण करते हैं। तात् पर: तपर:। तत्काल का यहाँ बहुव्रीहिसमास। तस्य काल इव कालो यस्य स तत्काल। अर्थ इस प्रकार है- उसका तपर होने से उच्चार्यमाण काल के समान काल है जिसका वह तत्काल है। उस तत्काल का। अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्यय: सूत्र से अण् पद की अनुवृति है। अण् इससे वार्णसमाम्नायिक वर्ण ही ग्रहण करते है। स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा सूत्र से स्वं रूपम् दो पद की अनुवृति है और उनका षष्ठ्यन्त विभक्ति से विपरिणाम होता है। सभी पदों की योजना से सूत्र का अर्थ होता है- त से पर अण्, त पर जिससे वह अण्, अपना उच्चारणकाल के समान उच्चारणकाल जिस सवर्ण का, उसकी सवर्ण संज्ञा होती है और अपनी सवर्ण संज्ञा होती।

**उदाहरण में सूत्रार्थसमन्वय**- अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्यय: ग्रहणक शास्त्र बल से अकार के अपने 18 सवर्ण संज्ञा अथवा बोधक होता है। यदि कही अत् पद आता है तब वहां भी अकार के अट्ठारह सवर्ण बोध प्राप्त होता है। तब प्रकृत सूत्र प्रवृत्त होता है। अकार से पर तकार हो तो तपरस्तत्कालस्य प्रकृत सूत्र से इस अकार का जितना उच्चारणकाल है अर्थात् एकमात्रिक, उतना उच्चारणकाल जिस स्वसवर्ण का है उसकी संज्ञा होती है। उतना उच्चारणकाल ह्रस्व छ अकारो का है। अत् तपर अकार है अत के छ ही ह्रस्व का बोध होता है अट्ठारह भेदों का नहीं।

अत् इससे ये जानना चाहिए -

ह्रस्व उदात्त अनुनासिक अकार,

ह्रस्व उदात्त अननुनासिक अकार,

ह्रस्व अनुदात्त अनुनासिक अकार,

ह्रस्व अनुदात्त अननुनासिक अकार,

ह्रस्व स्वरित अनुनासिक अकार,

ह्रस्व स्वरित अननुनासिक अकार।

इसी प्रकार इत् उत् एत् ओत् ऐत् औत् इन आठ तपर में भी जानना चाहिए। प्रत्येक के अपने छ भेदो की संज्ञा होती है। ऋत् ह्रस्व के छ ऋकारों का और ह्रस्व छ ऌकारों की संज्ञा होती है। ऌत् ह्रस्व छ ऋकार की और ह्रस्व छ ष्कार की संज्ञा होती है। ऋष्वर्णयो: मिथ: सावर्ण्यात। फिर भी कही पर ऌत् ऋकार की संज्ञा नहीं होती है। जैसे पुषादिद्युताद्यलृदित: इत्यादि स्थल पर।

## पाठगत प्रश्न-2

15. अण् स्वसवर्ण की संज्ञा कब होती है?
16. उँदित् क?
17. विधीयमान उँदित् सवर्ण की संज्ञा होती है अथवा नहीं?
18. अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्यय: सूत्र में अण् किस णकार के साथ है?
19. तपर: यहाँ पर दो प्रकार का समास लिखिए?
20. उत् की कितनी संज्ञा है?
21. ईत् तपरकरण चेत् तपरशब्द का विग्रह क्या है?

ध्यान दें:



22. ग्रहणक शास्त्र से किस प्रकार का अण् सवर्ण बोध कराता है।

1) विधीयमान 2) अविधीयमान 3) आगम 4) आदेश

23. अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः सूत्र में अप्रत्यय का किससे सम्बन्ध है।

1) अण् 2) उदित् 3) अण् च उदित् च 4) एषु कोऽपि न

24. ऋकार संज्ञा है तो उसके संज्ञी कितने है।

1) 12 2) 18 3) 30 4) 6

25. ऋत् संज्ञा है तो उसके संज्ञी कितने हैं।

1) 6 2) 18 3) 30 4) 12

## 3.4 स्वं रूपं शब्दस्याशब्द संज्ञा॥ ( 1.1.68 )

**सूत्रार्थ**- अर्थ विशिष्ट शब्द संज्ञी, शब्द शास्त्र में जो संज्ञा उसके बिना।

**सूत्रावतरण**- अग्नेर्ढक् एक सूत्र है। इसका अर्थ- अग्नि से पर ढक् प्रत्यय जोड़ना चाहिए। अग्नि तो पदार्थ है। ढक् प्रत्यय तो शब्द है। कैसे वह्नि को लाओ उसके पर ढक् शब्द का योग कर सकते हैं। सूत्र में अग्निशब्द उच्चारित है। अग्निपदार्थ से परे ढक् प्रत्यय नहीं जोड़ सकते हैं। अतः अग्नि पदार्थ को छोड़कर अग्नि शब्द से परे ढक् प्रत्यय का प्रयोग कर सकते हैं और भी अग्नि शब्द का पर्याय वह्नि अनल पावक इत्यादि है। उनसे भी ढक् प्रत्यय का प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार होने से केवल अग्नि शब्द से अथवा अग्निवाचक वह्नि अनल इत्यादि पर्याय शब्दों से भी ढक् प्रत्यय का प्रयोग करना चाहिए। उसके निर्णय के लिए इस सूत्र को लाये हैं।

**सूत्र व्याख्या**- संज्ञा सूत्र है। सूत्र में चार पद है। स्वम् रूपम् शब्दस्य अशब्दसंज्ञा सूत्रगतपदच्छेद है। स्वम् इसका अर्थ अर्थ, वाच्य, अभिधेय है। रूपम् इसका आनुपूर्वी अर्थ। 'अ-ग्-न्-इ' क्रमशः विद्यमान वर्ण अग्निशब्द के आनुपूर्वी होते हैं। व्याकरण में अर्थ का संस्कार नहीं होता है, शब्द का संस्कार होता है। अतः व्याकरण में अर्थ गौण है। शब्द प्रधान है। अतः यहाँ अर्थ विशिष्ट शब्द संज्ञी होता है। शब्द शास्त्रे संज्ञा शब्द संज्ञा इति सप्तमी तत्पुरुष समास है। सूत्र का अर्थ होता है- सूत्र में उपात्त शब्द संज्ञा, अर्थ विशिष्ट शब्द संज्ञी, अर्थात् आनुपूर्वी संज्ञी, शब्द शास्त्र में जो संज्ञा उसके बिना। इस प्रकार व्याकरण में शब्द से उसका अपने स्वरूप का बोध होता है, अर्थ का बोध ग्राह्य नहीं है, पर्याय का नहीं है। इसी प्रकार अग्नेर्ढक् सूत्र में अग्नि शब्द उपात्त है। अग्नि शब्द से 'अ-ग्-न्-इ' आनुपूर्वी का ही बोध होता है। उससे ही ढक् प्रत्यय जोड़ना चाहिए।

## 3.5 येन विधिस्तदन्तस्य॥ ( 1.1.72 )

**सूत्रार्थ**- जिस विशेषण से विधि की जावे, वह विशेषण अंत में है जिसके, उस विशेषणान्त समुदाय का ग्राहक होता है और अपने स्वरूप का भी।

**सूत्र व्याख्या**- संज्ञा सूत्र है तीन पद वाला। येन विधिः तदन्तस्य सूत्रगतपदच्छेद है। येन यत्-सर्वनाम् का तृतीया एकवचनान्त पद है। येन यहाँ पर करण में तृतीया। विधिः प्रथमान्त पद है। विधीयते इति विधिः, विधान क्रिया अर्थ है। तदन्तस्य षष्ठ्येकवचनान्त पद है। सः अन्ते यस्य स तदन्तः बहुव्रीहि समास। स्वं रूपं शब्दस्याशब्द संज्ञा सूत्र से स्वं रूपम् प्रथमान्त दो पद की अनुवृति है और

ध्यान दें:

षष्ठ्यन्त से विपरिणाम होती है। और करण क्रिया के प्रति। यहाँ करण विशेषण रूप से गृहित है। जिस करण से अर्थात् विशेषण से पाणिनि विधान करते हैं वह करण संज्ञा है। किसकी। अपनी और अपना विशेषण जिसके अन्त में है उसकी संज्ञा। अत सूत्रार्थ होता है- विशेषण उस अंत की संज्ञा होती है और अपने रूप की।

**उदाहरण**- अचो यत् एक सूत्र है। उससे पूर्व अधिकार रूप से धातोः एक पद पाणिनिमुनि ने लिखा है। वस्तुतः धातु से पर यत् प्रत्यय करना चाहिए। परन्तु जिस सूत्र से उस कार्य को करना चाहते हैं, उस सूत्र में साक्षात् अचः एक ही पद को उस कार्यार्थ के लिया दिया। 'यत्' तो प्रत्यय विधान है। अचः पदमाध्यम से धातु के पर यत्-प्रत्यय का विधान पाणिनि करते हैं। अत अचः माध्यम उसका करण होता है। वह ही विशेषण कहलाता है यहाँ। उस विशेषण की अपनी संज्ञा होती है और भी वह जिसके अन्त में होता है उसकी संज्ञा होती है। जैसे अच की अपनी संज्ञा होती है। अर्थात् जो धातु केवल अच्-रूप ही है उससे भी यत्-प्रत्यय होता है। यथा इ धातु है। उससे यत्-प्रत्यय योग से अयः रूप निष्पन्न होता है। द्वितीय अर्थ तो - अच् जिसके अन्त में है उस धातु की भी अच् संज्ञा होती है। जैसे - चि धातु है। उसके अन्त में अच् है। अतः अच् संज्ञा। चि अजन्त धातु संज्ञी है। अत चि धातु से यत्-प्रत्यय योग से चयः रूप बनता है।

लौकिक उदाहरण आलोचना करते हैं। यदि यानम् आनय ऐसा कहकर यानचालक को भेजते हैं तो वह कहाँ बैठकर यान को लाता है। वह यानचालक आसन पर बैठकर यान को लाता है।

उसी प्रकार अच्-शब्द से धातु से प्रत्यय जोड़ना चाहिए ऐसा कहा है। तब अच्-शब्द जिसके अन्त में है उस प्रकार धातु का बोध कराता है।

इसी प्रकार तदन्त संज्ञाकरण ही तदन्तविधि प्रसिद्ध व्याकरण में।

इसको धारण करना चाहिए -

**तदन्त विधि**

सूत्र में जितने पद हैं, उससे अधिक पद सूत्र के अर्थ में देखे जाते हैं। वहां ये छः प्रकार से पद प्राप्त होते हैं। 1) सूत्र में साक्षात् उच्चारित, उपात्त, उल्लेखित, 2) अधिकार से प्राप्त, 3) अनुवृत्ति से प्राप्त, 4) परिभाषा से उपस्थापित, 5) आक्षेप से प्राप्त, 6) अध्याहार।

सभी पदलाभ अनन्तर दो पद समान विभक्ति है अथवा नहीं देखना चाहिए। अर्थात् दो पद की विभक्ति समान, एक ही है अथवा नहीं देखना चाहिए। वह विभक्ति यदि सप्तमी है तो वहां तदादि विधि होती है। तदादि विधि आगे कहेंगे। सप्तमी बिना अन्य विभक्ति यदि है तो उन दोनों पद के मध्य में एक विशेषण होता है और अपर विशेष्य। विशेष्य विशेषण भाव है तो अभेद अन्वय सामान्य रूप से होता है। व्याकरण शास्त्र में तदन्तविधि भी होती है। तदन्तविधि जब होती है तब-वैसा विशेष्य ग्रहण करता है जिसके अन्त में विशेषण है, अर्थात् विशेषण विशेष्य का अंतिम अवयव है, उस प्रकार का विशेष्य जानना चाहिए।

उदाहरण- जैसे 'अचः धातोः यत्' यहाँ अचः विशेषण धातोः विशेष्य है। यहाँ वैसी धातु ग्राह्य है जिसके अन्त में अच् है। अर्थात् अजन्त धातु समझनी चाहिए। चि जि भू इत्यादि धातु अजन्त है। वे इस विशेषण के संज्ञी, अर्थ होते हैं।

ध्यान दें:



**तदादिविधि**

यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे कोई परिभाषा है। उसका सरलार्थ यहाँ देते हैं।

सूत्र में सभी पदलाभानन्तर यदि दो पद सप्तम्यन्त हो। अर्थात् दो पदों की विभक्ति सप्तमी हो। उन दोनों के मध्य में विशेषण पद का अर्थ केवल एक अल् अर्थात् एक वर्ण हो। अर्थात् उन दोनों के मध्य में एक पद अल-बोधक हो। तो तदादि विधि होती है, तदन्त विधि नहीं होती है। वह अल् जिसके आदि में अर्थात् आदि अवयव है उसका ग्रहण करना चाहिए तदादि विधि है।

**उदाहरण**- वान्तो यि प्रत्यये एक सूत्र है। वान्तः पद तदादिविधी में उपयोग नहीं है। यहाँ यि 'य्'-वर्ण का सप्तमी है। प्रत्यये यहाँ भी सप्तमी है। दोनों पद सप्तम्यन्त है। यि विशेषणपद का अर्थ केवल एक अल् अर्थात् एक ही 'य्' वर्ण है। वहा अब तदादिविधि होती है। अत यकारादि प्रत्यय यहाँ ग्राह्य है। यवर्ण जिस प्रत्यय का प्रथम वर्ण है उस प्रकार प्रत्यय को जानना चाहिए।

## पाठगत प्रश्न-3

26. पदस्य विसर्जनीयस्य सः स्थित्ति तदन्तविधि से क्या अर्थ प्राप्त होता है।
27. अतो दीर्घो यञि सार्वधातुके स्थिति में तदादिविधि से क्या अर्थ प्राप्त होता है।
28. तदन्तविधि कब होती है।
29. तदादिविधि कब होती है।
30. स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा सूत्र में शब्दस्य रूपम् क्या है।

    1) अर्थ 2) आनुपूर्वी 3) पर्याय शब्द 4) इनमें से कोई नहीं
31. सूत्र में तदन्त की संज्ञा होती है।

    1) विशेष्य 2) विशेषण 3) धातु 4) पद
32. दो पद सप्तम्यन्त है, किन्तु उनमें से एक अल्बोधक है तो क्या होता है।

    1) तदन्तविधि 2) अव्यवहितपर का 3) उसके स्थान में 4) तदादिविधि
33. सूत्र में दो पद प्रथमान्त है, किन्तु उनमें से एक विशेषण है तब क्या होता है।

    1) तदन्तविधि 2) विशेषण विधि 3) अनल्विधि 4) तदादिविधि

## पाठ सार

सार रूप में इस पाठ का मुख्य विषय नीचे प्रदान करते है।

यदि किसी वर्ण का मुख में उच्चारण स्थान और आभ्यन्तरप्रयत्न ये दोनों अपर वर्ण से तुल्य समान है तो उन दोनों की परस्पर सवर्ण होते हैं तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् सूत्र का अर्थ है। पांच उच्चारण स्थान है। बाह्य आभ्यन्तर यत्न दो प्रकार के है। बाह्य ग्यारह, आभ्यन्तर चार है।

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् सूत्र से सवर्ण संज्ञा की है। परन्तु कब कौन-सा वर्ण स्वसवर्ण का संज्ञा हो स्पष्ट नहीं किया है। अतः अणुँदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः सूत्र आया। जब अण् अविधीयमान है तब

ध्यान दें:

स्वसवर्ण संज्ञा का ग्राहक होता है सूत्र का आशय है। उँदित् विधीयमान भी स्वसवर्ण का ग्रहण करता है।

एक अवर्ण के अट्ठारह (18) प्रकार है। जब केवल ह्रस्व ही छः प्रकार प्रकट करना चाहिए मन से चाहते हैं तब ह्रस्व अकार से पर एक तकार लगाते हैं। जैसे अत्। यही तपरकरण कहलाता है। अत् इसका अर्थ ह्रस्व छः अवर्ण है। इसी प्रकार उत् एत् ओत् इत्यादि में भी जानना चाहिए।

शब्द शास्त्र में जो संज्ञा उसको छोड़कर अन्य जो शब्द व्याकरण में प्रयोग करते हैं, वे स्वरूप का वाचका होता है। स्वं रूपं शब्द स्याशब्द संज्ञा सूत्र का अर्थ है। उससे अग्नेर्ढक् सूत्र से कहा कार्य अग्निपदार्थ से पर नही होता है अपितु अग्निशब्द से पर होता है।

सूत्र में प्रयुक्त विभक्ती के अर्थ लौकिक व्याकरण से भिन्न होते हैं। किन्तु अत्ति अल्प शब्द प्रयोग से सूत्र की रचना की इस कारण से पाणिनि ने अनेक उपायों का आविष्कार करके व्यवहार किया। उनमें अन्यतम उपाय केवल विशेषण कार्य कहलाता है। विशेष्य एकवार अन्यत्र कहता है। अतः जब विशेष्यविशेषणसम्बन्ध होता है तब तदन्तविधि होती है। विशेषण तदन्त की संज्ञा होती है और अपने रूप की भी। तब विशेषणान्त विशेष्य बोधक है।

जब दो पद सप्तम्यन्त हो। उनके मध्य में एक पद अल्-बोधक हो तो तदादिविधि होती है। उससे वह अल् जिसका आदि वर्ण उस प्रकार का ग्रहण होता है।

## योग्यतावर्धन

इस पाठ्यक्रम में पूर्व प्रकरण के ज्ञान के बिना परवर्ति पाठों का अध्ययन अत्यन्त कठिन है। अतः पूर्व पूर्व पाठो का उचित अध्ययन अनिवार्य है। फिर भी अध्ययनकाल में अनेक विषय नहीं जाने जाते हैं। तब अध्ययन को छोड़ना नहीं चाहिए। यहाँ जो विषय क्लिष्ट होता है वह कभी आगे इससे भी स्पष्ट हो सकता है। अतः निरन्तर आगे पढ़ना चाहिए। एक-एक पाठ का आदि से अन्त तक का ज्ञान एक बार पढ़ने से सम्भव नहीं है। उसे बार-बार पढ़ना चाहिए। परन्तु कोई पङ्क्ति, कोई शब्द, कोई प्रक्रिया, कोई युक्ति यदि समझ नहीं सकते हैं तो आगे का अध्ययन का विराम नहीं करना चाहिए। ज्ञान नहीं हो रहा है तो आलस्य नहीं करना चाहिए। पढ़ना तो चाहिए।

अपनी योग्यता क्या है। उसको और बढ़ाना चाहिए तो क्या-क्या आवश्यक है यहाँ सुभाषित एक देते है-

शुश्रूषा श्रवणं चौव ग्रहणं धारणं तथा।

ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः।

**अन्वयार्थ- शुश्रूषा** सुनने की इच्छा, श्रवणं साक्षात् श्रवण। ग्रहणं सुने हुए विषय का चिन्तन, धारणं जैसे सुने हुए विषय का चिन्तन उसका धारण स्मरण, वैसे ऊहः तर्क स्वपक्ष समर्थ के लिए, अपोहः प्रतिपक्ष के आक्षेप का खण्डन, अर्थविज्ञानं तर्क वितर्क अनन्तर निष्पन्न अर्थ के सिद्धान्त का व्यहारयोग्य ज्ञान, तत्त्वज्ञानम् और मर्मज्ञान ये आठ धीगुण बुद्धि के गुण है।

इसलिए जो कोई भी विद्वान बनने की इच्छा करता है तो ये आठ धीगुण उसके हो। शास्त्र का गुरुमुख से श्रवण की प्रबल इच्छा आवश्यक है। उससे अन्य आकर्षण को छोड़कर श्रवण में प्रवृत्ति होता है। श्रवण में प्रवृत्ते होने के अनन्तर विक्षेप कारण को दूर करके एकाग्रचित से श्रवण करना चाहिए। जब जबतक सुनते है तब सुने हुए का ग्रहण अर्थात् विषय का अवबोध, सुस्पष्ट ज्ञान हो। केवल श्रवणभक्ति

# पाठ-3

## संज्ञा प्रकरण-2

ध्यान दें:

करते है परन्तु कुछ भी समझ में नही आ रहा है ऐसी स्थिति न हो।

व्याकरण शास्त्र में प्रति पद नवीन विषय प्रकट होते हैं। अनेक प्रकार के रहते हैं। अनेक सूत्र आते हैं। अत: सम्पूर्ण अवबोध, धारण, समय-समय पर स्मरण और परीक्षा में अन्यत्र व्यवहार में प्रतिपादन ये दूर तक जाता है। तब इस शास्त्र में प्रबुद्ध है ऐसा कहे सकते हैं।

- पढ़े हुए सूत्र अष्टाध्यायी में जहां है वह स्थल अष्टाध्यायी में खोलकर किस सूत्र से किस पद की अनुवृति, किसका अधिकार आता है देखना चाहिए।
- किसी भी दो वर्ण को लेकर उनका सावर्ण्य होता है अथवा नहीं युक्ति सहित विचार करना चाहिए।
- शान्तचित्त से निभृत स्थान पर वर्णों का उच्चारण करना चाहिए। वहां कण्ठादि देश में कौन-कौन से वर्ण उत्पन्न होते हैं, उनका आभ्यन्तरप्रयत्न क्या-क्या है, उनका उच्चारण में क्या-क्या प्रभाव है इन विषयों का सूक्ष्मता से अवलोकन करना चाहिए।
- वर्णों की तालिका का निर्माण करके सभी वर्णों का उच्चारण स्थान, आभ्यन्तरप्रयत्न और बाह्यप्रयत्न लिखना चाहिए।
- आगे के पाठों में प्रति विधि सूत्र क्या विधीयमान क्या अविधीयमान निर्णय करने का प्रयास करना चाहिए।
- अनेक सूत्रों में तपरकरण प्राप्त है। तब वहां उसका क्या समास है निर्णय करना चाहिए। और वह तपर तत्काल का किसका ग्रहण करता है यह जानना चाहिए।
- आगे सूत्र व्याख्या अवसर पर अनेक जगह तदन्तविधि और तदादिविधि होती है तब इस पाठ में जैसे व्याख्या की है उससे मिलान करना चाहिए। नये स्थल पर स्वय तदादिविधि और तदन्तविधि करनी चाहिए।

## पाठान्त प्रश्न

नीचे अभ्यास के लिए प्रश्न देते हैं। छात्र पाठ को सही पढ़कर और समझकर इन प्रश्नों का उत्तर स्वटिप्पणी पुस्तिका में लिखें। प्राय: कुछ दीर्घ उत्तर हो।

1. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् सूत्र की व्याख्या करो।
2. वर्ण स्थान लिखो।
3. वर्णोच्चारणप्रक्रिया को प्रकट करो।
4. बाह्यप्रयत्न का परिचय किसका कौन-सा बाह्यप्रयत्न विस्तार से बताओ।
5. सावर्ण्य निर्णय के लिए नासिका का उपयोग होता है अथवा नहीं लिखिए।
6. ऋकारलृकारयो: सवर्णविधि: वार्तिक की व्याख्या कीजिए।
7. तपरस्तत्कालस्य सूत्र की व्याख्या कीजिए।
8. येन विधिस्तदन्तस्य सूत्र की व्याख्या कीजिए।

ध्यान दें:

## पाठगत प्रश्नोत्तर

नीचे दिए हुए पाठगत प्रश्नों के उत्तर लिखे हुए हैं। वे सूचकोत्तर हैं। अर्थात् अत्यन्त लघु उत्तर है। परीक्षा में उत्तर लेखन काल में स्पष्ट वाक्य को लिखते हैं तो उचित है।

### उत्तर भाग-1

1. अनुनासिकसंज्ञाविधायक सूत्र - मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः। सूत्रार्थ - मुखसहित नासिका से उच्चार्यमाण वर्ण अनुनासिकसंज्ञक होते हैं।
2. अकार के 18 भेद हैं।
3. सवर्णसंज्ञाविधायक सूत्र - तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्। सूत्रार्थ- जिस वर्ण का जिस वर्ण से तुल्य उच्चारणस्थान और तुल्य आभ्यन्तरप्रयत्न होता है तो मिथ सवर्ण। एक वर्ण अपर वर्ण का सवर्णसंज्ञक होता है।
4. ओष्ठ।
5. तालु।
6. उपध्मानीय - पवर्ण से पूर्व अथवा फवर्ण से पूर्व यदि विसर्ग है तो उसके स्थान में अर्धविसर्ग के समान लिखते हैं और उच्चारण करते हैं। तब उसका नाम उपध्मानीय होता है। उदा. - रामः पश्यति - रामघ्पश्यति। वृक्षः फलति - वृक्षल्फलति।
7. स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवृत और संवृत भेद से आभ्यन्तरप्रयत्न चार प्रकार के है।
8. हकार का बाह्ययत्नः - संवार नाद घोष महाप्राण है।
9. 3)
10. 3)
11. 4)
12. 3)
13. 4)
14. 2)

### उत्तर भाग-2

15. अण् अविधीयमान है तो स्वसवर्ण की संज्ञा होती है।
16. कुँ चुँ टुँ तुँ पुँ ये उदित है। जिसका उँकार इत् होता है वह उदित्।
17. ना।
18. पर से।
19. तात् परः अण् पञ्चमीतत्पुरुष। तः परः यस्मात् सः बहुव्रीहि।
20. ह्रस्व अपने सवर्ण के छ का।

ध्यान दें:



21. तः परः यस्मात् बहुव्रीहि समास।

22. 2)

23. 1)

24. 3)

25. 4)

उत्तर भाग-3

26. विसर्जनीय अन्त के पद का।

27. यञादि सार्वधातुक के परे।

28. सकल पदलाभानन्तर दो पद समानविभक्तिक है तो, वह विभक्ति सप्तमी भिन्न है तो उन दोनों पद के मध्य में विशेष्यविशेषणभाव है तो तदन्तविधि होती है।

29. सूत्र में सकल पदलाभानन्तर यदि दो पद सप्तम्यन्त हो। उनके मध्य में एक पद अल्-बोधक हो। तो तदादिविधि होती है।

30. 2)

31. 2)

32. 4)

33. 1)

4

# संज्ञा प्रकरण-3

ध्यान दें:

पूर्व के पाठ में सभी वर्णों के उच्चारण स्थान आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न के विषय में बताया है। इनके उपयोग से एक वर्ण का अपर वर्ण सवर्ण कैसे होता है यह भी जाना है। वहां ही एक वर्ण स्वसवर्ण का ग्रहण कब करता है यह भी पढ़ा है। तपरकरण का अर्थ और तात्पर्य के विषय में जाना है। किन्तु व्याकरण में कैसे शब्द को लेकर कार्य होता है यह भी देखा है। अनेक सूत्रों में तदन्तविधि और तदादिविधि होती है। अत: उस विषय का पूर्व पाठ में वर्णन किया है।

अब इस पाठ में वृद्धि गुण धातु अवसान संहिता संयोग लघु गुरु अपृक्त पद टि उपधा निपात उपसर्ग गति अव्यय नदी घि ये अत्यन्त मुख्य, पाणिनीय व्याकरण में समय-समय पर प्रयुक्त होने वाली कुछ संज्ञा का वर्णन करेंगे। यह पाठ मुख्य है। इसका ज्ञान सम्पूर्ण रूप से आगे के पाठ में पढ़ना चाहिए। इसका ज्ञान है तो आगे जहाँ वहां प्रयुक्त ये संज्ञा उपयोग के लिए हो। अत: मन सहित इसका अध्ययन अत्यन्त व्युत्पत्ति बढ़ाने वाला हो।

व्याकरणशास्त्र सोपान क्रम से पढ़ना चाहिए। अन्य जगह कथा पुस्तकों में जो कोई भी कथा पढ़ सकता है। व्याकरण में वैसा नहीं है। पूर्व अध्ययन के ज्ञान से समास आदि के विषय में आगे पढ़ना चाहिए।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- पाणिनिव्याकरण में प्रयुक्त नितान्त मुख्य गुणादि संज्ञा को जान पाने में;
- अन्य जगह व्याकरण शास्त्र में प्रयुक्त इन संज्ञा के ज्ञान से वहां अध्ययन कर पाने में;
- सूत्र का अर्थ कर पाने में;
- अनुवृत्ति कर पाने में;
- वेद में और काव्य शास्त्र छन्द में छन्द निर्णय के लिए लघु गुरु वर्णों को चयन कर पाने में;

ध्यान दें:



## 4.1 वृद्धिरादैच्॥ ( 1.1.1 )

**सूत्रार्थ**- आ ऐ औ इनकी वृद्धि संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या**- संज्ञा सूत्र है। अष्टाध्यायी का प्रथम सूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। वृद्धिः आत् ऐच् सूत्रगतपदच्छेद है। संज्ञा प्रकरण में यह सूत्र है। अतः संज्ञा पद को प्राप्त होता है। वृद्धि संज्ञा है। आत् एच् च संज्ञी है। आत् इसका अर्थ दीर्घ आकार है। ऐच् यह प्रत्याहार है। ऐ औ यह उसका अर्थ है। सूत्र का अर्थ है - आ ऐ औ इनकी वृद्धि संज्ञा होती है। यहाँ संज्ञा भी शब्द है। संज्ञी भी शब्द ही है। अतः वृद्धि शब्द संज्ञा है।

## 4.2 अदेङ् गुणः॥ ( 1.1.2 )

**सूत्रार्थ** - अ ए ओ इनकी गुण संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। अष्टाध्यायी में यह द्वितीय सूत्र है। इस सूत्र में तीन पद है। अत् एङ् गुणः सूत्रगतपदच्छेद है। संज्ञा प्रकरण में यह सूत्र है। अतः संज्ञा पद को प्राप्त होता है। गुणः संज्ञा है। अत् और एङ् है। अत् इसका अर्थ ह्रस्व अवर्ण है। एङ् प्रत्याहार है। ए ओ उसका अर्थ है। सूत्र का अर्थ - अ ए ओ इनकी गुण संज्ञा होती है। यहाँ संज्ञा भी शब्द है और संज्ञी भी शब्द है। अतः गुण शब्द संज्ञा है। संज्ञी

## 4.3 भूवादयो धातवः॥ ( 1.3.1 )

**सूत्रार्थ** - क्रियावाचक धातु पाठ में पढ़ी हुई भू इत्यादि शब्द की धातु संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। दो पद वाला सूत्र है। भूवादयः धातवः सूत्रगतपदच्छेद है। भूः च वाः च भूवौ। आदिः च आदिः च आदी। भूवौ आदी येषां ते भूवादयः इति बहुव्रीहिसमासः। यहाँ धातु हि संज्ञा है। भू वा इत्यादि पाणिनीय धातु पाठ में पढ़े शब्द हि संज्ञी है। धातू का सामान्य अर्थ होता है क्रिया। जैसे गमन क्षेपण चिन्तन ये क्रिया है। पाणिनि द्वारा धातु पाठ नाम के अपने ग्रन्थ में क्रिया वाचक ये शब्द संगृहीत होते हैं। उनका ही प्रकृत सूत्र से धातु संज्ञा का विधान करते हैं। सूत्र का अर्थ - क्रिया वाचक धातु पाठ में पढ़ी हुई भू इत्यादि शब्दों की धातु संज्ञा होती है।

## 4.4 सनाद्यन्ता धातवः॥ ( 3.1.32 )

**सूत्रार्थ** - सनादि णिङन्त प्रत्यय अन्त में है जिनके वे धातु संज्ञक होते हैं।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। सूत्र में दो पद हैं। सनाद्यन्ताः धातवः सूत्रगतपदच्छेद है। सन् आदिः येषां ते सनादयः इति बहुव्रीहिसमास। सनादयः अन्ते येषां ते सनाद्यन्ताः इति बहुव्रीहिसमासः।

**सन्-क्यच्-काम्यच्-क्यङ्-क्यषोऽथाचारक्विब्-णिज्-यङौ तथा।**

**यगायेयङ्-णिङ् चेति द्वादशाऽमी सनादयः॥**

सन् क्यच् काम्यच् क्यङ् क्यष् आचारक्विप् णिच् यङ् यक् आय ईयङ् णिङ् इनका आदि सन् है। अतः ये सनादि है। ये जिनके अन्त में होते हैं वे सनाद्यन्त होते हैं। जैसे कमेर्णिङ् सूत्र से कम्-धातु से णिङ् प्रत्यय का विधान करते हैं। तब कम्+णिङ् होने से और प्रक्रिया से कामि शब्द बनता है। इसके

ध्यान दें:

अन्त में णिङ् है। अतः यह सनाद्यन्त शब्द है। उसका इस सूत्र से धातु संज्ञा होती है। सनादि णिङन्त प्रत्यय अन्त में जिनके वे धातुसंज्ञक होते है इस सूत्र का यह अर्थ है।

## पाठगत प्रश्न-1

1. वृद्धि संज्ञक कौन है?
2. गुण संज्ञक कौन है?
3. धातु पाठ में पढ़ी हुई धातुओं की धातु संज्ञा किस सूत्र से होती है?
4. सनादि प्रत्यय योग से निष्पन्न धातु संज्ञा किस सूत्र से होती है?
5. अदेङ् गुणः सूत्र का क्या प्रकार है?

   1) संज्ञा 2) परिभाषा 3) विधिः 4) अधिकारः
6. यह वर्ण गुण है?

   1) आ 2) ए 3) ऐ 4) इ
7. कौन-सा वर्ण वृद्धि नहीं है?

   1) ए 2) ऐ 3) औ 4) आ
8. धातु का वाच्यार्थ क्या है?

   1) क्रिया 2) गुणः 3) वृद्धिः 4) सनादि

## 4.5 विरामोऽवसानम्॥ ( 1.4.110 )

**सूत्रार्थ** - वर्णों के उच्चारण अभाव अवसान संज्ञक होता है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। सूत्र में दो पद है। विरामः अवसानम् सूत्रगतपदच्छेद है। विराम संज्ञी पद है। अवसान संज्ञा। विरम्यते अस्मिन्निति विरामः। विरमणं विरामः। अर्थात् विरमणक्रिया। और प्रकृत में विराम इसका उच्चारण अभाव अर्थ है। व्याकरण प्रकरण का प्रस्ताव और उच्चारण वर्णों से ही है। अतः वर्णों का उच्चारण अभाव अवसान संज्ञक होते हैं सूत्रार्थ। रामशब्द का रूपसाधन प्रक्रिया में रामर् स्थिति होती है। वहा रामर् अन्तिम रेफ से पर किसी भी वर्ण का उच्चारण नहीं है, उच्चारण अभाव है। यह अभाव ही विराम है। अतः यह अभाव अवसान संज्ञक होते हैं।

**व्युत्पत्ति** - विरामः संज्ञी पद है। इस वाक्य का क्या अर्थ है। संज्ञी परे है जिसके वह संज्ञि पर है। अर्थात् विराम शब्द संज्ञी वाचक है। विराम शब्द का अर्थ संज्ञी, जिसकी संज्ञा है वह।

इसी प्रकार अन्य जगह भी संज्ञा परक पद, विधेयपरक पद, उद्देश्यपरक पद का विशाल प्रयोग शास्त्र में होता है। तब वहा वहा उनका अर्थ जानना चाहिए।)

## 4.6 परः सन्निकर्षः संहिता॥ ( 1.4.109 )

**सूत्रार्थ** - दो वर्ण का अर्धमात्राधिक कालिक व्यवधान अभावात्मक समीपता की संहिता संज्ञा होती है।

ध्यान दें:



**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। पर: सन्निकर्ष: संहिता तीन पद है इस सूत्र में। सभी प्रथमान्त है। वहा पर: सन्निकर्ष: दोनो पद संज्ञी संहिता संज्ञा पद है। पर: इसका अतिशय अर्थ है। सन्निकर्ष: इसका सन्निधि अथवा सामीप्य अर्थ है। संहिता अर्थ का संज्ञा वर्ण अथवा वर्ण समुदाय का नहीं। दो वर्णों के मध्य में विद्यमान अत्यन्त सामीप्य रूप सम्बन्ध की यह संज्ञा। सूत्रार्थ- दो वर्णों की परस्पर अतिशय सन्निकर्ष सन्निधि सामीप्य की संहिता संज्ञा होती है। दो वर्णों के मध्य में व्यवधान कालकृत होता है। अर्थात् एक वर्ण का उच्चारण अनन्तर कुछ समय बाद अपर वर्ण का उच्चारण करते है। वर्णों के मध्य में न्यून रूप से अर्धमात्रिक उच्चारणकाल का व्यवधान सम्भव होता है, अथवा उससे भी कम समय। अत: जिन दो वर्णों के मध्य में अर्ध मात्रा कालिक व्यवधान यदि होता है तो उन वर्णों के मध्य में पर सन्निकर्ष अर्थात् अतिशय सामीप्य होता है। अत: वह सन्निकर्ष संहिता कहलाता है और संहिता दो स्वरों की, दो व्यञ्जनों की, स्वर और व्यञ्जन की भी सम्भव है।

**उदाहरण** - सुद्ध्युपास्य: यहाँ उदाहरण में सुधी उपास्य: समास है। समास होता है तो दो समस्त पदों के मध्य में परम् अर्थात् अतिशय सान्निध्य अनिवार्य है। अत: ईकार का उकार से अर्ध मात्रा कालिक व्यवधान आता है, उससे अधिक नहीं। यह सामीप्य ही संहिता कहलाता है। तब संहिता का विषय होता है। किन्तु इको यणचि सूत्र से संहिता कार्य होता है।

## 4.7 हलोऽनन्तरा: संयोग:॥ ( 1.1.7 )

**सूत्रार्थ** - अच् से अव्यवहित हलो की संयोग संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। तीन पद है। हल: अनन्तरा: संयोग: सूत्रगतपदच्छेद है। हल: इति 'हल्' शब्द का प्रथमा बहुवचन है। 'अन्तर' शब्द का व्यवधान अर्थ है। अविद्यमानम् अन्तरं व्यवधानं येषाम् हलाम् ते अनन्तरा: इति नञ्-बहुव्रीहिसमास:। दो हलों के मध्य में व्यवधान किसका सम्भव हो सकता है। अन्य वर्ण का। वह कौन है। अच् अर्थात् स्वर:। दो व्यञ्जनों के मध्य में यदि स्वर हो तो स्वरात्मक व्यवधान है ऐसा जानना चाहिए। अज्भि: अर्थात् स्वरों से यदि व्यवधान हो तो हल अच् से व्यवहित है, यदि नहीं हो तो अव्यवहित है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है। अच् से अव्यवहित हलो की संयोग संज्ञा होती है। वस्तुत: दो व्यञ्जनों के मध्य में स्वर नहीं है तो उन दोनों व्यञ्जनों की संयोग संज्ञा होती है। यह संज्ञा एक व्यञ्जन की नहीं होती है। दो व्यञ्जनों की संयोग संज्ञा होती है। एक स्वर का अथवा एकाधिक स्वरों का अथवा स्वर व्यञ्जन की संयोग संज्ञा नहीं होती है।

**उदाहरण** - जैसे कृष्ण: शब्द है। इस शब्द में ष् ण् दोनों वर्णों के मध्य में कोई भी स्वर नहीं है। अत: ष्+ण् दोनों की अर्थात् 'ष्ण' समुदाय की संयोग संज्ञा होती है। लक्ष्मण: यहाँ पर क्+ष्+म् तीन व्यञ्जन व्यवधान रहित है। परन्तु क्ष्म् तीन वर्णों के समुदाय की संयोग संज्ञा नहीं होती है। वहा क्ष् इसकी संयोगसंज्ञा होती है। ष्म् इसकी भी संयोग संज्ञा होती है।

भिन्न प्रकार से उसको ही प्रकट करते है। दो व्यञ्जनों का स्वर रहित जोड़े की ही संयोग संज्ञा होती है। जैसे कृष्ण शब्द में ष्+ण् दो व्यञ्जन है। उनका जोड़ा है। परन्तु उस युग्म में स्वर नहीं है। स्वर तो पूर्व अथवा परे है, मध्य में नहीं है। अत: ष्ण् की संयोग: संज्ञा होती है।

## 4.8 ह्रस्वं लघु॥ ( 1.4.10 )

**सूत्रार्थ** - ह्रस्व स्वर की लघु संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। दो पद है। ह्रस्व स्वर की लघु संज्ञा होती है। ह्रस्व संज्ञा लघु संज्ञी

ध्यान दें:

पद है। उदाहरण आदि को दीर्घं च सूत्र में नीचे देंगे।

## 4.9 संयोगे गुरु॥ ( 1.4.11 )

**सूत्रार्थ** - संयोग से पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर गुरु संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - दो पद वाला संज्ञा सूत्र है। ह्रस्वं लघु सूत्र से ह्रस्वम् प्रथमान्त पद की अनुवृति है। यदि संयोग से पूर्व ह्रस्व स्वर हो तो उसकी गुरु संज्ञा होती है। उदाहरण आदि को दीर्घं च सूत्र में देंगे।

## 4.10 दीर्घं च॥ ( 1.4.12 )

**सूत्रार्थ** - दीर्घ स्वर की गुरु संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - दो पद वाला संज्ञा सूत्र है। संयोगे गुरु सूत्र से गुरु संज्ञा पद की अनुवृति है। दीर्घ स्वर की गुरु संज्ञा होती है सूत्रार्थ है।

ह्रस्वं लघु। संयोगे गुरु। दीर्घं च। तीनों सूत्रों का सार इस प्रकार है। दीर्घ स्वर की गुरु संज्ञा होती है। यदि ह्रस्व स्वर से परे संयोग है तो उस ह्रस्व की भी गुरु संज्ञा होती है। यदि ह्रस्व स्वर से परे संयोग नहीं है तो ह्रस्व की लघु संज्ञा होती है।

लघु को प्रकट करने के लिए U, गुरु को प्रकट करने के लिए- इस चिह्न का प्रयोग करते है।

**उदाहरण** - भद्रकाल्यै नमः। मन्त्र में भ् अ द् र् अ क् आ ल् य् ऐ न् अ म् अ : क्रम से वर्ण है। वहां आ ऐ दीर्घ है। उनकी गुरु संज्ञा होती है। द् + र् संयोग है, उससे पूर्व ह्रस्व अकार है। इस अकार की संयोगे गुरु सूत्र से गुरु संज्ञा होती है। ककार से पूर्व जो अकार उसकी ह्रस्वं लघु सूत्र से लघु संज्ञा होती है। क्योंकि उससे परे संयोग नहीं है। नकार से परवर्ती जो ह्रस्व अकार उसकी भी ह्रस्वं लघु सूत्रे से लघु संज्ञा होती है, क्योंकि उससे परे संयोग नहीं है। भद्रकाल्यै नमः उदाहरण में लघु गुरु चिह्न को प्रदर्शित करते है।

भ् अ द् र् अ क् आ ल् य् ऐ न् अ म् अ :

भ् अ द् र् अ क् आ ल् य् ऐ न् अ म् अ :

- U - - U -

नीचे सारणी में चिह्न द्वारा लघु गुरुवर्ण प्रदर्शित है। वहां हृदयकमलमध्ये राजितं निर्विकल्पम् काव्यपङ्क्ति है।

| ह्र द य | क म ल | म ध्ये रा | जि तं नि र् | वि क ल्प म् |
|---|---|---|---|---|
| U U U | U U U | - - - | U - - | U - - |

## पाठगत प्रश्न-2

9. अवसान संज्ञा किसकी होती है?

10. संहिता क्या है?

11. दो स्वरों की संहिता होती है अथवा नहीं?

ध्यान दें:



12. संयोग में कितने वर्ण होते हैं?

13. दो स्वरों का संयोग होता है अथवा नहीं?

14. नमो नारायणाय मन्त्र में लघु वर्ण क्या है और गुरु वर्ण कौन-सा है?

15. संयोगे परे होने पर ह्रस्व की क्या संज्ञा होती है?

16. विरामोऽवसानम् सूत्र से क्या संज्ञा होती है?

1) विरामः 2) अवसानम् 3) उच्चारणाभावः 4) संहिता

17. संहिता किनकी।

1) स्वरयोः 2) व्यञ्जनयोः 3) स्वरव्यञ्जयोः 4) त्रयाणामपि

18. संयोगः किनका।

1) स्वरयोः 2) व्यञ्जनयोः 3) स्वरव्यञ्जयोः 4) त्रयाणामपि

19. संयोग में क्या है?

1) अच्-द्वयम् 2) हल्-द्वयम् 3) एकः अच् एकः हल् 4) हल्-त्रयम्

20. वन्द्य शब्द में संयोग क्या है।

1) न्+द् 2) द्+य् 3) न्+द्+य् 4) न्+द् , द्+य्

21. गोविन्दम् वन्दे उदाहरण में कितने गुरुस्वर और कितने लघु स्वर है।

1) गुरु-4, लघु-1 2) गुरु-3, लघु-2 3) गुरु-5, लघु 0 4) गुरु-2, लघु-3

22. क) संयोग है तो संहिता ही है।

ख) संहिता है तो संयोग ही है।

इन दोनों कथनों के विषय में युक्त युग्म चुनो।

1) (क) सत्यम् (ख) असत्यम् 2) (क) सत्यम् (ख) सत्यम्

3) (क) असत्यम् (ख) सत्यम् 4) (क) असत्यम् (ख) असत्यम्

## 4.11 अपृक्त एकाल् प्रत्ययः॥ ( 1.2.41 )

**सूत्रार्थ** - एकाल् प्रत्यय की अपृक्त संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। इसमें तीन पद है। अपृक्तः एकाल् प्रत्ययः सूत्रगतपदच्छेद है। अपृक्तः संज्ञापद है। एकाल् प्रत्ययः संज्ञी है। इस सूत्र में एक शब्द का असहाय एकाकी अर्थ है। एकः अल् एकाल् कर्मधारयसमास। एकाल् प्रत्ययः अपृक्त संज्ञा होती है सूत्रार्थ। अर्थात् जिस प्रत्यय का एक ही वर्ण है वह प्रत्यय अपृक्तसंज्ञक होता है।

**उदाहरण**- जैसे धातु से शप् प्रत्यय का विधान है। शप् यहाँ शकार पकार इत्संज्ञक है। उनका लोप होता है। केवल अ ही अवशेष रहता है। यह 'अ' प्रत्यय अपृक्तसंज्ञक होता है।

ध्यान दें:

## 4.12 सुप्तिङन्तं पदम्॥ ( 1.4.14 )

**सूत्रार्थ** - सुबन्त और तिङन्त शब्द स्वरूप की पद संज्ञा हो।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। सूत्र में दो पद है। सुप्तिङन्तम् पदम् सूत्रगतपदच्छेद है। सुप् च तिङ् च सुप्तिङौ इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास। सुप् तिङ अन्त में जिसके शब्द स्वरूप की वह सुप्तिङन्त है। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते नियम है। अर्थात् द्वन्द्व समास के अन्त में विद्यमान द्वन्द्वसमास का अनङ्गभूत पद द्वन्द्वसमास में विद्यमान पदो से प्रत्येक से सम्बन्धित है। अन्त में पदं द्वन्द्वसमास का अवयव नहीं है, किन्तु द्वन्द्वसमास के अन्त में है। अतः उसका सुप् तिङ् दोनों पदों से अभिसम्बन्धित है अर्थात् अन्वय है। अतः सूत्रार्थ- सुबन्त और तिङन्त शब्द स्वरूप को पद संज्ञा हो। सुप् इसका अर्थ केवल सुप् सप्तमी बहुवचन का प्रत्यय मात्र नहीं है। यहाँ सुप् कहने पर सु औ जस् ... सुप् इनमे सुप्रत्यय का सुप्-प्रत्यय स्थान से पकार के साथ प्रत्याहार है। उससे सुबादि इक्कीस प्रत्ययों का बोध होता है। तिङ् कहने से तिप् तस् झि ... इट् वहि महिङ् इनमे तिप का ति से महिङ् के ङकार से प्रत्याहार है। उससे तिबादि अट्ठारह प्रत्ययों का बोध होता है।

जिस शब्द स्वरूप को उद्देश्य करके सुप् का विधान करते हैं वह शब्द स्वरूप आदि जिसका उस समुदाय की किन्तु वह सुप् प्रत्यय अन्त में जिस समुदाय का, उसकी पद संज्ञा होती है। तदादितदन्तस्य पद संज्ञा प्रचार है। अर्थात् उद्दिष्ट शब्द स्वरूपादि प्रत्ययान्त जो समुदाय उसकी पदसंज्ञा होती है। केवल प्रकृत्ति में नहीं केवल प्रत्यय की भी पद संज्ञा नहीं होती है।

**उदाहरण** - सुबन्त - रामः समुदाय पदसंज्ञक है। यहाँ राम मूलशब्द, उससे परे सु प्रत्यय है। रामः समुदाय के अन्त में सुप्रत्यय है। अतः समुदाय सुबन्त है। अतः समुदाय की पद संज्ञा होती है।

**तिङन्त** - पठति यहाँ पठ् अति स्थिति है। वहा वस्तुत धातुः+शप्+तिप् प्रकृति प्रत्ययादि को पठ् धातु को उद्देश्य करके तिप् प्रत्यय किया है। वह धातु आदि जिस (पठ्+अ+ति) समुदाय की और तिप् अन्त में जिस समुदाय के उस समुदाय की (पठ्+अ+ति) पद संज्ञा होती है।

## 4.13 अचोऽन्त्यादि टि॥ ( 1.1.64 )

**सूत्रार्थ** - अचो के मध्य में जो अंतिम, वह आदि जिसके उसकी टि संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। सूत्र में तीन पद है। अचः अन्त्यादि टि सूत्रगतपदच्छेद है। अचः षष्ठ्यन्त पद है। यहाँ निर्धारण में षष्ठी है। अतः अर्थ होता है- अचो के मध्य में। अन्त में होने वाला अंतिम। अंतिम आदि है जिसके वह अन्त्यादि। अचो के मध्य में जो अंतिम, वह आदि जिसके उसकी टि संज्ञा होती है। अर्थात् किसी भी शब्द में जितने अच है, उनमें जो अन्तिम अच् वह ग्राह्य है। यह अन्तिम अच् शब्द का भी अन्त में हो ऐसा आग्रह नहीं है। इस अन्तिम अच शब्द के अन्तपर्यन्त जो अच् और उस अच् तक होता है उस अच्-सहित टि संज्ञा होती है।

**उदाहरण** - रामाद् यहाँ र् आ म् आ द् क्रमशः वर्ण है। इस शब्द में दो अच है। उन दो के मध्य में अंतिम अच् होता है मकार से परवर्ती आकार है। उस आकार को लेकर उससे पर अन्तपर्यन्त जो है उस अच् तक उन सभी की टि संज्ञा होती है। जैसे यहाँ 'आद्' समुदाय की टि संज्ञा होती है। नाम शब्द में न् आ म् अ क्रमशः वर्ण है। वहां आ अ दो अच है। उन दोनों के मध्य में मकार से परवर्ती अकार ही अंतिम अच् है। उस अकार को लेकर शब्द के अन्तपर्यन्त जो है उस सभी की टि संज्ञा होती है। परन्तु यहाँ अकार शब्द का भी अंतिम है, उससे पर कोई वर्ण नहीं है। उससे केवल श्अश्कार की टि संज्ञा होती है।

ध्यान दें:



## 4.14 अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा॥ ( 1.1.65 )

**सूत्रार्थ** - अंतिम अल के अव्यहितपूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। सूत्र में चार पद है। अलः अन्त्यात् पूर्वः उपधा सूत्रगतपदच्छेद है। अलः पञ्चम्यन्त पद है। अन्त में होने से अन्त्य है। अन्त्यात् पञ्चम्येकवचनान्त पद है। पूर्वः प्रथमान्त पद है। उपधा प्रथमान्त संज्ञापद है। अल् वर्ण पर्याय है। अर्थात् अल् कहने से सभी वर्णों को जानना चाहिए। अलः अन्त्याद् दोनों पदों में सामानाधिकरण है। अर्थात् दोनों पदों की विभक्ति समान है। अत अन्त्याद् अलः का विशेषण है। सूत्रार्थ होता है - अंतिम अल के पूर्व अव्यहित अल् उपधासंज्ञा होती है। उपान्त्य वर्ण उपधासंज्ञक होता है यह भाव है। अंतिम भी अल् ही हो अल्-समुदाय नहीं हो। उससे पूर्ववर्ती अल् भी अर्थात् एक ही वर्ण, वर्णसमुदाय नहीं हो। उसकी उपधासंज्ञा होती है। वर्णसमुदाय की उपधासंज्ञा नहीं होती है।

उदाहरण - रामाद् यहाँ र् आ म् आ द् क्रमशः वर्ण है। वहां अंतिम अल् होता है द्-वर्ण। उससे पूर्व अल् है आ-कार। उसका प्रकृत सूत्र से उपधा संज्ञा होती है।

नाम शब्द में न् आ म् अ क्रमशः वर्ण है। वहां मकार से परवर्ती अकार ही अंतिम अल् है। उससे पूर्व अल् है म् वर्ण। इसकी उपधा संज्ञा प्रकृत सूत्र से होती है।

### पाठगत प्रश्न-3

23. एकाल्-प्रत्यय की क्या संज्ञा होती है?
24. पद क्या है?
25. द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते वचन का क्या अर्थ है?
26. पद कितने प्रकार के होते हैं। वे क्या है?
27. रामाणाम् पद में टि क्या है?
28. रामस्य पद में उपधा क्या है?
29. एकाल्-प्रत्यय की क्या संज्ञा है?

    1) अपृक्तः 2) उपधा 3) टि 4) पदम्
30. सुबन्त की क्या संज्ञा है?

    1) अपृक्तः 2) उपधा 3) टि 4) पदम्
31. भद्रकाल्यै शब्द में यकार की संज्ञा क्या है?

    1) अपृक्तः 2) उपधा 3) टि 4) पदम्
32. केन्द्रम् यहाँ टि क्या है और उपधा क्या है?

    1) टि-अम्, उपधा-म् 2) टि-म् , उपधा-अ

    3) टि-अम् , उपधा-अ 4) टि-अम् , उपधा-

ध्यान दें:

## 4.15 प्राग्रीश्वरान्निपाता:॥ ( 1.4.56 )

**सूत्रार्थ** - प्राग्रीश्वरान्निपाता: सूत्र से अधिरीश्वरे सूत्र से पहले मध्य में आने वालो की निपात संज्ञा होती है।

सूत्र व्याख्या - अधिकार सूत्र है। यह संज्ञाधिकार है। सूत्र में तीन पद है। प्राक् रीश्वरात् निपाता: सूत्रगतपदच्छेद है। अधिरीश्वरे (1.4.97) सूत्र का एकदेश होता है रीश्वर शब्द। प्राग्रीश्वरान्निपाता: सूत्र से अधिरीश्वरे सूत्र से प्राक् मध्य में निपातसंज्ञा होती है। अधिरीश्वरे सूत्र से प्राक् निपातपद की अनुवृति है।

## 4.16 चादयोऽसत्त्वे॥ ( 1.4.57 )

**सूत्रार्थ** - चादिगण में पढ़े हुए अद्रव्यवाचक शब्दों की निपात संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - यह संज्ञा सूत्र है। सूत्र में दो पद है। चादय: असत्त्वे सूत्रगतपदच्छेद है। च: आदि है जिसका वे चादय। पाणिनीय गणपाठ में चादिगण विद्यमान है। उस गण में पढ़े हुए शब्द चादय होते हैं। न सत्त्व असत्त्व। अद्रव्य अर्थ है। सत्त्व द्रव्य होता है। जैसे मृद् मरुद् जलम् वह्नि: इत्यादि द्रव्य है। संख्या गुणा क्रिया इत्यादि द्रव्य नहीं है। प्राग्रीश्वरान्निपाता: (1.4.56) सूत्र से निपाता: अधिकार से प्राप्त पद है। और वह संज्ञापद है। चादिगण में पढ़ा हुआ शब्द यदि द्रव्यवाचका न हो तो उनकी निपात संज्ञा होती है सूत्रार्थ। यदि किसी भी मनुष्य, घट का अथवा पशु का नाम 'च' इत्यादि नहीं हो तो चादियो की निपात संज्ञा होती तात्पर्य है। चादिगण में पशु शब्द, उचित है। जब गज पशु गजवाचकरूप से पशु शब्द का व्यवहार होता है तब वहा पशु शब्द की निपात संज्ञा नहीं होती है। परन्तु यदि पशु गज प्रयोग हो तब पशु शब्द की निपात संज्ञा होती है। किन्तु उचित गज (हाथी) उसका अर्थ होता है।

## 4.17 प्रादय:॥ ( 1.4.58 )

**सूत्रार्थ** - प्रादिगण में पढ़े हुए अद्रव्यवाचक शब्दों की निपात संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - यह संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में प्रादय: एक ही पद है। प्र आदि है जिनका वे प्रादय। पाणिनीयगणपाठ में प्रादिगण विद्यमान है। उस गण में पढ़े हुए शब्द प्रादय होते हैं। चादयोऽसत्त्वे (1.4.57) सूत्र से असत्त्वे सप्तम्यन्त पद की अनुवृति है। न सत्त्वम् असत्त्वम्। अद्रव्य अर्थ में। सत्त्व द्रव्य होता है। जैसे मृद् मरुद् जलम् वह्नि: इत्यादि द्रव्य है। संख्या गुणा क्रिया इत्यादि द्रव्य नहीं होते हैं। प्राग्रीश्वरान्निपाता: (1.4.56) सूत्र से निपाता: अधिकार पद प्राप्त होता है। और वह संज्ञापद है। प्रादिगण में पढ़े हुए शब्द यदि द्रव्य वाचक नहीं हो तो उनकी निपात संज्ञा होती है। यदि किसी मनुष्य, घट अथवा पशु का नाम 'अनु' इत्यादि न हो तो प्रादियो की निपात संज्ञा होती तात्पर्य है। प्रादिगण में अनु शब्द है, पश्चाद् उसका अर्थ है। जब हाथी का नाम अनु गजवाचक रूप से अनुशब्द का व्यवहार होता है तब वहा अनुशब्द की निपात संज्ञा नहीं होती है।

**प्रादय** - प्र। परा। अप। सम्। अनु। अव। निस्। निर्। दुस्। दुर्। वि। आङ्। नि। अधि। अपि। अति। सु। उत्। अभि। प्रति। परि। उप।

## 4.18 उपसर्गा: क्रियायोगे॥ ( 1.4.59 )

**सूत्रार्थ** - क्रिया से अन्वित अर्थ प्रादयो की उपसर्गसंज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - यह संज्ञा सूत्र है। सूत्रे में उपसर्गा: क्रियायोगे दो पद है। प्रादय: (1.4.58) सम्पूर्ण

ध्यान दें:



सूत्र की अनुवृति है। उपसर्गा: संज्ञापद है। क्रिया योग: क्रियायोग: तृतीया तत्पुरुष समास है। उस क्रिया योग में। क्रिया के साथ अन्वय होने पर। प्राग्रीश्वरान्निपाता: (1.4.56) सूत्र से निपात का अधिकार प्राप्त होता है। वह भी संज्ञापद है। क्रिया से अन्वित अर्थ प्रादयो की उपसर्ग संज्ञा होती है। जिस धातु के अर्थ से प्र आदि के अर्थ का अन्वय होता है, उस धातु के प्रति प्र आदि की उपसर्ग संज्ञा, अन्य प्रति आदि की नहीं। निपात संज्ञा भी होती है।

**उदाहरण** - राममनुगच्छति लक्ष्मण: उदाहरण में रामम् अनु लक्ष्मण: गच्छति यदि अर्थ है तो अनु प्रादि में गमिधातु वाच्य होने पर गमन क्रिया में अन्वय नहीं है। अत: उपसर्ग संज्ञा नहीं है। परन्तु यदि अनुगच्छति लक्ष्मण: रामम् यदि तात्पर्य तब अनु प्रादि में गमिधातु वाच्य होने पर गमन क्रिया में अन्वय है। अत: तब अनु इसकी गमधातु के प्रति उपसर्ग संज्ञा होती है।

## 4.19 गतिश्च॥ ( 1.4.60 )

**सूत्रार्थ** - क्रिया से अन्वित अर्थ प्रादयो की गति संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। सूत्र में दो पद है। गति: च सूत्रगतपदच्छेद है। प्रादय: (1.4.58) सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृति है। उपसर्गा: क्रियायोगे (1.4.59) सूत्र से क्रियायोगे पद की अनुवृति है। प्राग्रीश्वरान्निपाता: (1.4.56) सूत्र से निपाता: अधिकार पद की प्राप्ति है। फिर भी संज्ञापद है। क्रिया से अन्वित अर्थ प्रादयो की गति संज्ञा होती है। जिस धातु के अर्थ से प्रादियो के अर्थ का अन्वय होता है, उस धातु के प्रति प्रादियो की गति संज्ञा, अन्य के प्रति नहीं तात्पर्य है। निपात संज्ञा भी होती है। अष्टाध्यायी में प्रथमाध्याय के चतुर्थपाद में गतिसंज्ञा विधायक बीस सूत्र विद्यमान है।

## 4.20 स्वरादिनिपातमव्ययम्॥ ( 1.1.37 )

**सूत्रार्थ** - स्वरादि की निपात और अव्यय संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। इस सूत्र में दो पद है। स्वरादिनिपातम् अव्ययम् सूत्रगतपदच्छेद है। स्वर् आदि: येषां ते स्वरादय:। ते च निपाता: च इति स्वरादिनिपातम् इति समाहारद्वन्द्वसमास:। पाणिनीय गणपाठ में स्वरादि कोई गण है। उसमें पढ़े हुए शब्द स्वरादि होते हैं। सूत्रार्थ - स्वरादि की निपात और अव्यय संज्ञा होती है।

### पाठगत प्रश्न-4

33. निपाता: कौन है?
34. चादयोऽसत्त्वे यहाँ सत्त्व क्या है?
35. प्रादय: कितने हैं और वे कौन हैं?
36. किसकी उपसर्ग संज्ञा होती है?
37. गति संज्ञा किसकी होती है?
38. अव्यय संज्ञा किनकी होती है?
39. प्रादि धातु से प्राक् प्रयुक्त किन्तु उस धात्वर्थ क्रिया से अन्वय नहीं है तो उसकी उपसर्ग संज्ञा होती है अथवा नहीं?

ध्यान दें:

40. प्राग्रीश्वरान्निपाता: किस प्रकार का सूत्र है?

1) संज्ञा 2) परिभाषा 3) विधि: 3) अधिकार:

41. पशु गज:। पशु: गज: वाक्यों में प्रथम पशु शब्द किस प्रकार, द्वितीय किस प्रकार।

1) प्रथम:-निपात: , द्वितीय: - विशेष्यम्

2) प्रथम:-विशेषणम् , द्वितीय: - अव्ययम्

3) प्रथम:-विशेषणम्, द्वितीय: - निपात:

4) प्रथम:-निपात: , द्वितीय: - अव्ययम्

42. प्रादय: सूत्र से प्रादियों की क्या संज्ञा होती है।

1) गति: 2) उपसर्ग: 3) निपात: 4) अव्ययम्

43. क) जो-जो उपसर्ग वह-वह गतिसंज्ञक होता ही है?

ख) जो-जो गति संज्ञक है वह-वह उपसर्ग होता ही है?

दोनों कथनों के विषय में उचित युग्म चुनो?

1) (क) सत्यम् (ख) असत्यम् 2) (क) सत्यम् (ख) सत्यम्

3) (क) असत्यम् (ख) सत्यम् 4) (क) असत्यम् (ख) असत्यम्

44. क) स्वरादियो की निपात संज्ञा होती ही है।

ख) निपातो की अव्यय संज्ञा होती ही है।

दोनों में सही कथन के विषय में युग्म चुनो।

1) (क) सत्यम् (ख) असत्यम् 2) (क) सत्यम् (ख) सत्यम्

3) (क) असत्यम् (ख) सत्यम् 4) (क) असत्यम् (ख) असत्यम्

## 4.21 यू स्त्याख्यौ नदी॥ ( 1.4.3 )

**सूत्रार्थ** - ईकारान्त तथा ऊकारांत जो स्त्रीलिङ्ग की आख्या कहने वालो की नदी संज्ञा हो।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। सूत्र में तीन पद है। वहां यू प्रथमा द्विचनान्त, स्त्याख्यौ प्रथमा द्विवचनान्त, नदी प्रथमैकवचनान्त पद है। समास - ई च ऊ च यू इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास:। स्त्रियाम् आचक्षाते इति स्त्याख्यौ। इस सूत्र में तदन्तविधि होती है। जैसे - यू विशेषण है। किसका विशेषण है। स्त्याख्ययो:, अर्थात् स्त्रीलिङ्ग का। वे कौन। व्याकरण शब्दशास्त्र। अत: शब्दशास्त्र का प्रस्ताव, विषय है। अत: शब्द पद का आक्षेप किया जाता है। अब यू विशेषण, शब्दौ विशेष्य है। विशेषण तदन्त की संज्ञा होती है । अत: उस प्रकार के शब्दों का यहाँ ग्रहण है जिनके अन्त में यू है। अर्थात् ईदन्त - ईकारान्त शब्द, और ऊदन्त - ऊकारान्त शब्द ग्राह्य है। तब सूत्रार्थ- ईदन्त और ऊदन्त ये नित्य स्त्रीलिङ्ग शब्द नदीसंज्ञक है।

उदाहरण - श्रेयसी। नदी। गौरी। वधू।

ध्यान दें:



## 4.22 शेषो ध्यसखि ( 1.4.7 )

**सूत्रार्थ** - नदी संज्ञक भिन्न और सखि भिन्न इदन्त उदन्त की घि संज्ञा होती है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। सूत्र में तीन पद है। शेषः घि असखि सूत्रस्थ पदो में विद्यमान का सन्धि विच्छेद है। शेषः प्रथमान्त पद है। घि प्रथमान्त संज्ञापद है। न सखि असखि नञ्तत्पुरुषसमास। ङिति ह्रस्वश्च सूत्र से ह्रस्वः प्रथमान्त पद की अनुवृति है। यू स्त्याख्यौ नदी सूत्र से यू प्रथमाद्विवचनान्त पद की अनुवृति है। इः च उः च यू इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास। इस प्रकार पद प्राप्त है- असखि यू ह्रस्वः शेषः घि। यहाँ कौन शेष, अवशिष्ट। शेषो घ्यसखि (1.4.7) सूत्र से पूर्व यू स्त्याख्यौ नदी (1.4.3), नेयङुवङ्स्थानावस्त्री (1.4.4), वामि (1.4.5), ङिति ह्रस्वश्च (1.4.6) सूत्रों में गई। वहा जिन ह्रस्वो की नदी संज्ञा नहीं हुई वे शब्द यहाँ जानना चाहिए। किन्तु नदीसंज्ञाभिन्न अन्य इदन्त ह्रस्व और उदन्त ह्रस्व ग्राह्य है। वहां भी सखिशब्द इदन्त ह्रस्व, उसका ग्रहण नहीं करना चाहिए। असखि यू ह्रस्वः शेषः यहाँ कौन शेष है ये जाना। परन्तु वह कौन है कहते हैं- यह व्याकरण शब्द शास्त्र है। अतः शब्द शास्त्र का प्रस्ताव, विषय है। अतः शब्दौ पद का आक्षेप करते हैं। किन्तु असखि ह्रस्वः शेषः यू विशेषण है, शब्द विशेष्य है। अतः तदन्तविधि से तथा सखिभिन्न शेष (नदी संज्ञा भिन्न) शब्द ग्राह्य जिसके अन्त में ह्रस्व इकार है और ह्रस्व उकार है। तब सूत्रार्थ होता है - नदी संज्ञा भिन्न और सखि भिन्न इदन्त और उदन्त शब्द घिसंज्ञक होते हैं।

**उदाहरण** - हरि। मुनि। कवि। भानु। विष्णु।

## 4.23 इग्यणः सम्प्रसारणम्।। ( 1.1.44 )

**सूत्रार्थ** - यण के स्थान में प्रयुज्यमान जो इक् वह सम्प्रसारणसंज्ञक होता है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। इस सूत्र में तीन पद है। इक् यणः सम्प्रसारणम् सूत्रगतपदच्छेद है। इक् (1/1) प्रथमैकवचनान्त पद है। यणः (6/1) षष्ठ्येकवचनान्त पद है। सम्प्रसारणम् प्रथमान्त संज्ञापद है। सूत्रार्थ होता है- यण के स्थान में इक् सम्प्रसारण संज्ञक होता है। अर्थात् यण् - य व र ल इनके स्थान में इक् - इ उ ऋ ऌ इनका विधान करते हैं तो उस इक की सम्प्रसारण संज्ञा होती है।

सम्प्रसारण का क्षेत्र - 1) विधि - कभी कहते हैं सम्प्रसारण करो। तब यण के स्थान में इक का विधान करना चाहिए। यण के स्थान में विहित इक की सम्प्रसारण संज्ञा होती है। परन्तु जहां विधान ही नहीं हुआ वहा कैसे सम्प्रसारण करना चाहिए। अतः संप्रसारण करो इसका अर्थ वैसा करो जिससे यण के स्थान में इक् हो।

2) अनुवाद- कभी कहते हैं कि सम्प्रसारण है तो अन्य कोई भी कार्य करो। अर्थात् यदि यण के स्थान में इक् विहित है तो पूर्वरूपादि करो। यहाँ सम्प्रसारण का विधान नहीं है। पूर्व किये हुए सम्प्रसारण का उपयोग करते हैं। इस प्रकार विहित का व्यवहार अनुवाद कहते हैं।

## 4.24 यस्मात् प्रत्यय विधि स्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्।। ( 1.4.13 )

**सूत्रार्थ** - जो प्रत्यय जिससे करते हैं, वह आदि शब्द स्वरूप उस प्रत्यय परे अङ्गसंज्ञक होता है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। सूत्र में पांच पद है। यस्मात् यत्-सर्वनाम् का पञ्चम्येकवचनान्त पद है। प्रत्यय विधिः प्रथमान्तपद है। तदादि प्रथमान्त पद है। प्रत्यये सप्तम्येकवचनान्त पद है। अङ्गम् प्रथमान्त संज्ञापद है। समास- प्रत्ययस्य विधिः प्रत्ययविधिः इति षष्ठीतत्पुरुषः समासः। तत् (प्रकृतिः) आदिः यस्य

ध्यान दें:

(शब्द स्वरूपस्य) तत् तदादि इति तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासः। सूत्रार्थ - जो प्रत्यय जिससे करते हैं वह शब्द स्वरूप आदि में जिसके उसकी अङ्ग संज्ञा होती है।

**सूत्रार्थ विवरण**- जिससे प्रत्यय विधि- प्रत्यय अधिकार में जो कोई भी प्रत्यय का विधान करता है तब किसी प्रकृति को उद्देश्य करके विधान करते हैं। किन्तु प्रकृतिवाचकशब्द पञ्चम्यन्त होता है। जैसे धातोः पञ्चम्यन्त पद है। उससे पर तिङ् विधान करते हैं। उससे पर शप् इत्यादि प्रत्यय का विधान करते है। ङ्याप्प्रातिपदिकात् यहाँ पञ्चमी है। प्रातिपदिक से सुप् इत्यादि प्रत्यय का विधान करते है। अतः कोई प्रकृति, किसी भी शब्द स्वरूप का उल्लेख करते हैं, उससे पर प्रत्यय का विधान करते हैं। इस प्रकार भू धातु से तिङ् विधान करते है, तब भू ति स्थिति होती है। यहाँ भू इससे तिप् प्रत्यय विहित है। इस प्रकार 'यस्मात् प्रत्ययविधिः' अंश की आलोचना करते हैं।

**तदादि** - तद् आदि जिस शब्द स्वरूप का वह तदादि समास देखो। तद् क्या। जिससे प्रत्यय का विधान करते हैं तद्। जैसे भू इससे तिप् प्रत्यय का विधान करते हैं। अतः भू तद् है। वह भू आदि जिसका, किसका। भू ति स्थिति है। क्या भू+ति समुदाय ग्राह्य है। अतः सूत्र में कहा 'प्रत्यये'। अर्थात् जो प्रत्यय विहित है उस प्रत्यय परे होने पर पूर्ववर्ती अंश ग्राह्य है। यहाँ तिप् प्रत्यय परे होने पर पूर्ववर्ती अंश भू है। अतः भू अंश की अङ्गसंज्ञा होती है।

**सूत्रार्थ समन्वय** - 'भू ति' स्थित्ति में धातु से शप् प्रत्यय भी होता है। तब 'भू अ ति' स्थिति होती है। अब 'भू' इससे अ (शप्) भी प्रत्यय विहित है, 'ति' (तिप्) यह भी प्रत्यय विहित है। तब अङ्ग क्या है। यहाँ अङ्गनिर्णय के लिए जो प्रत्यय आश्रय है, वह प्रत्यय से पूर्ववर्ती भाग अङ्ग होता है। जैसे 'भू अ ति' स्थित्ति में तिप्रत्यय होने पर क्या अङ्गम है तो 'भू अ' समुदाय अङ्ग है। अ (शप्) प्रत्यय करने पर क्या अङ्ग है तो 'भू' अङ्ग है। ति-प्रत्यय भू इससे विहित है। तिप्रत्यय परे भू आदि जिसका वह अङ्ग। ति-प्रत्यय परे 'भू अ' समुदाय की भू आदि है। अतः 'भू अ' समुदाय की अङ्गसंज्ञा होती है।

अङ्गस्य (6.4.1) अधिकारसूत्र है। यह अधिकार ई च गणः (7.4.97) सूत्र तक जाता है। अङ्गाधिकार में 5 पाद है। अङ्ग के आश्रित अनेक कार्य होते हैं। अतः अङ्गसंज्ञा को सही जानना चाहिए।

**प्रसिद्ध अधिकार**

नीचे सारणी में कुछ प्रसिद्ध अधिकार दिए हुए है, सभी नहीं। व्याकरण के छात्र द्वारा ये हमेशा धारण करना चाहिए। अधिकार क्या है, कहा से आरम्भ होता है कितना दूर जाता है इस विषय का ज्ञान व्याकरणशास्त्र में अत्यंत उपयोगि है द्य

| अनुक्र. | अधिकारः | इतः आरभ्य | एतावत् पर्यन्तम् |
|---|---|---|---|
| 1 | कारके | 1.4.23 | 1.4.55 |
| 2 | समासः | 2.1.3 | 2.2.38 (पादान्तः) |
| 3 | अनभिहिते | 2.3.1 | 2.3.73 (पादान्तः) |
| 4 | प्रत्ययः | 3.1.1 | 5.4.160 (पादान्तः) |
| 5 | परश्च | 3.1.2 | 5.4.160 (पादान्तः) |
| 6 | आद्युदात्तश्च | 3.1.3 | 5.4.160 (पादान्तः) |

ध्यान दें:



| | | | |
|---|---|---|---|
| 7 | धातोः | 3.1.22 | 3.1.90 |
| 8 | धातोः | 3.1.91 | 3.4.117 (पादान्तः) |
| 9 | कृत | 3.1.93 | 3.4.117 (पादान्तः) |
| 10 | कृत्याः | 3.1.95 | 3.1.133 |
| 11 | भूते | 3.2.84 | 3.2.122 |
| 12 | ङ्याप्प्रातिपदिकात् | 4.1.1 | 5.4.160 (पादान्तः) |
| 13 | स्त्रियाम | 4.1.3 | 4.1.81 |
| 14 | तद्धिताः | 4.1.76 | 5.4.160 (पादान्तः) |
| 15 | संहितायाम् | 6.1.72 | 6.1.158 |
| 16 | अङ्गस्य | 6.4.1 | 7.4.97 (पादान्तः) |
| 17 | पदस्य | 8.1.16 | 8.3.54 |
| 18 | पदात् | 8.1.17 | 8.1.69 |
| 19 | पूर्वत्रासिद्धम् | 8.2.1 | 8.4.68 (पादान्तः) |
| 20 | संहितायाम् | 8.2.108 | 8.4.68 (पादान्तः) |

## पाठगत प्रश्न-5

45. नदी संज्ञा किसकी होती है?
46. हरिशब्द की नदी संज्ञा होती है अथवा नहीं?
47. यण के स्थान में इक् है तो उसकी क्या संज्ञा होती है?
48. अङ्गसंज्ञाविधायक सूत्र क्या है?
49. अङ्गस्य का अधिकार कितने दूर तक जाता है?
50. प्रत्ययः अधिकार कितने दूर तक जाता है?
51. इसकी नदी संज्ञा नहीं होती है?

    1) हरि  2) नदी  3) गौरी  4) वधू
52. ईदन्त की नित्य स्त्रीलिङ्ग में क्या संज्ञा होती है।

    1) नदी  2) घि  3) पदम्  4) टि
53. क) ऊदन्त की नित्यस्त्रीलिङ्ग में घिसंज्ञा होती है।

    ख) उदन्त की घिसंज्ञा हूति है।

ध्यान दें:

दोनों कथनों के विषय में युक्त युग्म को चुनो।

1) (क) सत्यम् (ख) असत्यम्  2) (क) सत्यम् (ख) सत्यम्

3) (क) असत्यम् (ख) सत्यम्  4) (क) असत्यम् (ख) असत्यम्

54. निम्नलिखित किसके साथ किसका सम्बन्ध युक्त तालिका चुनो।

(क) नदी  (i) रामान् इत्यत्र आन्

(ख) घि  (ii) वधू

(ग) टि  (iii) पठ् अ ति इत्यत्र पठ् अ समुदाय:

(घ) अङ्गम्  (iv) कवि

| | (क) | (ख) | (ग) | (घ) |
|---|---|---|---|---|
| 1) | (ii) | (iv) | (v) | (iii) |
| 2) | (ii) | (iv) | (iii) | (i) |
| 3) | (iii) | (ii) | (i) | (iv) |
| 4) | (ii) | (iii) | (iv) | (i) |

55. अधोलिखित किसके साथ किसका सम्बन्ध युक्त तालिका चुनो।

(क) धातु:  (i) पदम्

(ख) तिङन्तम्  (ii) अपृक्त:

(ग) दीर्घ: अच्  (iii) क्रियावाचक:

(घ) एकाल् प्रत्यय:  (iv) गुरु

| | (क) | (ख) | (ग) | (घ) |
|---|---|---|---|---|
| 1) | (iii) | (ii) | (i) | (iv) |
| 2) | (ii) | (i) | (iii) | (iv) |
| 3) | (iii) | (i) | (iv) | (ii) |
| 4) | (ii) | (iii) | (iv) | (i) |

## पाठ सार

आ ऐ औ वर्णों की वृद्धि संज्ञा होती है। अ ए ओ वर्णों की गुणसंज्ञा होती है। पाणिनि विरचित धातु पाठ में पढ़े हुए शब्दों की धातु संज्ञा भूवादयो धातव सूत्र से होती है। सनादि प्रत्यय जिसके अन्त में होता है वह सनाद्यन्त होता है। सनाद्यन्त शब्द स्वरूप की धातु संज्ञा सनाद्यन्ता धातव: सूत्र से होती है।

वर्णों का उच्चारण अभाव अवसानसंज्ञक होता है विरामोऽवसानम् सूत्र का अर्थ है। दो वर्णों के मध्य में न्यून रूप से अर्धमात्रा से अधिक कालिक व्यवधान यदि नहीं होता है तो वह सामीप्य ही सन्निकर्ष, वह ही संहिता कहलाता है।

ध्यान दें:



दो व्यञ्जनों का स्वर रहित युग्म ही संयोग है। जैसे कृष्ण शब्द में ष्+ण् दो व्यञ्जन है। उन दोनों का जोड़ा है। परन्तु उस युग्म में स्वर नहीं है। स्वर तो पूर्व अथवा परे है, मध्य में नहीं। अत: ष्ण् संयोग है। दीर्घस्वर की गुरु संज्ञा होती है। यदि ह्रस्व स्वर से परे संयोग है तो ह्रस्व की गुरु संज्ञा होती है। यदि ह्रस्व स्वर से परे संयोग नहीं है तो ह्रस्व की लघु संज्ञा होती है। जिस प्रत्यय का एक ही वर्ण है वह प्रत्यय अपृक्तसंज्ञक होता है।

जिस शब्द स्वरूप को उद्देश्य करके सुप् का विधान करते हैं, वह शब्द स्वरूप आदि जिस समुदाय के किन्तु वह सुप् प्रत्यय अन्त में जिस समुदाय के, उसकी पद संज्ञा होती है। अर्थात् शब्द स्वरूपादि प्रत्ययान्त जो समुदाय की पदसंज्ञा होती है। केवल प्रकृत्ति की नहीं अथवा केवल प्रत्यय की पद संज्ञा नहीं होती है। किसी भी शब्द में विद्यमान स्वरों में जो अन्तिम स्वर होता है, उस स्वर से परे शब्द का अन्तिम वर्ण तक उस स्वर सहित समुदाय की टि संज्ञा होती है। किसी भी शब्द स्वरूप का अन्तिम वर्ण से पूर्ववर्ती, उपान्त्य वर्ण उपधासंज्ञक होता है।

प्राग्रीश्वरान्निपाता: (1.4.56) सूत्र से अधिरीश्वरे (1.4.97) सूत्र से पहले मध्य में निपातसंज्ञा होती है। सत्त्व द्रव्य होता है। द्रव्यभिन्न अर्थ में प्रयुक्त चादय निपात संज्ञक होते हैं। बाईस प्रादय भी निपात ही है। क्रिया से अन्वित अर्थ प्रादय उपसर्ग संज्ञक और निपात संज्ञक होते हैं। क्रिया से अन्वित अर्थ प्रादय की गतिसंज्ञा और निपातसंज्ञा होती है। स्वरादय और निपात अव्ययसंज्ञक होते हैं।

ईकारान्त और ऊकारन्त जो नित्यस्त्रीलिङ्ग शब्द उसकी नदी संज्ञा यू स्त्याख्यौ नदी सूत्र से करते हैं। अन्य भी कुछ सूत्रों का अष्टाध्यायी में जिनके द्वारा नदी संज्ञा करते हैं। उससे अवशिष्ट इकारान्त और उकारान्त शब्दों की घि संज्ञा होती है सखिशब्द को छोड़कर। घिसंज्ञा शेषो घ्यसखि सूत्र से होता है।

यण: य व र ल इनके स्थान में इक् इ उ ऋ ऌ इनका विधान करते हैं। विधान भी सम्प्रसारणसंज्ञक होता है। विहित इ उ ऋ ऌ ये भी सम्प्रसारणसंज्ञक होते हैं।

यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् सूत्र से प्रत्यय जिससे करते हैं, वह आदि जिसका, उस शब्द स्वरूप की, उस प्रत्यय परे, अङ्गसंज्ञा होती है। जैसे भू अ ति स्थित्ति में अप्रत्यय करने पर भू अङ्ग है। ति प्रत्यय करने पर भू अ समुदाय हि अङ्ग है।

व्याकरण के छात्र द्वारा निश्चित रूप से कुछ सुप्रसिद्ध अधिकार इस पाठे में सारणी में दी हुई है उसको स्मरण करना चाहिए।

## योग्यतावर्धन

छात्र अपनी योग्यता को बढ़ाने के लिए क्या-क्या कर सकते हैं इस विषय पर एक सुबोध सुभाषित है-

**काकचेष्टा बकध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।**

**अल्पाहारी ब्रह्मचारी विद्यार्थी पञ्चलक्षणम्॥**

**व्याख्या**- कौए की चेष्टा क्रिया काकचेष्टा कहलाती है। बगुले का ध्यान एकाग्रता बकध्यान कहलाती है। कुत्ते की निद्रा को श्वाननिद्रा कहते हैं इसी प्रकार कम आहर का सेवन करने वाले को अल्पाहारी कहते हैं। ब्रह्मचर्यव्रत का आचरण करने वाले को ब्रह्मचारी कहते हैं। ये पांच विद्यार्थियों के लक्षण पहचान है।

ध्यान दें:

छात्र कौन है उसके क्या लक्षण हैं। इस सुभाषित में पांच लक्षण कहे हैं। वे लक्षण जिसके है वह विद्यार्थी कहलाता है अन्य नहीं। अत: छात्र को ये लक्षण नित्य अभ्यास द्वारा आत्मसात् करना चाहिए। तब वह अध्ययन का उत्तम फल प्राप्त कर सकता है। योग्य छात्र हो। यहाँ एक-एक का लक्षण नीचे स्पष्ट करते हैं।

**काकचेष्टा** - वायस जैसे हमेशा चेष्टा में लगा रहता है। निरंतर कर्म करता है। आलस्य नहीं करता है। पुन-पुन प्रयत्न करता है। मनुष्यों द्वारा पिटा जाता है फिर भी पुन प्रवृत्त होता है। अत: कर्मतत्पर काक। जैसे कोआ आलस्य को छोड़कर अपने कर्म में प्रवृत होता है वैसे ही छात्र द्वारा आलस्य को त्याग कर अपना कर्म अध्ययन जो है उसमें प्रवृत्त होना चाहिए।

**बकध्यान** - बलाका जैसा ध्यान करता है वैसा ध्यान विद्यार्थियों को करना चाहिए। बगुला जल में स्थित होकर अपने भक्ष्य को ग्रहण करने के लिए पत्थर के समान बैठता है। मछली और अन्य जलचर सन्देह भी नहीं करते हैं की यहाँ यह बगुला है। परन्तु अपने भक्ष्य के निरीक्षण में रत बगुला समीप आये हुए भक्ष्य को अत्यन्तंनिपुणता से ग्रहण करता है। बगुला एक जगह स्थिर सभी जगह अपने लक्ष्य भक्ष्य की ही दृष्टि करता है। उसी प्रकार विद्यार्थी अपने लक्ष्य अध्ययन को, उसे सभी जगह देखना चाहिए, अन्य जगह दृष्टि नहीं करनी चाहिए। चित्त विक्षेप के अनेक कारण आते हैं, परन्तु उन सभी को दूर करके अध्ययन में एकपरायण छात्र को होना चाहिए।

**श्वाननिद्रा** - कुक्कुर जैसा निद्रा लेता है वैसी निद्रा छात्र की हो। अर्थात् कुत्ता निद्रा में भी अल्प शब्द ध्वनि से ऊठ जाता है और संकट से प्राण रक्षा करता है। अत्यन्त निद्रालु नहीं होता है। अधिक निद्रा तमोगुण को बढ़ाती है। ज्ञानार्जन करना है तो सत्त्वगुण की आवश्यकता है। अत: सत्त्वगुण का उपार्जन कैसे हो छात्र को अवश्य चिन्तन करना चाहिए। सत्त्वगुण के विना विद्याग्रहण विद्याधारण समय-समय पर विद्या प्रयोग करने में मनुष्य समर्थ नहीं होता है। अत छात्र अधिकनिद्रा को त्याग कर आरोग्य रक्षण के लिए जितनी निद्रा युक्त है उतनी ही निद्रा का सेवन करना चाहिए।

**अल्पाहारी** - युक्त परिमित आहार विद्यार्थियों का करना चाहिए। प्रत्येक छात्र के आहार का परिमाण भिन्न हो सकता है फिर भी जिस आहार से निद्रा बढ़ती है, आलस्य बढ़ते हैं, शरीर का मोटापा बढ़ता है वैसा आहार अधिक नहीं करना चाहिए। आहार शरीर और चित्त का पोषण करते हैं। अत: आहार नियन्त्रण मुख्य होता है। केवल थोड़ा आहार भी तो आरोग्यवर्धक रोगप्रतिकार क्षमतावर्धक शक्तिवर्धक बुद्धिवर्धक और मन की चंचलता को दूर करने वाला हो। जैसे अत्युष्ण अति कटु अथवा अति तेज आहार को करते हैं तो मन चञ्चल उसी क्षण में हो जाता है। अत: आहार का परिणाम होता है ऐसा चिन्तन करके आहारनियन्त्रण विद्याध्ययन अनुकूल है।

**ब्रह्मचारी** - प्राचीन काल में गुरुकुल में मांगकर भिक्षा को लाते आयर ब्रह्मचारी विद्यार्जन करते थे। राम वशिष्ठाश्रम में जाकर विद्योपार्जन किया ये हम सभी जानते है। विद्या के ग्रहण धारण और स्मरण के लिए बुद्धिबल आवश्यक है और एकाग्रता तीक्ष्णता आवश्यक है। इनकी क्षमता का वर्धन ब्रह्मचर्यव्रत से होता है यह परम्परा है। वीर्यरक्षण मन्त्रजप काम क्रोध आदि का परित्याग, ब्राह्म मुहूर्त में ऊठना, दिन में निद्रा का सेवन नहीं करना, राक्षसकालीन भोजन का त्याग, आचार्य सेवा, देवसेवा अनेक विषय ब्रह्मचर्यव्रत के अन्तर्गत आते हैं। ब्रह्मचर्य के पालन से विद्या के लिए जिस बुद्धिवैभव की आवश्यकता है वह प्राप्त होता है।

इस प्रकार विद्यार्थियों को क्या-क्या करना चाहिए जिससे विद्या का ग्रहण धारण स्मरण और प्रयोग करने में उसका कौशल बढ़े, उसकी योग्यता जिससे बढ़े वैसे पांच उपाय विस्तार सहित उनकी आलोचना की है। अत्यन्त श्रद्धा से इन उपायों का अवलम्बन छात्र द्वारा किया जाता है। क्षण आभ्यन्तर में तो फल

ध्यान दें:



नहीं मिलता है। दीर्घकाल इस प्रकार की उपासना आवश्यक है। तब ही परिणाम स्पष्ट प्रकट होते हैं।

इस पाठ में जिस जिस विषय की आलोचना की उनका योग्यत्व सम्पादन करने के लिए क्या-क्या कर सकते हैं वह यहाँ कहते हैं।

- संस्कृत को जब पढ़ते हैं तब वहां गुणसंज्ञक वर्णों को और वृद्धिसंज्ञक वर्णों को चुनना चाहिए।
- जहां कोई भी क्रियापद प्रयुक्त पढ़ते है तब वहां धातु क्या, किस सूत्र से उसकी धातु संज्ञा होती है निर्णय करना चाहिए।
- संस्कृत अध्ययनकाल में जहां-जहां संयोग प्राप्त होता है तब उसकी अवधारणा करनी चाहिए।
- सुभाषित श्लोकों में लघु गुरु वर्णों का चिह्न करना चाहिए।
- कोई भी शब्द प्राप्त होता है तो वह शब्द पद है अथवा नहीं निर्णय उसमे टि क्या है, उपाध कौन है ज्ञान होना चाहिए।
- संस्कृत अध्ययन में आये हुए निपात, अव्यय, उपसर्ग और गत्ति का चयन और परिचय करके और पृथक् तालिका करके उनका अर्थ कोश से लिखना चाहिए। और भी अन्यत्र प्रयोग करना चाहिए।
- सूत्र व्याख्यान का विशिष्ट क्रम होता है। उस क्रम का अवलोकन करना चाहिए। उस क्रम से अन्य सूत्रों की भी व्याख्या करनी चाहिए।
- पढ़े हुए सूत्रों का अष्टाध्यायी में जहाँ है उस स्थल को अष्टाध्यायी में खोलकर किस सूत्र से किस पद की अनुवृति, किसका अधिकार आता है यह देखना चाहिए।

## पाठान्त प्रश्न

1. वृद्धिरादैच् सूत्र की व्याख्या करो।
2. अदेङ् गुणः सूत्र की व्याख्या करो।
3. परः सन्निकर्षः संहिता सूत्र की व्याख्या करो।
4. हलोऽनन्तराः संयोगः सूत्र की व्याख्या करो।
5. सुप्तिङन्तं पदम् सूत्र की व्याख्या करो।
6. प्राग्रीश्वरान्निपाताः सूत्र की व्याख्या करो।
7. उपसर्गाः क्रियायोगे सूत्र की व्याख्या करो।
8. यू स्त्र्याख्यौ नदी सूत्र की व्याख्या करो।
9. यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् सूत्र की व्याख्या करो।
10. स्तम्भ में स्थित परस्पर सम्बद्ध का मिलान करो।

| **क-स्तम्भः** | **ख-स्तम्भः** |
|---|---|
| 1) इक्शितपौ धातु निर्देशे | क) गुरुसंज्ञाविधायकं सूत्रम् |
| 2) हलन्त्यम् | ख) ग्रहणकशास्त्रम् |

ध्यान दें:

| | |
|---|---|
| 3) न विभक्तौ तुस्माः | ग) अ ए औ एते गुणसंज्ञकाः |
| 4) आदिरन्त्येन सहेता | घ) निपातसंज्ञाविधायकं सूत्रम् |
| 5) अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः | ङ) धातुपाठे पठितानां धातुसंज्ञा |
| 6) वृद्धिरादैच् | च) धातुप्रकटनम् |
| 7) अदेङ् गुणः | छ) इत्ससंज्ञाविधायकं सूत्रम् |
| 8) दीर्घं च | ज) प्रत्याहारनिर्माणाय सूत्रम् |
| 9) चादयोऽसत्त्वे | झ) आ ऐ औ एते वृद्धिसंज्ञकाः |
| 10) भूवादयो धातवः | ञ) इत्संज्ञानिषेधसूत्रम् |

11. स्तम्भ स्थित परस्पर सम्बद्ध का मिलान करो।

| **क-स्तम्भः** | **ख-स्तम्भः** |
|---|---|
| 1) सूत्रे विशेषणम् | क) दन्तोष्ठम् |
| 2) सूत्रे तपरः | ख) तदन्तविधिः |
| 3) सूत्रे अन्त्यः हल् | ग) परेण णकारेण |
| 4) अविधीयमानः अण् | घ) कण्ठतालु |
| 5) सूत्रे समानविभक्तिकं पदद्वयम् | ङ) कण्ठोष्ठम् |
| 6) अण् | च) तदन्तस्य संज्ञा |
| 7) इण् | छ) तत्कालस्य सवर्णस्य संज्ञा |
| 8) वकारः | ज) सवर्णस्य संज्ञा |
| 9) एकारः | झ) पूर्वेण णकारेण |
| 10) ओ | ञ) इत्संज्ञा |

12. स्तम्भ स्थित परस्पर सम्बद्ध का मिलान करो।

| **क-स्तम्भः** | **ख-स्तम्भः** |
|---|---|
| 1) चादयः | क) अवसानम् |
| 2) यणः इक् | ख) संयोगः |
| 3) क्रियान्वितः प्रादिः | ग) संहिता |
| 4) स्वरादि | घ) लोपः |
| 5) अव्यवहितं हल्द्वयम् | ङ) तदादिविधिः |
| 6) तिङन्तम् | च) निपात इति संज्ञा |
| 7) अव्यवहितम् अच्-द्वयम् | छ) सम्पसारणम् |
| 8) वर्णोच्चारणाभावः | ज) अव्ययम् |

ध्यान दें:



9) प्रसक्तस्य उच्चारणाभाव: झ) पदम्

10) सूत्रे सप्तम्यन्तं पदद्वयम् ञ) उपसर्ग:

स्तम्भ प्रश्नों के सूचक उत्तर -

10) 1)-च), 2)-छ), 3)-ञ), 4)-ज), 5)-ख), 6)-झ), 7)-ग), 8)-क), 9)-घ), 10)-ङ) 11) 1)-ज), 2)-ङ), 3)-छ), 4)-झ), 5)-ञ), 6)-क), 7)-ख), 8)-घ), 9)-च), 10)-ग) 12) 1)-च), 2)-छ), 3)-ञ), 4)-ज), 5)-ख), 6)-झ), 7)-ग), 8)-क), 9)-घ), 10)-ङ)

## पाठगत प्रश्नोत्तर

### उत्तर भाग-1

1. आ ऐ औ।
2. अ ए ओ।
3. भूवादयो धातव:।
4. सनाद्यन्ता धातव:।
5. 1) 6. 2) 7. 1) 8. 1)

### उत्तर भाग-2

9. वर्णों के उच्चारण का अभाव अवसानसंज्ञक होता है।
10. दो वर्णों के मध्य में अर्धमात्राकालिक व्यवधान यदि होता है तो वह सन्निकर्ष संहिता कहलाता है।
11. होता है।
12. दो।
13. नहीं।
14. नमो नारायणाय मन्त्र में न् अ (लघु) म् ओ (गुरु) न् आ (गुरु) र् आ (गुरु) य् अ (लघु) ण् आ (गुरु) य् अ (लघु)।
15. गुरु।
16. 2)
17. 4)
18. 2)
19. 2)
20. 4)
21. 3)
22. 1)

ध्यान दें:

**उत्तर भाग-3**

23. अपृक्त।

24. सुबन्त और तिङन्त।

25. द्वन्द्वसमास के अन्त में विद्यमान द्वन्द्वसमास का अनङ्गभूत पद द्वन्द्वसमास में विद्यमान पदों से प्रत्येक का अभिसम्बन्धित है, अन्वय है।

26. दो प्रकार का पद है। सुबन्त और तिङन्त है।

27. आम्।

28. य्।

29. प्राग्रीश्वरान्निपाता: (1.4.56) सूत्र से लेकर अधिरीश्वरे (1.4.97) सूत्र से पहले मध्य में रहने वाले सूत्रों की निपात संज्ञा होती है।

30. 4)

31. 2)

32. 3)

**उत्तर भाग-4**

33. प्राग्रीश्वरान्निपाता: सूत्र से अधिरीश्वरे सूत्र से प्राक् मध्य में निपातसंज्ञा की अनुवृति है।

34. सत्त्व द्रव्य होता है। जैसे मृद् मरुद् जलम् वह्नि: इत्यादि द्रव्य।

35. प्रादय बाईस है, और वे - प्र। परा। अप। सम्। अनु। अव। निस्। निर्। दुस्। दुर्। वि। आङ्। नि। अधि। अपि। अति। सु। उत्। अभि। प्रति। परि। उप।

36. क्रिया से अन्वित अर्थ प्रादयो की उपसर्ग संज्ञा होती है।

37. क्रिया से अन्वित अर्थ की प्रादयो के साथ गति संज्ञा होती है।

38. स्वरादि की निपात और अव्यय संज्ञा होती है।

39. न।

40. 4)

41. 1)

42. 3)

43. 1)

44. 3)

**उत्तर भाग-5**

45. ईदन्त ऊदन्त की नित्यस्त्रीलिङ्ग में नदी संज्ञा होती है।

46. न।

47. सम्प्रसारण।

ध्यान दें:



48. यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्।

49. ई च गणः (7.4.97) सप्तमाध्याय के अन्तिमसूत्र तक पांच पाद में प्राप्त है।

50. निष्प्रवाणिश्च (5.4.160) पञ्चमाध्याय का अन्तिमसूत्र तक तीन अध्याय में बारह पाद में व्याप्त है।

51. 1), 52. 1), 53. 3) 54. 1) 55. 3)

5

# परिभाषा प्रकरण

ध्यान दें:

पूर्व के पाठ में कुछ मुख्य संज्ञा जो व्याकरण में जहां तहां प्रयुक्त होती है उनको बताया गया है। उस पाठ में संज्ञा सूत्र है। इस पाठ में परिभाषा सूत्रों के बारे में बताया गया है। सूत्र के प्रकार के विषय में जहाँ बताया गया वहां परिभाषा के विषय में कुछ परिचय हुआ। जहाँ नियम नहीं है वहां नियम करना परिभाषा ऐसा वहां पढ़ा गया है। अनियम कैसे होता है। अनियम उत्पन्न हो तो उसको दूर करने के लिए कौन-सी परिभाषा कहनी चाहिए इस विषय में स्पष्ट ज्ञान आवश्यक है और परिभाषा के चिह्न अथवा लिङ्ग होते हैं। जहाँ परिभाषा का लिङ्ग उपलब्ध होता है वहाँ उस परिभाषा का प्रयोग किया जाता है। इसलिए परिभाषा का लिङ्गज्ञान आवश्यक है।

पाणिनि व्याकरण में पञ्चमी षष्ठी और सप्तमी विभक्तियों के अर्थ लौकिक व्याकरण से भिन्न है। उनके अर्थ निर्णय के लिए कुछ परिभाषा इस पाठ में है। जब एक के स्थानी को एक से अधिक संबंधी अथवा आदेश होते हैं तब किसका किसके द्वारा सम्बन्ध, किसको क्या आदेश होगा इस निर्णय के लिए कुछ परिभाषा हैं। कभी एक कार्य को करने के लिए एक से अधिक सूत्र आते हैं। तब उनके बल-अबल का विचार करना आवश्यक होता है। परिभाषा ही विरोध होने पर व्यवस्था करती है। इस प्रकार विरोध को हटाने के लिए कुछ परिभाषा है।

जैसे पारिभाषिक शब्दों के ज्ञान के बिना शास्त्र में कुछ भी समझ नहीं सकते वैसे ही परिभाषा के ज्ञान के बिना व्याकरण शास्त्र में अनियमों को कभी हटा नहीं सकते। इसलिए परिभाषा का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। उससे परिभाषाओं का सही अध्ययन करके आगे के प्रकरण को पढ़ना चाहिए इससे अधिक और क्या कहें।

सूत्र में जो पद है, और जिन पदों की अनुवृत्ति आदि प्राप्त होती है, उन सभी विभक्ति वचन आदि को सूत्र की व्याख्या में कहते हैं। जैसे- इको यणचि इस सूत्र में इकः यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। यण् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। अचि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। इसको संक्षिप्त में लघु रूप में इस प्रकार भी प्रकट किया जाता है इकः (6/1), यण् (1/1), अचि (7/1) इस प्रकार भी बताया जाता है। वहा इकः (षष्ठी/एकवचन को) ही इकः (6/1) इस रूप से प्रकट करते हैं। अचि (सप्तमी/एकवचन को) ही अचि (7/1) इस रूप से प्रकट करते हैं। यह उपाय वहाँ-वहाँ जानना चाहिए।

# पाठ-5

## परिभाषा प्रकरण

ध्यान दें:

### उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- परिभाषा क्या होती है इस विषय को जान पाने में;
- परिभाषाओं के लिङ्ग को जान पाने में;
- सूत्र में प्रक्रिया में अनियम के होने पर उस अनियम को कैसे हटाएं यह जान पाने में;
- एक ही स्थान पर उपस्थित विधियों के विरोध होने पर विरोध को दूर कर पाने में;
- परिभाषा सूत्रों की व्याख्या कर पाने में;
- व्यारकण से सम्बद्ध अनेक नये विषयों को जान पाने में;

## प्रस्तुति

### व्याकरण का सार

शिष्ट मनुष्यों द्वारा प्रयोग किए गए शब्द ही साधु शब्द कहलाते हैं। साधु शब्द कौन-कौन से हैं इसका ज्ञान व्याकरण शास्त्र कराता है। शब्द तो शिष्ठों के व्यवहार में सिद्ध ही है। अनेक शब्द हैं। परन्तु उन सभी का ज्ञान लघु उपाय के द्वारा हो इस उद्देश्य से एक-एक शब्द के विभाग की परिकल्पना करके यह प्रकृति यह प्रत्यय ऐसी व्यवस्था की। इस प्रकृति और प्रत्यय के मिलन द्वारा जो नए शब्द स्वरूप निष्पन्न होते हैं वह रूप साधु है ऐसा व्याकरण प्रक्रिया का सार है। प्रकृति प्रत्यय को जोड़ने के लिए सूत्र को लिखते हैं। उनको जोड़ने के लिए वे सूत्र कार्य करते हैं।

### शब्द स्वरूप

शब्द में क्रमशः विद्यमान वर्ण शब्द का स्वरूप होता है। जैसे 'रामाद्' इस पद का स्वरूप होता है 'र् आ म् आ द्' इस क्रम से विद्यमान वर्ण। इसी प्रकार रामाद् इस शब्द का स्वरूप होता है- पांच वर्णों का समुदाय। सदा समुदाय ही स्वरूप होता है न कि एक वर्ण भी शब्द स्वरूप हो। वर्ण समुदाय ही शब्द स्वरूप होना चाहिए। जैसे 'राम' इस वर्ण समुदायात्मक शब्द स्वरूप। उससे परे 'भ्याम्' यह प्रत्यय होता है। 'भ्याम्' यह प्रत्यय भी वर्ण समुदाय ही है। 'भ्याम्' यह एक शब्द स्वरूप। राम शब्द से परे 'औ' यह प्रत्यय होता है। यहाँ 'औ' यह एक वर्ण, वर्ण समुदाय नहीं है। इसलिए 'औ' यह एक शब्द स्वरूप है।

### आगमादि

कहीं पर शब्द स्वरूप से परे कोई भी शब्द स्वरूप को जोड़ते हैं। जो जोड़ते हैं वह शब्द स्वरूप ही **प्रत्यय** कहलाता है। कहीं पर एक शब्द स्वरूप दूसरे के अवयव रूप से जोड़ते हैं। यह अवयव ही **आगम** कहलाता है। कहीं पर एक शब्द स्वरूप को हटा कर उसके स्थान में अन्य शब्द स्वरूप को जोड़ते हैं। जिसको हटाया जाता है, जिसका निवर्तन किया जाता है, वह **स्थानी** कहलाता है। जो शब्द स्वरूप का विधान करता है, स्थानि को हटाता है, वह **आदेशः** कहलाता है। कहीं पर कोई शब्द स्वरूप केवल लोप होता है। यह शब्द का अभावसाधन प्रायः **लोप** कहलाता है।

ध्यान दें:

इस प्रकार किसी भी शब्द स्वरूप को केवल जोड़ते हैं, किसी को केवल हटाते हैं, किसी को हटा कर उसके स्थान पर अन्य शब्द स्वरूप को जोड़ते हैं, किसी को शब्द स्वरूप के अवयव रूप से जोड़ते हैं, इस प्रकार क्र कार्य सूत्र द्वारा होते हैं।

## टित् कित् मित् ङित् शित्

इत् यह कोई संज्ञा है इस संज्ञा का संज्ञा प्रकरण में विस्तार से वर्णन किया है। जिसके शब्द स्वरूप का टकार इत्-संज्ञक होता है वह शब्द स्वरूप टित् कहलाता है। टकार इत् है जिसका वह टित् इस प्रकार समास प्रदर्शित किया जाता है। जैसे अट् यहाँ हलन्त्यम् इस सूत्र से टकार इत्-संज्ञक है। इसलिए अट् टित् कहलाता है। ककार इत् है जिसका वह कित् कहलाता है। जैसे वुक् इति। मकार इत् है जिसका वह मित् कहलाता है। जैसे नुम् इति। शकार इत् है जिसका वह शित् कहलाता है। जैसे शप् इति। ङकार इत् है जिसका वह ङित् कहलाता है। जैसे अवङ् इति।

## अल्-बोधक पद, अल्-समुदाय बोधक पद

शब्द स्वरूप बोध के लिए किसी पद का प्रयोग करते हैं। वह पद बोधक होता है। और शब्द स्वरूप उसका बोध्य अर्थ होता है। जैसे कमेर्णिङ् यह एक सूत्र है। यहाँ कमे: यह 'कमि' शब्द का पञ्चमयन्त रूप है। यहाँ कमिशब्द का अर्थ है कम् यह धातु। इसलिए कमि यह शब्द बोधक वाचक है। कम् यह धातु उसका बोध्य वाच्य अर्थ है। कमि यह शब्द कम् इससे भी कहा जाता है। संज्ञा संज्ञी को ही समर्पित होती है। कमि यह संज्ञा कम् इस शब्द स्वरूप को समर्पित होती है। कम् यह शब्द स्वरूप अल्-समुदाय है अर्थात् वर्ण-समुदाय है। इसलिए ही कमि यह पद अल्-समुदाय सम्पर्क अथवा अल्-समुदाय बोधक कहलाता है। णिङ् इसका ङकार इत्-संज्ञक, णकार इत्-संज्ञक। ङकार णकार का लोप होता है। इसलिए केवल इकार शेष रहता है। यहाँ णिङ् संज्ञा, इ संज्ञी। णिङ् यह पद इकार को समर्पित है। इ यह शब्द स्वरूप केवल एक अल् है, अल-समुदाय नहीं है। इसलिए णिङ् यह पद अल्-बोधक है।

## विधीयमान का स्वरूप

जो विधान करता है उसका परिभाषा प्रकरण में उपयोगी स्वरूप को यहाँ कहते हैं। जिस कार्य को विधान करता है उसका ही स्वरूप होता है - 1) एकाल् (एक वर्ण), 2) अनेकाल् (वर्ण समुदाय), 3) ङित्, 4) शित्, 5) टित्, 6) कित्, 7) मित्, 8) लोप। वहाँ पर भी - प्रत्यय आदेश आगम लोप ये विधीयमान के चार प्रकार हैं।

## अविधीयमान का स्वरूप

जो अविधीयमान है उसका परिभाषा प्रकरण में उपयोगी स्वरूप यहाँ कहते हैं। 1) स्थानी - अर्थात् जिसको हटाया जाता है वह, 2) आगमी- जो शब्द स्वरूप को उद्देश्य करके आगम का विधान करता है वह शब्द स्वरूप।

अन्य रूप से - 1) एक वर्ण - एकाल्, 2) एकाधिक वर्ण - अल् समुदाय।

## अल्-बोधक और अल्-समुदायबोधक

जो पद एक अल का ज्ञान या बोध कराता है, वह पद अल्-सर्म्पक अथवा अल्-बोधक कहलाता है। जैसे त्यदादीनाम: यहाँ पर। त्यदादीनाम् अ: यह पदच्छेद है। त्यद् तद् इत्यादि शब्दों के अन्त्य वर्ण के

ध्यान दें:



स्थान पर अ यह एक अल् आता है। इसलिए अः यह पद अल्-बोधक है। इको यणचि इस सूत्र में इक् यह प्रत्याहार है। उसका अर्थ इ उ ऋ ऌ ये चार वर्ण है। परन्तु लक्ष्य में एक काल में सभी चार वर्ण एक स्थान पर उपलब्ध नहीं होते। इसलिए कोई भी एक वर्ण पर्याप्त है। इसलिए इक् इस शब्द लक्ष्य होने पर एक बार एक ही वर्ण को समर्पित है। इस प्रकार के सभी प्रत्याहार अल्-बोधक है। मिदेर्गुणः इसका अर्थ है मिद्-धातु से गुण होता है। वहाँ गुण यह पद एककाल अ ए ओ इन तीनों का एक साथ नहीं लगाता। एक बार केवल एक ही वर्ण को जोड़ता है। उससे गुण यह पद अल्-बोधक है।

जो पद अल्समुदाय को समर्पित अथवा बोध कराता है वह पद अल्-समुदाय-समर्पक अथवा अल्-समुदाय-बोधक कहलाता है। जैसे त्यदादीनामः यहाँ पर। त्यदादीनाम् अः यह पदच्छेद है। त्यद् तद् इत्यादि शब्दों के अन्त्य वर्ण के स्थान में अकार का विधान है। त्यदादीनाम् यह पद - त्यद् तद् इत्यादि शब्दों को समर्पित है। इसलिए त्यदादीनाम् यह पद अल्-समुदाय-बोधक है। मिदेर्गुणः इसका अर्थ मिद्-धातु से गुण हो। वहाँ मिदेः यह पद मिद् इस धातु का बोध कराता है। मिद् यह धातु वर्ण समुदाय है। उससे मिदेः यह पद अल्-समुदाय-बोधक है।

## विभक्ति निर्दिष्ट पद

सूत्र में पद की कोई विभक्ति होती है। इको यणचि इस सूत्र में इकः यह षष्ठ्यन्त पद है। अर्थात् षष्ठी निर्दिष्ट पद। अच् इस शब्द का अचि यह सप्तमी है। अचि यह सप्तम्यन्त पद अर्थात् सप्तमी निर्दिष्ट पद है। यण् यह प्रथमानिर्दिष्ट पद है। षष्ठी निर्दिष्ट इकः इस पद का अर्थ - इ उ ऋ ऌ ये वर्ण है।

पञ्चमी भयेन इस सूत्र में पञ्चमी यह प्रथमान्त पद है, अर्थात् प्रथमानिर्दिष्ट पद है। भयेन यह तृतीयान्त पद है। सिंहभयम् इस समास का सिंहाद् भीतः यह विग्रह है। प्रथमा निर्दिष्ट पञ्चमी इस पद का अर्थ होता है यहाँ सिंहाद् यह पञ्चमयन्त पद है।

## अनिर्धारित सम्बन्ध विशेष षष्ठी

जब कहीं पर कोई सम्बन्ध होता है तब वह सम्बन्ध हमेशा दो पदार्थ के मध्य में ही होता है। एक पदार्थ का ही सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते हैं। हमेशा एक पदार्थ का सम्बन्ध अन्य पदार्थ के साथ होता है।

षष्ठी का अर्थ सम्बन्ध ये सभी को अच्छी प्रकार से ज्ञात ही है। पदस्य, धातोः, प्रत्ययस्य, इकः, झलाम् इत्यादि पद षष्ठ्यन्त है। यहाँ धातु+षष्ठी है अर्थात् धातु+सम्बन्ध है। यहाँ कुछ धातु है, उसका सम्बन्ध यह तदर्थ कहलाता है। परन्तु जब तक अन्य पदार्थ का उल्लेख न किया हो तब तक यह सम्बन्ध किसके साथ है यह निर्धारण अथवा निश्चय नहीं होता है। किन्तु किस प्रकार का सम्बन्ध यह भी निर्णय नहीं ले सकते हैं। अर्थात् सम्बन्ध का क्या प्रकार, क्या सम्बन्ध विशेष यह उसकी अज्ञान अवस्था है। परन्तु षष्ठी प्रयोग होने से यह तो जाना जाता है कि कोई सम्बन्ध है, अर्थात् सम्बन्ध सामान्य है, परन्तु सम्बन्ध विशेष नहीं जानते। कब सम्बन्ध विशेष का ज्ञान होगा। उसका जिस अन्य पदार्थ से सम्बन्ध है उसका यदि उल्लेख हो तो सम्बन्ध विशेष सुबोध है। यह दूसरा पदार्थ अनुयोगी कहलाता है।

जैसे- रामस्य इतना कहने मात्र से। तब यह तो जाना जाता है कि राम यह कोई मनुष्य है, उसका किसी के साथ कुछ सम्बन्ध है। परन्तु सम्बन्ध का क्या प्रकार, क्या सम्बन्ध विशेष है यह नहीं जाना जाता है। यह कैसे। अन्य पदार्थ अनुयोगी का उल्लेख न होने से इस हेतु से। यदि वहा अन्य पदार्थ, अनुयोगी का उल्लेख है तब सम्बन्ध का प्रकार, कैसा सम्बन्ध यह भी स्पष्ट हो जाता। जैसे- रामस्य धनम् इति। यहाँ राम+षष्ठी, धनम् यह है। यहाँ धनम् यह अन्य पदार्थ, अनुयोगी का उल्लेख है। तब राम

ध्यान दें:

का धन के साथ क्या सम्बन्ध है यह निर्धारित कर सकते हैं और वह सम्बन्ध स्वस्वामिभाव सम्बन्ध है।

सूत्र में षष्ठ्यन्त पद है, अर्थात् षष्ठी निर्दिष्ट पद है। परन्तु अनुयोगी का उल्लेख नहीं है। वहां सम्बन्ध विशेष क्या है यह निर्धारण नहीं कर सकते। इसलिए यहाँ विद्यमान षष्ठी अनिर्धारित सम्बन्ध विशेष षष्ठी है। न निर्धारितः सम्बन्ध विशेषः यस्याः सा यह विग्रह अर्थ है। इस प्रकार की षष्ठी स्थान षष्ठी कहलाती है।

## 5.1 आद्यन्तौ टकितौ ( 1.1.46 )

**सूत्रार्थ**- टित् कित् जिससे विहित होते हैं उसके आदि अन्त अवयव होते हैं।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। आद्यन्तौ टकितौ ये दो पद इस सूत्र में है। आदिः च अन्तः च इति आद्यन्तौ यहाँ इतरेतर योग द्वन्द्वस मास है। टः च कः च इति टकौ इति इतरेतरयोग द्वन्द्व समास है। ट यहाँ पर टकार से उत्तर अकार अनायास से ही उच्चारण के लिए है। इत् च इत् च इति इतौ इति एकशेष। टकौ इतौ ययोः तौ टकितौ इति बहुव्रीहिसमास। **द्वन्द्वादौ द्वन्द्वमध्ये द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते** यह नियम है। अर्थात् द्वन्द्व समास के आदि मध्य अथवा अन्त में विद्यमान द्वन्द्व समास का अनङ्गभूत पद द्वन्द्व समास में विद्यमान पदों के द्वारा प्रत्येक से अभिसम्बंध है, अन्वेति इति। इत् यह पद द्वन्द्व समास का अवयव नहीं है, किन्तु द्वन्द्वसमास के अन्त में है। इसलिए उसका ट् और क् इन दोनों शब्दों से अभिसम्बन्ध अर्थात् अन्वय होता है। इस प्रकार टित् कित् ये निष्पन्न होते हैं। और सूत्रार्थ होता है- टित् और कित् जिससे विहित है उसके आदि अंत अवयव हैं। अर्थात् जिसको उद्देश्य करके टित् विहित है वह टित् उसका आदि अवयव होता है। जिसको उद्देश्य करके कित् विहित है वह कित् उसका अन्त अवयव होता है। जो षष्ठी निर्दिष्ट उसका टित् आदि होता है, कित् अन्त होता है यह सरल अर्थ है।

**उदाहरण** - 1) आर्धधातुकस्येड्वलादेः (7.2.35) यह एक सूत्र है। इस सूत्र से इट् का विधान होता है। भविष्यति इस रूप साधन प्रक्रिया में 'भू स्य ति' यह स्थिति होती है। वहां 'स्य' यह आर्धधातुक संज्ञक प्रत्यय है। वलादि भी है। यहाँ स्य इस आर्धधातुक को उद्दिश्य करके इट् विहित है। इसलिए 'स्य' इसको 'इट्' होता है। 'इट्' टित् है। इसलिए वह आदि अवयव है। उससे 'इस्य' यह प्राप्त होता है।

2) भुवो वुग् लुङ्लिटोः (6.4.88) यह एक सूत्र है। बभूव इस रूपसाधन प्रक्रिया में भू अ यह स्थिति है। वहा 'भू' को 'वुक्' विधान है। 'वुक्' कित् है। यहाँ भू इस धातु को उद्दिश्य वुक् विहित है। अतः वह 'भू' इसका अन्त अवयव होता है। 'वुक्' इससे केवल वकार ही होता है। 'भू' इसके ऊकार से परे वकार को जोड़ना चाहिए। तब भू 'व्' अ यह स्थिति होती है।

परिभाषा का प्रवृति क्षेत्र- अष्टाध्यायी में प्रत्ययः (3.1.1) परश्च। (3.1.2) ये दो अधिकार सूत्र हैं। उनका अधिकार पञ्चम अध्याय के समाप्ति पर्यन्त है। इसलिए तृतीय चतुर्थ पञ्चम इन तीन अध्यायों में आद्यन्तौ टकितौ यह परिभाषा कार्य नहीं करती है। इन तीन अध्यायों को छोड़कर अन्य जगह यह परिभाषा कार्य करती है। यह बाध्य विशेष चिन्ता पक्ष कहलाती है। षष्ठी स्थानेयोगा इसकी यह परिभाषा अपवाद है। अर्थात् जहाँ स्थान षष्ठी है, वहां यह परिभाषा कार्य नहीं करेगी।

## 5.2 मिदचोऽन्त्यात् परः॥ ( 1.1.47 )

**सूत्रार्थ**- अचो के मध्य में जो अंतिम अच् है, उससे परे मित् होता है। किन्तु जिस समुदाय को उद्दिश्य मित् विहित है, उस समुदाय का अंत अवयव होता है।

ध्यान दें:



**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। मित् अचः अन्त्यात् परः ये सूत्र में आये पदच्छेद है। मित् यह प्रथमान्त पद है। मकारः इत् यस्य स मित् यहाँ बहुव्रीहि समास है। अचः यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। यहाँ यह षष्ठी निर्धारण में। अन्त्यात् यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है। परः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। आद्यन्तौ टकितौ (1.1.46) इस सूत्र से समास घटक अन्तः इस शब्द की अनुवृति है। सूत्रार्थ है- अचो के मध्य में जो अंतिम अच्, उससे परे जिस समुदाय को उद्दिश्य मित् किया है, वह मित् उस समुदाय का अन्त अवयव होता है।

यहाँ दो अंश है। 1) समुदाय के अन्तिम अच्-वर्ण से परे मित् जुड़ता है। 2) मित् समुदाय का अन्त अवयव होता है।

**उदाहरण** - इदितो नुम् धातोः यह एक सूत्र है। धातुपाठ में पढ़ी हुई धातु यदि इदित् हो अर्थात् उसका इत् (इकार) इत्संज्ञक हो तो उस धातु को नुम् होता है यह उस सूत्र का अर्थ है। 'टु नदि' इस धातु से इत् इत्-संज्ञक है। नद् यह शेष है। नद् इस वर्ण समुदाय में नकार से परे अकार अच् है। वह एक ही अच् है। इसलिए वह ही अचों के मध्य में अंतिम अच् है। नद् इस समुदाय को उद्दिश्य विहित नुम् है। वह मित् है, उसका प्रयोग अकार से परे है। इसलिए 'न् अ न् द्' यह स्थिति है। उससे परे प्रक्रिया के द्वारा नकार को अनुस्वार है और अनुस्वार को पर सवर्ण होता है। उससे नन्द् यह निष्पन्न होता है। नन्दति इत्यादि रूप होते हैं।

**परिभाषा का प्रवृति क्षेत्र**- सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में जहाँ कहीं पर भी मित् का विधान करते हैं तो प्रकृत परिभाषा का वहां कार्य प्रारम्भ हो जाता है। स्थान योग होने से और प्रत्यय परे होने से यह परिभाषा अपवाद है। इसका बाध्य सामान्य चिन्ता पक्ष है। अर्थात् मित् विषय में जहाँ जो प्राप्त होता है उन सभी को इसके द्वारा बाँध लिया जाता है।

## पाठगत प्रश्न-1

1. द्वन्द्वादि द्वन्द्वमध्य और द्वन्द्वान्त में श्रूयमाण पद को प्रत्येक से अभिसंबन्ध इसका अर्थ क्या है?
2. आद्यन्तौ टकितौ यह परिभाषा कब प्रवृत होती है?
3. मिदचोऽन्त्यात् परः यह परिभाषा कब प्रवृत होती है?
4. आद्यन्तौ टकितौ और मिदचोऽन्त्यात् परः इन दोनों का परिभाषा का प्रवृत्ति क्षेत्र बताइए?
5. क) विधीयमान टित् आदि अवयव ही होता है?

   ख) विधीयमान मित् अच अंतिम से परे ही होता है?

   इन दोनों कथनों के विषय में युक्त जोड़ा चुनो?

   1) (क) सत्य (ख) असत्य

   2) (क) सत्य (ख) सत्य

   3) (क) असत्य (ख) सत्य

   4) (क) असत्य (ख) असत्य
6. क) प्रत्ययाधिकार में विहित टित् आदि अवयव होता है।

   ख) प्रत्ययाधिकार में विहित मित् अंतिम अवयव होता है।

ध्यान दें:

1) (क) सत्य (ख) असत्य

2) (क) सत्य (ख) सत्य

3) (क) असत्य (ख) सत्य

4) (क) असत्य (ख) असत्य

7. सम्बन्धार्थ में षष्ठी है, किन्तु सम्बन्ध के अनुयोगी नहीं होने से वह...

1) स्थान षष्ठी 2) अवयव षष्ठी 3) अभेद षष्ठी 4) कारक षष्ठी

8. सम्बन्ध विशेष का निर्धारण कब होता है?

1) अनुयोगिसत्त्व होने से

2) प्रतियोगिसत्त्व होने से

3) अनुयोगिप्रतियोगिसत्त्व होने

4) अनुयोग का अभाव होने से

9. अन्त्यात् यह किस प्रकार का पद है?

1) प्रथमा निर्दिष्ट 2) तृतीया निर्दिष्ट

3) पञ्चमी निर्दिष्ट 4) सप्तमी निर्दिष्ट

## 5.3 षष्ठी स्थानेयोगा॥ ( 1.1.49 )

**सूत्रार्थ** - अनिर्धारित सम्बन्ध विशेष जो षष्ठी उसे स्थानेयोगा समझना चाहिए।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। इस सूत्र में षष्ठी स्थानेयोगा ये दो पद हैं। षष्ठी यह प्रथमान्त पद है। स्थानेन योगः अस्याः इति स्थानेयोगा यहाँ बहुव्रीहि समास है। स्थानेयोगा यहाँ पर स्थाने इसका एकार निपातन से है। षष्ठी का अर्थ सम्बन्ध। स्थान शब्द का अर्थ प्रसङ्ग है। शब्द शास्त्र में जो षष्ठी उसे स्थानयोग जानना चाहिए यह सूत्र का अर्थ है। सूत्र में कोई भी षष्ठ्यन्त पद है तो उसका जो अर्थ है उसके स्थान में कार्य करना चाहिए यह भाव है।

जब 1) अल्-बोधक शब्द। 2) वह षष्ठ्यन्त है, 3) और वह षष्ठी स्थानषष्ठी है। 4) जो आदेश है वह यदि एकाल् अथवा लोप है। तब वह आदेश उस अल को हटाकर उसके स्थान में होता है। यह भी विशेष रूप से जानना चाहिए जहां स्थान षष्ठी सुनाई देती है वहां इस परिभाषा के द्वारा स्थाने यह पद उपस्थित होता है।

**उदाहरण** - इको यणचि।

**सूत्रार्थ समन्वय** - इको यणचि यह एक सूत्र है। उसमें -

1) इक् यह अल्-बोधक पद है। उसका अर्थ है - इ उ ऋ ऌ ये चार और इसी प्रकार इनके सवर्ण हैं।

2) इकः यह षष्ठ्यन्त पद है।

3) जिसके साथ इक् का सम्बन्ध है उससे परे वाले पद का अनुयोगि सूत्र में उल्लेख नहीं है।

ध्यान दें:



इसलिए यह षष्ठी अनिर्धारित सम्बन्ध विशेष अर्थात् स्थान षष्ठी है।

4) यण् विधेय है इसलिए वह आदेश है। उसका अर्थ है य् व् र् ल् ये वर्ण। एक ही वर्ण का विधान होने से यह आदेश एकाल् है।

अब वहां - इ उ ऋ ऌ इनके वर्णों के स्थान में य् व् र् ल् ये वर्ण क्रमशः होते हैं यह अर्थ प्राप्त है। शम्भु+अर्चा इस उदाहरण में भकार से परवर्ती जो उकार है वह इक् है, और वह स्थानी कहलाता है। उसके स्थान में यण् होता है, और वह आदेश कहलाता है। उकार के स्थान में प्रकृत परिभाषा के द्वारा वकार का विधान है। तब शम्भ्-व्+अर्चा यह स्थिति है। शम्भ्वर्चा यह शब्द निष्पन्न होता है।

इको यणचि इत्यादि के यहाँ अन्य उदाहरण।

जसः शी इत्यादि स्थलो में अनेकाल्शित् सर्वस्य यह परिभाषा प्रवृत्त होती है। वहा षष्ठी स्थानेयोगा इस परिभाषा के द्वारा स्थाने यह पद उपस्थित होता है।

## 5.4 अलोऽन्त्यस्य॥ ( 1.1.52 )

**सूत्रार्थ**- स्थान में विधीयमान आदेश षष्ठी निर्दिष्ट अन्तिम अल के स्थान में होता है।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। अलः अन्त्यस्य ये सूत्रगत पदच्छेद है। अल् यह प्रत्याहार वर्ण पर्याय है। अलः यह षष्ठ्यन्त पद है। अन्त में होने वाला अन्त्य। अन्त्यस्य यह षष्ठ्यन्त पद है। षष्ठी स्थानेयोगा इस सूत्र से षष्ठी इस प्रथमान्त, स्थाने इस सप्तम्यन्त दोनों पद की अनुवृति है। षष्ठी यह प्रथमान्त तृतीयान्त द्वारा बदल जाता है। 'निर्दिष्टस्य' यह षष्ठ्यन्त पद का अध्याहार करते हैं। स्थाने इस पद से उत्तर 'विधीयमानः आदेशः' इन प्रथमान्त दो पदों का अध्याहार किया जाता है। तब वाक्य योजना होती है। स्थान में विधीयमान आदेश षष्ठी से निर्दिष्ट जो अंतिम अल् उसके स्थान में होता है।

अष्टाध्यायी में किसी भी सूत्र की जब व्याख्या करते हैं तब उसमें विविध पद इधर उधर से आते हैं। इसलिए ही सूत्र में जितने पद हैं उससे अधिक पद सूत्र के अर्थ में देखे जाते हैं। वहां इस प्रकार से पद प्राप्त होते हैं - 1) सूत्र में साक्षात् उच्चारित पद, 2) अधिकार से प्राप्त, 3) अनुवृत्ति से प्राप्त, 4) परिभाषा से उपस्थापित, 5) आक्षेप से प्राप्त, 6) अध्याहार। इस प्रकार सभी पद प्राप्त होने से जो स्थिति होती है वह पद योजना कहलाती है।

पद योजना के अन्तर वहां उन पदों में यदि 1) षष्ठ्यन्त पद है 2) वह षष्ठ्यन्त पद अल्-समुदायबोधक है। 3) वहां जो षष्ठी वह स्थान षष्ठी है। 4) जो आदेश वह यदि एकाल् अथवा लोप है। तो यह परिभाषा प्रवृत्त होती है। इस परिभाषा से वह आदेश अल्-समुदाय के अंतिम अल् के स्थान में होता है। यहाँ दो नियम प्राप्त होते हैं 1) अन्त्य को ही आदेश होता है, 2) अल् ही आदेश होता है। यह परिभाषासार है।

जब एकाल् अथवा लोपरूप आदेश विधान करते हैं तब वह किसी के स्थान में हो ऐसा निर्देश करते हैं। यदि वर्णसमुदाय के स्थान में आदेश हो ऐसा कहें तो वह आदेश सम्पूर्ण समुदाय के स्थान में न हो। वह आदेश समुदाय के अंतिम वर्ण के स्थान में हो।

**उदाहरण** - त्यदादीनामः इस सूत्र में 1) त्यदादीनाम् यह षष्ठ्यन्त पद है। 2) उस पद को 'त्यद्' 'तद्' इत्यादि अल्-समुदाय का बोध कराते हैं। 3) जिससे अन्य के साथ उस प्रकार का सम्बन्ध पद यहाँ नहीं है। इसलिए यह षष्ठी स्थान षष्ठी है। 3) यहां अः अर्थात् अकार आदेश है। वह एकाल् है।

ध्यान दें:

इसलिए परिभाषा का लिङ्ग अथवा चिह्न यहाँ है। इसलिए ही त्यद् इस समुदाय के अन्तिम वर्ण दकार के स्थान में अकार होता है। त्य+अ यह स्थिति होने से। उससे परे व्याकरण प्रक्रिया होती है। आगे अनेक जगह इस परिभाषा द्वारा नियम है। उन स्थलों में वैसा विवरण भी किया है। इसलिए उस-उस प्रदेश में भी पढ़ने से विषय और भी अधिक स्पष्ट हो जाएगा।

## 5.5 ङिच्च॥ ( 1.1.53 )

**सूत्रार्थ** - अनेकाल् जो ङित् आदेश वह अन्त्य अल् के स्थान में होता है।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। दो पद वाला सूत्र है। ङित् च ये सूत्रगत पदच्छेद है। ङकार: इत् है जिसका वह ङित् च यह अव्यय पद है। अलोऽन्त्यस्य (1.1.52) इस सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृति है। अल: और अन्त्यस्य ये दोनों पद भी षष्ठ्यन्त है। ङित् अंतिम अल के स्थान है यह पद योजना। अनेकाल् ङित् आदेश अंतिम अल् के स्थान में होता है यह परिभाषा का अर्थ है।

**उदाहरण** - गो इन्द्र: यह स्थिति है। इन्द्रे च यह सूत्र है। इस सूत्र से पदान्त में जो एङ् उस प्रकार का जो गोशब्द है उसको अवङ् होता है इन्द्रशब्द के परे। अवङ् अनेकाल् और ङित् है। अनेकाल् शित् सर्वस्य इस परिभाषा से अवङ् सभी के स्थान में प्राप्त है। इसलिए यह सूत्र सर्वादेश को बांधता है। अंतिम अल के स्थान में आदेश को जोड़ता है। अत: गोशब्द के अंतिम ओकार उसके स्थान में अवङ् होता है। तब गव इन्द्र: यह स्थिति है। और उससे व्याकरण प्रक्रिया द्वारा गवेन्द्र: यह रूप निष्पन्न है।

## 5.6 अनेकाल्शित् सर्वस्य॥ ( 1.1.55 )

**सूत्रार्थ** - अनेकाल् और शित् आदेश सभी के स्थान में होते हैं।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। इस सूत्र में दो पद है। अनेकाल्शित् सर्वस्य यह पदच्छेद है। न एक अनेक इति नञ्-तत्पुरुष समास। अनेक अल् है जिसके वह अनेकाल् इति बहुव्रीहि समास। शकार इत् है जिसका वह शित् इति बहुव्रीहि समास। अनेकाल् च शित् च इति अनेकाल्शित् यहाँ समाहार द्वन्द्व समास है। किसी भी पद की यहाँ अनुवृति यहाँ नहीं है। अनेकाल् और शित् आदेश सभी के स्थान में होता है यह सूत्र का अर्थ है।

**उदाहरण** - अस्तेर्भू: यह सूत्र है। अस् को भू: यह आदेश होता है उस सूत्र का यह अर्थ है। अस्-धातु से भू यह आदेश करते हैं, वह भ्+ऊ ऐसा अनेकाल् है। इसलिए वह सम्पूर्ण अस् इस धातु के स्थान में होता है।

अनेकाल्शित् सर्वस्य यह सूत्र अलोऽन्त्यस्य इस सूत्र का अपवाद है। ङिच्च यह सूत्र अनेकाल्शित् सर्वस्य इस सूत्र का अपवाद है।

## 5.7 आदे: परस्य॥ ( 1.1.54 )

**सूत्रार्थ**- पर से जो विहित है उस पर के आदि अल के स्थान में होता है।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। आदे: परस्य ये दो पद इस सूत्र में है। आदे: यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। परस्य यह भी षष्ठी एकवचनान्त पद है। अलोऽन्त्यस्य (1.1.52) इस सूत्र से अल: इस षष्ठ्यन्त पद की अनुवृति है। परस्य आदे: अल: ये पद योजना है। पर का जो कार्य कहते हैं वह पर के आदि अल् के स्थान में होता है यह सूत्रार्थ है।

ध्यान दें:



यदि कहीं पर पञ्चमी निर्देश हो तो पर के कार्य का विधान है। वह कार्य जिससे विहित है उसका जो आदि अल् उसके स्थान में होता है।

यदि कहीं पर तस्मादित्युत्तरस्य यह परिभाषा प्रवृत्त होती है तब यह परिभाषा कार्य करती है।

**उदाहरण** - ईदासः यह सूत्र है। इस सूत्र से आस के परे शानच् प्रत्यय को ईकार का विधान करते है। आसः यह पञ्चमी निर्दिष्ट पद है। उससे आस् इससे परवर्ती जो शानच् (आन) उसका कार्य प्राप्त होता है। उस शानच्-प्रत्यय का जो आदि अल् आकार है उसके स्थान में ईकार होता है। तब आस् ईन ये होने से आसीन यह शब्द निष्पन्न होता है।

## पाठगत प्रश्न-2

10. शब्द स्वरूप क्या है?
11. इको यणचि इस सूत्रे में यण् यह क्या अल् बोधक अथवा अल् समुदायबोधक पद है?
12. क्या अल्बोधक पद है?
13. स्थान षष्ठी क्या है?
14. षष्ठी स्थानेयोगा इस परिभाषा का अर्थ लिखिए?
15. अलोऽन्त्यस्य यह परिभाषा कब प्रवृत होती है?
16. ङिच्च यह परिभाषा कब प्रवृत होती है?
17. अनेकाल्शित् सर्वस्य यह परिभाषा कब प्रवृत होती है?
18. आदेः परस्य यह परिभाषा कब प्रवृत होती है?
19. जब स्थानी एकाल् और आदेश का लोप तब कौन-सी परिभाषा प्रवृत होती है?

    1) षष्ठी स्थानेयोगा  2) अलोऽन्त्यस्य
    3) ङिच्च  4) अनेकाल्शित् सर्वस्य

20. अच् किस प्रकार का पद है?

    1) अल्-बोधक  2) अल्-समुदायबोधक
    3) स्थानिबोधक  4) प्रत्यय बोधक

21. अल्-समुदायबोधक होने से स्थान षष्ठी है, यदि आदेश एकाल् है तो कौन-सी परिभाषा प्रवृत होगी।

    1) षष्ठी स्थानेयोगा  2) अलोऽन्त्यस्य
    3) ङिच्च  4) अनेकाल्शित् सर्वस्य

22. विधीयमान अनेकाल् और शित् है तो कौन-सी परिभाषा प्रवृत्त है?

    1) षष्ठी स्थानेयोगा  2) अलोऽन्त्यस्य
    3) मिदचोऽन्त्यात् परः  4) अनेकाल्शित् सर्वस्य

ध्यान दें:

23. प्रत्यय भिन्न विधीयमान अनेकाल् और टित् है तो कौन-सी परिभाषा प्रवृत्त होती है?

1) आद्यन्तौ टकितौ
2) अलोऽन्त्यस्य
3) मिदचोऽन्त्यात् परः
4) अनेकाल्शित् सर्वस्य

24. इको यणचि यहाँ पर -

क) इक्-विधीयमान, यण्-अविधीयमान, अच्-विधीयमान।

ख) इक्-अविधीयमान, यण्-विधीयमान, अच्-अविधीयमान।

इन कथनों के विषय में सही जोड़ा चुनो।

1) (क) सत्य (ख) असत्य
2) (क) सत्य (ख) सत्य
3) (क) असत्य (ख) सत्य
4) (क) असत्य (ख) असत्य

25. इको यणचि यहाँ पर क्या विधीयमान और क्या अविधीयमान है।

1) इक्-विधीयमान, यण्-अविधीयमान
2) इक्-विधीयमान, अच्-अविधीयमान
3) इक्-अविधीयमान, यण्-विधीयमान
4) यण्-अविधीयमान, अच्-अविधीयमान

26. निम्नलिखित में किसके साथ किसका सम्बन्ध है सही उत्तर चुनो?

| | |
|---|---|
| (क) आदेशः अनेकाल् | (i) षष्ठी स्थानेयोगा |
| (ख) स्थानी अनेकाल्, आदेशः लोपः | (ii) ङिच्च |
| (ग) आदेशः अनेकाल् ङिच्च | (iii) अलोऽन्त्यस्य |
| (घ) आदेशः एकाल् ङिच्च | (iv) अनेकाल्शित् सर्वस्य |

| | (क) | (ख) | (ग) | (घ) |
|---|---|---|---|---|
| 1) | (i) | (ii) | (iii) | (iv) |
| 2) | (iv) | (iii) | (ii) | (i) |
| 3) | (iii) | (ii) | (i) | (iv) |
| 4) | (ii) | (iii) | (iv) | (i) |

## 5.8 तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य॥ ( 1.1.66 )

**सूत्रार्थ**- सप्तमी निर्देश होने से विधीयमान कार्य को वर्णान्तर से अव्यवहित पूर्व को होता है।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं। 'तस्मिन्' 'इति' 'निर्दिष्टे' 'पूर्वस्य'

ध्यान दें:



ये सूत्रगत पदच्छेद है। तस्मिन् यह तत्-सर्वनाम का सप्तमी एकवचन। और सप्तम्यन्त का अनुकरण। 'इति' यह अव्यय। निर्दिष्टे यह सप्तमी एकवचन। पूर्वस्य यह षष्ठी एकवचन। सूत्रार्थ होता है - सूत्र में सप्तम्यन्त पद है तो उसका जो अर्थ, उस वर्णान्तर से अव्यवहित पूर्व को कार्य होता है। इस प्रकार की सप्तमी पर सप्तमी कहलाती है।

**उदाहरण** - इको यणचि। यह एक सूत्र है। इस सूत्र में इक: यह षष्ठ्यन्त पद है। षष्ठी निर्देश कार्य का विधान है। यह स्थान षष्ठी। इसलिए इक के स्थान में कार्य होता है यह अर्थ प्राप्त होता है। अचि यह सप्तमी निर्दिष्ट पद है। सप्तमी निर्देश से कार्य का विधान है। उसका अर्थ स्वर है। अत: इस परिभाषा से अच् के पूर्व का कार्य होता है। वर्णानन्तर से अव्यवहित कार्य होता है। अर्थात् अच् से अव्यवहित पूर्व यदि इक् हो तो इक् के स्थान में यण् होता है यह अर्थ है।

इन्द्रे च (6.1.120) इस सूत्र में इन्द्रे यह सप्तमी पद है। यहाँ इन्द्र शब्द स्वरूप पर अर्थात् इन्द्र शब्द से 'इ न् द् र् अ' ये वर्ण समुदाय, आनुपूर्वी ग्राह्य है। यहाँ इन्द्र शब्द से देवराट् इन्द्र का ग्रहण नहीं होता और न ही समान अर्थ कोई पर्यायवाची शब्द का ग्रहण। प्रकृत परिभाषा के साथ एक वाक्यता होने से- इन्द्र शब्द के पर से अव्यवहितपूर्व का कार्य हो यह अर्थ: है।

यह परिभाषा कहाँ प्रवृत्त नहीं होती- यद्यपि सूत्र में सप्तम्यन्त पद हो तो यह परिभाषा प्रवृत्त होती है, वैसा कहा भी है, अतिशायने तमप्, कर्तृकर्मणो: कृति, कर्मणि द्वितीया इत्यादि स्थलो में जहाँ सप्तम्यन्त पद के अपने स्वरूप को नहीं और न ही सप्तम्यन्त के अर्थ परे रहते पूर्व के उक्त कार्य को सम्भव वहां यह परिभाषा प्रवृत्त नही होती है।

## 5.9 तस्मादित्युत्तरस्य॥ ( 1.1.67 )

**सूत्रार्थ**- पञ्चमी निर्देश होने से विधीयमान कार्य को वर्णान्तर से अव्यवहित पर को होता है।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। इस सूत्र में तीन पद है। 'तस्माद्' 'इति' 'उत्तरस्य' ये सूत्रगत पदच्छेद है। तस्माद् यह पञ्चमयन्त पद है। और वह पञ्चमयन्त का अनुकरण है। 'इति' यह अव्यय है। तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य (1.1.66) इस सूत्र से निर्दिष्ट होने से इति सप्तमी एकवचनान्त पद की अनुवृति है, और वह पञ्चमयन्त से विपरिणाम हो जाता है। उत्तरस्य यह षष्ठी एकवचन। सूत्रार्थ होता है- सूत्र में पञ्चमयन्त पद है तो उसका जो अर्थ है उस वर्णान्तर से अव्यवहित पर का कार्य होता है। इस प्रकार की पञ्चमी दिग्योगपञ्चमी कहलाती है।

यहाँ जो पञ्चमयन्त पद कहलाता है वह संज्ञापद होना चाहिए। उसका अर्थ कोई शब्द अथवा वर्ण ही होना चाहिए। ईदास: यह सूत्र है। इस सूत्र में आस: यह पञ्चमयन्त पद है। उसका अर्थ आस् यह शब्द स्वरूप है। अत: इस परिभाषा द्वारा ईदास: इस सूत्र से आस के परे शानच्प्रत्यय को ईकार विधान है।

**उदाहरण** - हलो यमां यमि लोप: (8.4.64) यह एक सूत्र है। यहाँ हल: यह पञ्चमयन्त पद है। उसका अर्थ हल् है। यमाम् यह षष्ठ्यन्त पद है। यमि यह सप्तम्यन्त पद है। लोप: यह प्रथमान्त पद है। हल: यह पञ्चमयन्त है। अत: प्रकृत परिभाषा बल से हल के पर का कार्य होता है। वर्णान्तर से अव्यवहित कार्य को होता है। अर्थात् हल से अव्यवहित पर यदि यम् हो तो यम् लोप होता है, यदि यह यम् यम् से अव्यवहित पूर्व हो यह सम्पूर्ण अर्थ है।

**यह परिभाषा कहाँ प्रवृत्त नहीं है** - यद्यपि सूत्र में पञ्चमयन्त पद होने से यह परिभाषा प्रवृत है, फिर भी पञ्चमयन्त पद न स्वरूप, और न ही पञ्चमयन्त के अर्थ को लेकर पर से कहा कार्य वहां सम्भव नहीं वहां यह परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती है।

ध्यान दें:

## पाठगत प्रश्न-3

27. तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य इस परिभाषा का अर्थ बताइए?

28. तस्मादित्युत्तरस्य इस परिभाषा का अर्थ लिखिए?

29. तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य यह परिभाषा कब कार्य करती है?

30. तस्मादित्युत्तरस्य यह परिभाषा कब कार्य करती है?

31. सूत्र में दिग्योग में पञ्चमी है तो किसके कार्य का बोध जानना चाहिए?

1) अव्यवहितपर का

2) अव्यवहितपूर्व का

3) व्यवहितपर का

4) व्यवहितपूर्व का

32. सूत्र में परसप्तमी है तो किसका कार्य जानना चाहिए।

1) अव्यवहितपर का

2) अव्यवहितपूर्व का

3) व्यवहितपर का

4) व्यवहितपूर्व का

33. क) सप्तमी निर्देश होने से विधीयमान कार्य को अव्यवहितपर का होता है।

ख) पञ्चमी निर्देश होने से विधीयमान कार्य को अव्यवहितपूर्व होता है।

इन कथनों के विषय में सही जोड़ा चुनो।

1) (क) सत्य (ख) असत्य

2) (क) सत्य (ख) सत्य

3) (क) असत्य (ख) सत्य

4) (क) असत्य (ख) असत्य

## 5.10 यथासंख्यमनुदेशः समानाम्॥ ( 1.3.10 )

**सूत्रार्थ** - समसम्बन्धी विधि यथासंख्य हो।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। इस सूत्र में तीन पद है। यथासंख्यम् अनुदेशः समानाम् ये सूत्रगत पदच्छेद है। संख्याम् अनतिक्रम्य इति यथासंख्यम् यहाँ अव्ययीभाव समास है। अनुदेशः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। विधि अथवा विधानम्। समानाम् यहाँ सम्बन्धार्थ में षष्ठी बहुवचन है। सूत्रार्थ है - समसम्बन्धी विधि यथासंख्य हो। अर्थात् कहीं पर भी सूत्र में किसी के साथ किसका सम्बन्ध प्रकट होता है। सम्बन्ध जब होता है तब जिसका सम्बन्ध होता है वह सम्बन्ध प्रतियोगी कहलाता है। जिसमें सम्बन्ध होता है वह अनुयोगी कहलाता है। अर्थात् प्रतियोगी का अनुयोगी के साथ सम्बन्ध होता है। जब प्रतियोगी

ध्यान दें:



संख्या और अनुयोगी संख्या समान है तब इस परिभाषा का सञ्चार होता है। और अर्थ है- प्रथम का प्रतियोगी प्रथम ही अनुयोगी के साथ सम्बन्ध हो। द्वितीय प्रतियोगी का द्वितीय के साथ ही अनुपयोगी सम्बन्ध हो। इसी प्रकार अवशिष्ट प्रतियोगियों के विषय में भी समझना चाहिए। सब जगह प्रतियोगी स्थानी ही हो किन्तु अनुयोगी आदेश अथवा आगम ही हो ऐसा नियम नहीं है।

**उदाहरण** - एचोऽयवायावः इस सूत्र में एचः इस पद से ए ओ ऐ औ ये चार प्रतियोगियों का बोध होता है। अयवायावः इस पद से अय् अव् आय् आव् इन चार अनुयोगियो का बोध होता है। अतः प्रतियोगी संख्या और अनुयोगी संख्या भी समान है। अतः यथा संख्य मनुदेशः समानाम् इस परिभाषा से ए ऐसा यह प्रथम प्रतियोगी, उसका अय् इस प्रथम अनुयोगी के साथ सम्बन्ध जानना चाहिए। अतः एचोऽयवायावः इस सूत्र से एकार के स्थान में अय् यह आदेश होता है।

## 5.11 स्थानेऽन्तरतमः॥ ( 1.1.50 )

**सूत्रार्थ** - स्थानी और आदेश की संख्या वैषम्य होने से स्थान अर्थ गुण प्रमाण से स्थानी के सदृशतम ही आदेश होता है।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। स्थाने अन्तरतमः यह सूत्रगत पदच्छेद है। स्थाने यह सप्तम्यन्त पद है। उसका अर्थ प्रसङ्ग। यहाँ सूत्र में अन्तर शब्द समान का पर्याय है। अतिशय अन्तर अन्तरतम। अतिशायने तमबिष्ठनौ (5.4.55) इस सूत्र से तमप् प्रत्यय। अत सदृशतम यह अर्थ। षष्ठी स्थानेयोगा (1.1.48) इस सूत्र से स्थाने इस सप्तम्यन्त पद की अनुवृत्ति। सूत्रार्थ है। स्थानी आदेश की संख्या में विषमता होने से स्थान अर्थ गुण प्रमाण से स्थानी के सदृशतम ही आदेश होता है। स्थान अर्थ गुण प्रमाण इत्यादि शब्द में स्थान शब्द का अर्थ है- कण्ठादि स्थान। अर्थ शब्द का अर्थ- अभिधेय। गुण शब्द का अर्थ- बाह्यत्न। प्रमाण शब्द का अर्थ- एकमात्रा द्विमात्रा त्रिमात्रा इति उच्चारणकाल। कहीं पर विधि सूत्र से जब किसी स्थानी को कुछ आदेश का विधान करते हैं, वहां स्थानी संख्या यदि आदेश संख्या से भिन्न हो तो वहां यह परिभाषा कार्य करेगी।

**उदाहरण** - झलां जश् झशि। यह एक सूत्र है। झल्-स्थान में जश् आदेश होता है झश् परे रहते सूत्र का अर्थ है। यहाँ स्थानी झल है और वे 24 हैं। आदेश जश् है। और वे 5 हैं। अतः स्थानी संख्या 24, आदेश संख्या 5 इन दोनों में संख्या की विषमता है। वहां यह परिभाषा कार्य करेगी। अतः स्थानी के स्थान में स्थानी के सदृशतम ही आदेश का विधान करे ऐसा भाव है।

इको यणचि। यह एक सूत्र है। इक्-स्थानी है। यण् आदेश है। इक् अविधीयमान है। अत इकार के 18, उकार के 18, ऋकार के 30 ये 66 वर्ण स्थानी है। यण् विधीयमान है। अतः य् व् र् ल् ये चार ही आदेश है। यहाँ स्थानी संख्या से आदेश संख्या का वैषम्य है। अत यहाँ स्थानेऽन्तरतमः यह परिभाषा कार्य करती है। जैसे- सुधी उपास्यः इस स्थिति में धकार से पर ईकार के स्थान में ईकार का सदृशतम यकार ही आदेश होता है। यहाँ ईकार-यकार का सादृश्य तालुस्थानकृत है। क्योंकि ईकार का उच्चारण स्थान तालु, और यकार का उच्चारणस्थान तालु है।

इस परिभाषा का सम्पूर्ण स्थल वहां-वहां उदाहरण में देखना चाहिए। यहाँ सभी उदाहरण का प्रतिपादन अन्य प्रकरण का ज्ञान अभाव होने से क्लिष्ट है। झलां जशोऽन्ते (8.2.39) इस सूत्र के उदाहरण में आन्तरतम परीक्षा स्पष्ट किया। क्रमशः वहां पढ़ना चाहिए वहां उसका बोध सरल है। यहाँ से सीधा वहां जाकर पठन करे तो कठिनता का अनुभव होगा।

ध्यान दें:

## पाठगत प्रश्न-4

34. यथासंख्यमनुदेशः समानाम् यह परिभाषा कब कार्य करती है?

35. प्रतियोगी कौन हैं और अनुयोगी कौन है?

36. स्थानेऽन्तरतमः यह परिभाषा कब प्रवृत होती है?

37. आन्तर्य कितने प्रकार के हैं। भेदों को लिखो?

38. जिसका सम्बन्ध वह क्या। जिसमें सम्बन्ध वह क्या। (क्रम से)

1) प्रतियोगी, अनुयोगी

2) अनुयोगी, प्रतियोगी

3) सम्बन्ध, सम्बन्धी

4) प्रतियोगी, सम्बन्ध

39. क) स्थानी संख्या से आदेश संख्या भिन्न तो स्थानेऽन्तरतमः यह परिभाषा प्रवृत होती है।

ख) स्थानी संख्या आदेश संख्या से समान तो यथा संख्यमनुदेशः समानाम् यह परिभाषा प्रवृत होती है।

इन दोनों कथनों के विषय में निम्न युक्त युग्म को चुनो।

1) (क) सत्य (ख) असत्य

2) (क) सत्य (ख) सत्य

3) (क) असत्य (ख) सत्य

4) (क) असत्य (ख) असत्य

40. निम्न लिखित किस आन्तर्य के साथ किसका सम्बन्ध है सही उत्तर चुनो?

| | |
|---|---|
| (क) स्थान | (i) बाह्यत्न |
| (ख) अर्थ | (ii) उच्चारणकाल |
| (ग) गुण | (iii) अभिधेय |
| (घ) प्रमाण | (iv) उच्चारणस्थान |

| | (क) | (ख) | (ग) | (घ) |
|---|---|---|---|---|
| 1) | (iv) | (ii) | (iii) | (i) |
| 2) | (iv) | (i) | (iii) | (ii) |
| 3) | (iii) | (ii) | (i) | (iv) |
| 4) | (iv) | (iii) | (i) | (ii) |

ध्यान दें:



## 5.12 इको गुणवृद्धी॥ ( 1.1.3 )

**सूत्रार्थ**- जहाँ साक्षात् स्थानी निर्दिष्ट न हो, किन्तु गुण, वृद्धि शब्दों से गुणवृद्धी का विधान है वहां इकः यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। इकः गुणवृद्धी ये सूत्रगत पदच्छेद है। इक् इसका इकस् (इकः) यह षष्ठ्यन्त रूप है। यहाँ यह इकस् नपुंसकलिङ्ग शब्द मानते हैं। इकस् यह नपुंसकलिङ्ग प्रथमान्त इकः यह रूप है। उपतिष्ठते इस पद का अध्याहार करते हैं। उपस्थित क्रिया का कर्ता इकस् यह शब्द है। यद्यपि इकः यह षष्ठ्यन्त है फिर भी उपतिष्ठते इस क्रिया का वह शब्द कर्ता है। अतः उसका प्रथमान्त रूप यहाँ मानना चाहिए। गुणवृद्धी यह प्रथमा द्विवचनान्त पद है। वृद्धिरादैच् (1.1.1) अदेङ् गुणः (1.1.2) इन सूत्रों से वृद्धिः और गुणः इन प्रथमान्त दो पद की अनुवृत्ति है। यहाँ 'इति' इस शब्द का अध्याहार करते हैं। 'यत्र विधीयते तत्र' इसका भी अध्याहर करते हैं। गुणः वृद्धिः इनका उच्चारण करके जहाँ गुणवृद्धी का विधान करते है वहां इकः यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है।

जिस सूत्र में साक्षात् स्थानी का निर्देश न ही वहां भी गुण से गुण का विधान अर्थात् उस सूत्र से गुणः इस शब्द का उच्चारण करके गुण का विधान करते हैं अथवा वृद्धि से वृद्धि का विधान है अर्थात् वृद्धि इस शब्द का उच्चारण करके वृद्धि का विधान करते हैं, उस सूत्र में इकः यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है यह सरल अर्थ इस सूत्र का है। इक यह पद उपस्थित करता है। इसलिए यह परिभाषा पद उपस्थापिका है।

**उदाहरण**- मिदेर्गुणः (7.3.81) यह सूत्र है। इस सूत्र में अङ्ग का अधिकार है। तब अङ्ग मिद को गुण यह पद प्राप्त होते हैं। इस सूत्र में गुण इस पद का उच्चारण करके गुण का विधान है। यहाँ किस वर्ण के स्थान में गुण होता है यह साक्षात् नहीं कहा है। अतः इको गुणवृद्धी इस सूत्र से इस इकः यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है। तब अर्थ होता है- अङ्ग मिद के इक् को गुण होता है।

## 5.13 अचश्च॥ ( 1.2.28 )

**सूत्रार्थ**- जहाँ साक्षात् स्थानी का निर्देश न हो किन्तु ह्रस्व दीर्घ प्लुत के द्वारा जहाँ अच् का विधान है वहां अचः यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। अचः च ये सूत्रगत पदच्छेद है। अच् इसका अचस् (अचः) यह षष्ठ्यन्त रूप है। यहाँ यह अचस् नपुंसकलिङ्ग शब्द माना जाता है। अचस् यह नपुंसकलिङ्ग प्रथमान्त अचः इति रूप है। यद्यपि अचः यह षष्ठ्यन्त है फिर भी उपतिष्ठते इस क्रिया का वह शब्द कर्ता है। अतः उसको प्रथमान्त रूप यहाँ मानना चाहिए। च यह अव्ययपद है। ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः इस सूत्र से अच् ह्रस्वदीर्घप्लुतः इन दो प्रथमान्त पद की अनुवृत्ति है। ह्रस्वदीर्घप्लुतः यह पद तृतीया बहुवचनान्त से विपरिणाम होता है। यहाँ 'इति' इस शब्द का अध्याहार करते हैं। 'यत्र विधीयते तत्र' इसका भी अध्याहार करते हैं। सूत्रार्थ है- ह्रस्व दीर्घ प्लुत द्वारा जहाँ अच् का विधान है वहां अच यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है। अनेक जगह अच् का विधान है। परन्तु साक्षात् ह्रस्व शब्द दीर्घ शब्द अथवा प्लुत शब्द का उच्चारण करके जब अच् का विधान करते हैं वहां अचः यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है।

**उदाहरण** - ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य एक सूत्र है। यहाँ ह्रस्वः इस प्रथमान्त शब्द का उच्चारण करके अच् का विधान है। उस प्रकृत सूत्र से यहाँ अचः यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है। तब ह्रस्वः

ध्यान दें:

नपुंसके अचः प्रातिपदिकस्य ये पद योजना है। उससे परे तदन्तविधि से अजन्त प्रातिपदिक को नपुंसक में ह्रस्व होता है इस रूप से अर्थ होता है।

## पाठगत प्रश्न-5

41. इको गुणवृद्धी यह परिभाषा कब प्रवृत्त होती है?

42. अचश्च यह परिभाषा कब प्रवृत्त होती है?

43. इको गुणवृद्धी यहाँ पर इकः यह कौन-सी विभक्ति है?

44. जहाँ साक्षात् स्थानी का निर्देश न हो किन्तु गुण वृद्धि शब्द से गुणवृद्धी का विधान वहा कौन-सा पद उपस्थित होता है?

1) गुण 2) इक् 3) वृद्धि 4) अच्

45. ह्रस्व दीर्घ प्लुत से जहां अच् का विधान है वहां कौन-सा पद उपस्थित होता है?

1) ह्रस्व 2) दीर्घ 3) इक 4) अच

## 5.14 विप्रतिषेधे परं कार्यम्॥ ( 1.4.2 )

**सूत्रार्थ**- तुल्यबल विरोध होने पर परशास्त्र से विहित कार्य हो।

**सूत्र व्याख्या**- यह परिभाषा सूत्र है। इसमें सूत्र तीन पद है। विप्रतिषेधे यह सप्तम्यन्त पद है। परम् कार्यम् ये दोनों प्रथमान्त पद हैं। विप्रतिषेध शब्द का अर्थ परस्पर विरोध है। सूत्रार्थ है- तुल्यबल विरोध होने पर परशास्त्र से विहित कार्य हो। सूत्र को शास्त्र कहते हैं। जो सूत्र अन्य जगह अन्तत एक साथ कार्य करते हैं, उस सूत्र को लब्धावकाश कहते हैं। एक का ही लक्ष्य संस्कार के लिए दो सूत्र एक साथ कई जगह प्राप्त होते हैं। इस प्रकार लब्धावकाश सूत्र दोनों एक ही लक्ष्य के संस्कार के लिए उपस्थित होते हैं। तब उन दोनों सूत्र का बल तुल्य है ऐसा जानना चाहिए। अब उन दोनों के मध्य में जो सूत्र अष्टाध्यायी में बाद में पढ़ा है, उस सूत्र से कार्य होता है यह विस्तृत अर्थ है।

**उदाहरण**- संहिता प्रकरण में मनस् रथः इस स्थिति में ससजुषो रुः इस सूत्र से सकार को रु होता है। तब मनर् रथः यह होता है। वहा अब हशि च (6.1.114) इस सूत्र से रेफ के स्थान में उत्व प्राप्त होता है। रो रि (8.3.14) इस अन्य सूत्र से रेफ का लोप प्राप्त है। हशि च इस सूत्र का लक्ष्यसंस्कार करके चरितार्थ है अर्थात् लब्धावकाश है। वैसे रो रि यह सूत्र भी अन्यत्र लक्ष्यसंस्कार करके चरितार्थ है अर्थात् लब्धावकाश है। मनर् रथः इस उदाहरण में दोनों सूत्र एक साथ एक ही रेफात्मक लक्ष्य का भिन्न संस्कार करने में प्रवृत्त हुए। तब दोनों के मध्य में जो सूत्र अष्टाध्यायी में पर पढ़ा गया उसका अधिक महत्त्व जानना चाहिए। वस्तुतः इस उदाहरण में पूर्वत्रासिद्धम् इत्यादि से हशि च इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

इस प्रकार परिभाषा प्रकरण में जो परिभाषा आलोचित है उनको पाणिनिमुनि ने स्वयं अष्टाध्यायी में लिखा है। इसके बाद जिस परिभाषा की आलोचना करते हैं वह पाणिनिमुनि द्वारा प्रकारान्तर से ज्ञापित है, अथवा वार्तिककार ने कहा है, अथवा पतञ्जलिमुनि ने कहा है।

ध्यान दें:



## 5.14.1 पूर्वपरनित्यान्तरङ्गपवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः॥ ( प.39 )

शास्त्र में अनेक जगह लक्ष्य का संस्कार के लिए एक से अधिक सूत्र अथवा शास्त्र एक साथ उपस्थित होते हैं। तब दोनों के मध्य में किस सूत्र का बल अधिक अथवा किसका न्यून है इस प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। सरलता के लिए सूत्रों का इस प्रकार विभाजन करते हैं।

1) पूर्वसूत्र, 2) परसूत्र, 3) नित्यकार्यविधायक सूत्र, 4) अन्तरङ्गकार्यविधायक सूत्र, 5) अपवादसूत्र ये पांच भेद है।

इनका कुछ परिचय प्रस्तुत करते हैं।

1) पूर्वसूत्र- जो सूत्र अष्टाध्यायी में पूर्व पढ़ा गया है वह

2) परसूत्र- जो सूत्र अष्टाध्यायी में पर पढ़ा गया है वह

3) नित्यकार्यविधायक सूत्र- कृत अकृत प्रसङ्ग में जो विधि वह नित्य। अन्य सूत्र से कार्य करे न करे तो भी जो विधि लगे वह नित्य कहलाती है।

4) अन्तरङ्गकार्यविधायक सूत्र - अन्त मध्य में शास्त्रीय बहिरङ्ग निमित्त समुदाय मध्य में अन्तर्भूत अन्यङ्ग निमित्त जिसके वह अन्तरङ्ग। इस प्रकार उस निमित्त समुदाय से बहिर्भूत अङ्ग बहिरङ्ग। अथवा थोड़ी अपेक्षा वाला अन्तरङ्गत्व, अधिक अपेक्षा वाला बहिरङ्ग।

5) अपवादसूत्र - निरवकाश विधि अपवाद। जिससे ना प्राप्त होने पर जो विधि आरम्भ की जाती है वह उसका बाधक है। यदि कोई सूत्र कही पर अन्यत्र कार्य नहीं प्राप्त कर रहा है। तब वह उस सूत्र का निरवकाश कहलाता है। अतः अपवाद ऐसा कहलाता है और वह अपवाद अब किसी एक का लक्ष्य संस्कार के लिए उपतिष्ठते। तदा स सर्वप्रबलः गण्यते। यदि इदं सूत्रम् अस्यापि लक्ष्यस्य संस्कारं न कुर्यात् तर्हि पाणिनेः सूत्रप्रणयनम् एव व्यर्थं भवेत्। यतो हि पाणिनेः वचनं व्यर्थं न भवति उपस्थित होता है। अतः वचन प्रामाण्य वह विधि अपवाद कहलाती है और प्राप्त लक्ष्य का संस्कार करती है। वहां यह लौकिक दृष्टान्त- कोई गृहस्वामी ब्राह्मणों को भोजन कराता है। तब सेवकों को आदेशा देता है- (1) ब्राह्मणों को दही दो, (2) तक्र कौण्डिन्य को ये दो वाक्य है। कौण्डिन्य भी ब्राह्मण ही है। प्रथमवाक्यानुसार कौण्डिन्य के लिए भी दही ही देना चाहिए। परन्तु द्वितीय वाक्य विशिष्ट जो कौण्डिन्य के लिए तक्र देना चाहिए। वहां अब विषय है की कौण्डिन्य को क्या देना चाहिए। वहां क्या ठीक है। प्रथम वाक्य सामान्य विधान करता है। द्वितीय वाक्य विशेष विधान करता है। एक ही स्वामी के दो वाक्य है। कोई भी वाक्य विफल न हो। तब द्वितीय वाक्य से कृत विशेष विधान प्रथम वाक्य से कृत सामान्य विधान का अंश रूप में बाध करता है। कौण्डिन्य से भिन्न ब्राह्मण के लिए दही देना इस प्रकार अर्थ का संकोच होता है। दोनों विधान से कौण्डिन्य विषय किया गया है। परन्तु भिन्न कार्य प्राप्त है। द्वितीय विधान केवल कौण्डिन्य ही विषय है। परन्तु प्रथम विधान का तो विषय कौण्डिन्य भी है और अन्य ब्राह्मण है। अतः प्रथम विधि अधिक देशव्यापक विधि। वह उत्सर्ग विधि कहलाती है। द्वितीय विधि अल्पदेश व्यापक विधि है। वह अपवाद कहलाती है। वहां अब निम्न विरोध सम्भव है।

| किसका | किससे | विरोध | कौन प्रबल |
|---|---|---|---|
| पूर्व का | पर से | विरोध | पर |
| पूर्व का | नित्य से | विरोध | नित्य |

ध्यान दें:

| | | | |
|---|---|---|---|
| पूर्व का | अन्तरङ्ग से | विरोध | अन्तरङ्ग |
| पूर्व का | अपवाद से | विरोध | अपवाद |
| पर का | नित्य से | विरोध | नित्य |
| पर का | अन्तरङ्ग से | विरोध | अन्तरङ्ग |
| पर का | अपवाद से | विरोध | अपवाद |
| नित्य का | अन्तरङ्ग से | विरोध | अन्तरङ्ग |
| नित्य का | अपवाद से | विरोध | अपवाद |
| अन्तरङ्ग का | अपवाद से | विरोध | अपवाद |

## पाठगत प्रश्न-6

46. सूत्रों का विप्रतिषेध कब होता है?
47. नित्य से भी बलवान क्या है?
48. पर से भी बलवान क्या-क्या है?
49. नित्य क्या।
50. उत्सर्ग विधि क्या है?
51. अपवाद विधि क्या?
52. अधोलिखित में किससे कौन बलवान है सही उत्तर चुनो?

| | |
|---|---|
| (क) अन्तरङ्ग से | (i) अन्तरङ्ग बलवान |
| (ख) नित्य से | (ii) पर बलवान |
| (ग) पर से | (iii) नित्य बलवान |
| (घ) पूर्व से | (iv) अपवाद बलवान |

| | (क) | (ख) | (ग) | (घ) |
|---|---|---|---|---|
| 1) | (iv) | (ii) | (iii) | (iv) |
| 2) | (iv) | (i) | (iii) | (ii) |
| 3) | (iii) | (ii) | (i) | (iv) |
| 4) | (iv) | (iii) | (i) | (ii) |

## 5.14.2 प्रत्ययग्रहणे तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्॥

सूत्रों में अनेक जगह प्रत्ययों का उल्लेख है। कहीं पर उस प्रत्यय को उद्दिश्य संज्ञा का विधान करते हैं। कहीं पर उस प्रत्यय को उद्दिश्य किसी आगम आदि का विधान करते हैं। कभी केवल प्रत्यय का विधान करते हैं। कभी प्रत्यय निमित्त से ग्रहण करते हैं। कभी प्रत्यय स्थानी से ग्रहण करते हैं । अत:

ध्यान दें:



वहां-वहां प्रत्यय से केवल प्रत्यय का ही ग्रहण अथवा तदन्त का ग्रहण ऐसा प्रतिपादन के लिए यह परिभाषा आ रही है।

**परिभाषार्थ**- जिस प्रकृतिभूत शब्द से जो प्रत्यय विहित है, उस आदि का- वह प्रकृतिभूत शब्द आदि है जिस तदन्त का- वह प्रत्यय अन्त है जिस समुदाय से उसका ग्रहण। प्रकृति प्रत्यय समुदाय का और उनके मध्यवर्ति का ग्रहण यह अर्थ है। इस परिभाषा से उत्पन्न तदन्तविधि तदादिविशेष्यक तदन्तविधि कहलाती है। इस प्रकार यह परिभाषा प्रत्यय ग्रहण से तदन्त ग्राह्य आकार से प्रकट करती है।

जिस प्रकृति को उद्देश्य प्रत्यय विहित वह प्रकृति और वह प्रत्यय इन दोनों समुदाय और उन दोनों के मध्य में वर्तमान प्रत्यय ग्रहण से गृहित होते हैं, अर्थात् सूत्र में गृहीत उच्चारित प्रत्यय की उस प्रकार समुदाय की संज्ञा होती है यह तात्पर्य है। अपनी प्रकृति आदि अवयव-उस प्रत्ययान्त अवयव-समुदाय का ग्रहण होता है।

**उदाहरण** - सह सुपा यह एक सूत्र है। यहाँ सुबान्त्रिते पराङ्गवत्सरे इस सूत्र से सुप् इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है। समास: इसका अधिकार है। उससे सुप् सुपा सह समास संज्ञां लभते यह वाक्य योजना है। यहाँ सुप् यह प्रत्यय बोधक पद है। सुपा यह भी प्रत्यय बोधक है। अत: प्रकृत परिभाषा द्वारा सुप् इस पद से जिस प्रकृतिभूत शब्द से सुप् प्रत्यय विहित है, उस आदि में- वह प्रकृतिभूत शब्द आदि जिसका वह सुप् प्रत्यय अन्त जिस समुदाय का उसका ग्रहण होता है। अर्थात् सुबन्त का ग्रहण होता है। इस प्रकार सुपा यहाँ पर भी तदादिविशेष्यक तदन्तविधि होती है। उस सुबन्त से यह अर्थ प्राप्त होता है। और इस प्रकार सह सुपा इसका सम्पूर्ण अर्थ होता है- सुबन्त का सुबन्त के साथ समास संज्ञा होती है।

अत: सह सुपा इस सूत्र में सुप् इससे जो प्रकृतिभूत सुप् विहित है वह प्रकृतिभूत समुदाय आदि जिस समुदाय का, वह सुप् प्रत्यय अन्त जिस समुदाय के उसका ग्रहण होता है। जैसे पूर्व अम् यहाँ पर पूर्व यह प्रकृतिभूत समुदाय होने से अम् यह सुप् प्रत्यय विहित है। वह प्रकृतिभूत पूर्व यह शब्द आदि है जिस समुदाय के (पूर्व अम् इस समुदाय का), वह अम् प्रत्यय अन्त है जिस समुदाय के (पूर्व अम् इस समुदाय के), सुप् इस ग्रहण से उस समुदाय का (पूर्व अम् इसका) ग्रहण होता है, बोध होता है।

जब किसी भी सूत्र से किसी भी प्रत्यय को उद्दिश्य कोई संज्ञा का विधान करते हैं वहां यह परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती है। अत: वहां प्रत्यय से केवल प्रत्यय का ही बोध होता है तदन्त का नहीं। जैसे क्तक्तवतू निष्ठा यह एक सूत्र है। इससे क्त प्रत्यय को उद्दिश्य और क्तवतु प्रत्यय को उद्दिश्य निष्ठा संज्ञा का विधान करते हैं। अत: इस सूत्र में क्त इससे क्त प्रत्यय मात्र का ग्रहण होता है क्तान्त का नहीं इसी प्रकार क्तवतु इससे भी। उस निष्ठा संज्ञा क्त और क्तवतु प्रत्ययों की है। कहीं पर संज्ञा विधि में भी प्रत्यय ग्रहण से तदन्त विधि होती है। वे अन्य ग्रन्थों में देखना चाहिए।

## 5.14.3 यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते।

जो शब्द स्वरूप को उद्दिश्य आगम का विधान करते हैं उसका अवयव से आगम की गणना करते हैं। यदि कोई उस शब्द स्वरूप का उल्लेख करते हैं तो आगम सहित का ग्रहण करना चाहिए।

टित् कित् मित् ये तीन प्रकार के आगम हैं। सर्वेषाम् इस रूप साधन प्रक्रिया में सर्व आम् इस स्थिति में आम को सुट् आगम होता है। तब सर्व साम् यह स्थिति है। वहां बहुवचने झल्येत् इस सूत्र से झलादि बहुवचन के परे अदन्त अङ्ग को एकार का विधान करते हैं। आम् इसका सुट् यह अंशभूत उसका

ध्यान दें:

अवयव है ऐसा मानते हैं। उससे आम् यह बहुवचन को कहने मात्र से झलादि होता है। उसे एकार होता है और सर्वेषाम् यह रूप सिद्ध होता है।

## 5.14.4 निरनुबन्धकग्रहणे सानुबन्धकस्य।

यदि कोई स्वामी भृत्य को आदेश करता है की पात्र लाओ। वह भृत्य काचपात्र, ताम्रपात्र सभी पात्र लेकर आता है। यदि स्वामी आदेश करता है की ताम्रपात्र लाओ। तब वह भृत्य काचादिपात्र नहीं लाता है, परन्तु ताम्रनिर्मित भोजन स्नान पाक पान आदि के पात्र जैसे कंस द्रोणी गिलास थाली इत्यादि लाता है। वहां पर भी यदि स्वामी आदेश करता है की भोजन के ताम्रपात्र लाओ। तब तो केवल वह भोजन के लिए आवश्यक पात्र ही लाएगा। इसी प्रकार व्याकरण में भी आचार्य पाणिनि करते हैं। वहां लट् लिट् लुट् लृट् लेट् लोट् लङ् लिङ् लुङ् लृङ् ये दश लकार हैं। वहां यदि मुनि कहते हैं ल: तब जिन लकारों में लवर्ण है उन सभी को जानना चाहिए। जब आचार्य कहते हैं लृ तब लृट् लृङ् इन दो लकारों का ही बोध होता है। क्योंकि उन दोनों के मध्य में ही लृ वर्ण है। उस अर्थ के लिए कोई परिभाषा है- निरनुबन्क ग्रहणे सानुबन्धकस्य इति। सरलार्थ- जहाँ अनुबन्ध रहित शब्द स्वरूप का उच्चारण होता है वहां उस शब्द स्वरूप को अनुबन्ध सहित जानना चाहिए।

## 5.14.5 नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्

यदि आदेश अनेकाल् है तो वह सभी के स्थान में होता है ऐसा पूर्व पढ़ा गया है। आदेश एकाल् अथवा अनेकाल् यह कैसे जाना जाता है। अनेक आदेश सानुबन्ध उपलब्ध होते हैं। अर्थात् आदेशों में इत्-संज्ञकवर्ण है। तब किसी भी उपदेश में कितने वर्ण हैं, गणना करते हैं तो अनुबन्ध की गणना नहीं करते यह तात्पर्य है। जैसे धातुपाठ में कृ धातु को डुकृञ् ऐसा उल्लेख किया है। उसका डु ञ् ये दो अनुबन्ध है। यदि अनुबन्ध का उकार के साथ कृ धातु से स्वर गणना करें तो कृ धातु में दो अच् हैं। उससे एकाच उपदेशेनुदात्तात् इस सूत्र से कृत इडागम निषेध कृ धातु से नहीं होगा। निषेध चाहते हैं। अत: अनुबन्ध को छोड़कर कृ धातु के वर्ण गिनते हैं। तब कृ धातु एकाच् है।

## पाठ सार

शब्द में विशिष्ट क्रम से विद्यामान वर्ण समुदाय शब्द के स्वरूप हैं। जो पद एक अल् का बोध कराता है वह पद अल्-सम्पर्क अथवा अल्-बोधक है। जो पद अल्समुदाय को समर्पित अथवा बोध कराता है वह पद अल्-समुदाय-सम्पर्क अथवा अल्-समुदाय-बोधक है। जो विभक्ति पद में प्रयुक्त होती है, उस पद को उस विभक्ति निर्दिष्ट कहते हैं। यदि पद पञ्चमयन्त है तो पञ्चमी निर्दिष्ट कहलाता है।

सूत्रपाठ में पाणिनि द्वारा पञ्चमी षष्ठी, सप्तमी इन विभक्तियों के विशिष्ट अर्थ कहे हैं। षष्ठी ही क्लिष्ट है।

### षष्ठी -

षष्ठी निर्दिष्ट पद है तो विधीयमान के मुख्य दो भाग होते हैं- आगम और आदेश। टित् कित् मित् ये आगम हैं। अन्य आदेश है।

### आगम - टित् कित् मित् -

ध्यान दें:



जो विधान करते हैं वह किसी भी शब्द स्वरूप को उद्देश्य विधान करते हैं। टित् जिसको विधान करता है वह उसका आदि अवयव होता है। कित् जिससे विधान करते हैं वह उसका अंतिम अवयव होता है। ये दो कार्य आद्यन्तौ टकितौ इस परिभाषा से है।

मित् जिससे विधान करते हैं उसके जो अच हैं, उन अचो के अन्तिम से अव्यवहित पर विधान करते हैं, किन्तु जिसको उद्दिश्य विहित उसका अंतिम अवयव होता है। यह कार्य मिदचोऽन्त्यात् पर: इस परिभाषा से होता है।

## आदेश -

षष्ठ्यन्त पद में प्रयुक्त होने से षष्ठी का अर्थ सम्बन्ध है, किन्तु सम्बन्ध का अनुयोगी नहीं है तो वह व्याकरण में स्थान षष्ठी मानी जाती है।

विधीयमान आदेश किसका निवर्तक, हटाने वाला है इति प्रश्न। तब वहां आदेश किस प्रकार और स्थानी क्या है, कैसे निर्देश ये दोनों ही देखने चाहिए।

## वहाँ यह सम्पूर्ण विवेक -

यदि स्थानी एक ही अल् है तब आदेश किस प्रकार है ऐसा देखने की आवश्यकता नहीं है। उसका स्थानी अल् निवृत्त होता ही है।

यदि स्थानी निर्देश अल्समुदाय बोधक पद में षष्ठीप्रयोग से किया तब 1) यदि आदेश एक अल् लोप ङित् (ङित् अनेकाल ही) इनमें अन्यतम है तो वह अन्त्य वर्ण के स्थान में होती है सभी के स्थान में नहीं। 2) यदि आदेश अनेकाल् अथवा शित् है तो वह सभी षष्ठी निर्दिष्ट के स्थान में होते हैं। जब स्थान षष्ठी तब षष्ठी स्थानेयोगा यह परिभाषा।

यदि स्थानी निर्देश अल्समुदाय बोधक पद में षष्ठी प्रयोग किये होने से तब-

1) आदेश एक अल् अथवा लोप है तब अलोऽन्त्यस्य यह परिभाषा।

2) आदेश अनेकाल् और ङित् है तब ङिच्च यह परिभाषा।

3) आदेश अनेकाल् अथवा शित् है किन्तु ङित् नहीं है तब अनेकाल्शित् सर्वस्य यह परिभाषा। ऐसा ज्ञान होना चाहिए।

## सप्तमी -

यदि कोई भी पद सप्तम्यन्त है तो उस पद का जो अर्थ है उससे अव्यवहित पूर्व का कार्य करना चाहिए। तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य इस परिभाषा का यह तात्पर्य है।

## पञ्चमी -

यदि कोई भी पद पञ्चमयन्त है तो उस पद का जो अर्थ उससे अव्यवहित पर का कार्य करना चाहिए। तस्मादित्युत्तरस्य इस परिभाषा का यह तात्पर्य है।

षष्ठी का अर्थ सम्बन्ध है तो सम्बन्ध का एक अनुयोगी अन्य प्रतियोगी होना चाहिए। यदि प्रतियोगी संख्या और अनुयोगी संख्या समान तो यथा संख्य मनुदेश: समानाम् यह परिभाषा प्रवृत्त। और उन प्रथम प्रतियोगी का सम्बन्ध प्रथम अनुयोगी इस क्रम से सम्बन्ध जानना चाहिए।

# पाठ-5

## परिभाषा प्रकरण

ध्यान दें:

किसी विधि सूत्र से किसी स्थानी को कुछ आदेश का विधान करते हैं, वहां स्थानी संख्या यदि आदेश संख्या से भिन्न हो तो वहां स्थानेऽन्तरतमः यह परिभाषा कार्य करती है। किन्तु स्थानी के सदृशतम् आदेश करने चाहिए।

जहाँ साक्षात् स्थानी का निर्देश न हो, किन्तु गुण शब्द से गुण और वृद्धि शब्द से वृद्धि का विधान करते हैं वहां इकः यह षष्ठ्यन्त पद इको गुण वृद्धी इस परिभाषा द्वारा उपस्थित होता है।

ह्रस्व शब्द से दीर्घशब्द से अथवा प्लुतशब्द से जहाँ अच् का विधान है वहां अचः यह षष्ठ्यन्त पद अचश्च इस परिभाषा द्वारा उपस्थित होते हैं।

एक ही लक्ष्य का संस्कार के लिए दो सूत्र कहीं पर एक साथ प्राप्त होते हैं। तब उन दोनों का विरोध होता है। विरोध अनेक प्रकार का है। किन्तु निर्णय के लिए विभिन्न परिभाषा है इस विषय में सविस्तार से उल्लेख इस पाठ में किया है।

## पाठान्त प्रश्न

1. स्थान षष्ठी का कैसे निर्णय करेंगे।
2. षष्ठी स्थानेयोगा इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. अलोऽन्त्यस्य इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. अनेकाल्शित् सर्वस्य इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. षष्ठी स्थानेयोगा, अलोऽन्त्यस्य, ङिच्च, अनेकाल्शित् सर्वस्य इन चारों सूत्रों के परस्पर बाधक भाव को स्पष्ट कीजिए।
6. आद्यन्तौ टकितौ इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
7. मिदचोऽन्त्यात् परः इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
8. स्थानेऽन्तरतमः इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
9. तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।

## पाठगत प्रश्नोत्तर

**उत्तर भाग-1**

1. दन्द्वादि में, द्वन्द्व मध्य में द्वन्द्वान्त में श्रूयमाण पद को प्रत्येक से अभिसंबध है इसका अर्थ है- द्वन्द्व समास के आदि मध्य अथवा अन्त में विद्यमान द्वन्द्व समास के अनङ्गभूत पद का द्वन्द्व समास में विद्यमान होने से पदों द्वारा प्रत्येक से अभि सम्बन्ध है, अन्वेति इति।
2. प्रत्ययः (3.1.1) परश्च (3.1.2) इस अधिकार से अन्यत्र सूत्र से विधीयमान यदि टित् अथवा कित् हो तो आद्यन्तौ टकितौ यह परिभाषा प्रवृत होती है।
3. किसी भी सूत्र से विधीयमान यदि मित् हो तो मिदचोऽन्त्यात् परः यह परिभाषा प्रवृत्त है।
4. प्रत्ययः (3.1.1) परश्च (3.1.2) इस अधिकार से बाहर आद्यन्तौ टकितौ इस परिभाषा का प्रवृत्ति

ध्यान दें:



क्षेत्र है। सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में मिदचोऽन्त्यात् पर: इस परिभाषा का प्रवृत्ति क्षेत्र है।

5. 3)

6. 4)

7. 1)

8. 3)

9. 3)

**उत्तर भाग-2**

10. शब्द में क्रमश: विद्यमान वर्ण शब्द के स्वरूप होते हैं।

11. अल् बोधक।

12. जिस पद का अर्थ लक्ष्य का एक अल् ही प्राप्त होता है वह पद अल् बोधक है।

13. सूत्र में षष्ठी निर्दिष्ट पद है। परन्तु अनुयोगी का उल्लेख नहीं है। वहां सम्बन्ध विशेष कौन है यह निर्धारण नहीं होता। अत: यहाँ विद्यमान षष्ठी अनिर्धारित सम्बन्ध विशेष षष्ठी है। इस प्रकार की षष्ठी स्थान षष्ठी कहलाती है।

14. शब्द शास्त्र में जो षष्ठी है उसे स्थानेयोगा समझना चाहिए।

15. अल् समुदाय बोधक पद से स्थान षष्ठी है और आदेश एकाल् लोप हो तो अलोऽन्त्यस्य यह परिभाषा प्रवृत होती है।

16. अल् समुदाय बोधक पद से स्थान षष्ठी है और आदेश अनेकाल् ङित् हो तो ङिच्च यह परिभाषा प्रवृत्त है।

17. अल् समुदाय बोधक पद से स्थान षष्ठी है और आदेश अनेकाल् ङिद्भिन्न अथवा शित् हो तो अनेकाल्शित् सर्वस्य यह परिभाषा प्रवृत्त होती है।

18. पञ्चमी निर्देश होने से पर के कार्य का विधान हो तो आदे: परस्य यह परिभाषा प्रवृत्त होती है।

19. 1)

20. 1)

21. 2)

22. 3)

23. 1)

24. 3)

25. 4)

26. 2)

**उत्तर भाग-3**

27. सप्तमी निर्देश होने से विधीयमान कार्य वर्णान्तर से अव्यवहित पूर्व को होता है ऐसा तस्मिन्निति

ध्यान दें:

निर्दिष्टे पूर्वस्य इस परिभाषा का अर्थ है।

28. पञ्चमी निर्देश होने से विधीयमान कार्य को वर्णान्तर से अव्यवहित पर को होता है ऐसा तस्मादित्युत्तरस्य इस परिभाषा का अर्थ है।

29. सूत्र में सप्तम्यन्त पद यदि संज्ञापद हो। उसका अर्थ कोई शब्द अथवा वर्ण ही होना चाहिए तो तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य यह परिभाषा प्रवृत्त होगी।

30. सूत्र में पञ्चमयन्त पद यदि संज्ञापद हो। उसका अर्थ कोई शब्द अथवा वर्ण ही हो तो तस्मादित्युत्तरस्य यह परिभाषा प्रवृत्त होगी।

31. 1)

32. 2)

33. 3)

**उत्तर भाग-4**

34. षष्ठी सम्बन्ध का प्रतियोगी- अनुयोगी संख्या यदि समान हो तो यथा संख्यमनुदेशः समानाम् यह परिभाषा प्रवृत होगी।

35. सम्बन्ध सदा कम से कम दो के मध्य होता है। जब सम्बन्ध हर तो जिसका सम्बन्ध है वह सम्बन्ध का प्रतियोगी कहलाता है। जिसमें सम्बन्ध है वह अनुयोगी कहलाता है। अर्थात् प्रतियोगी सम्बन्ध अनुयोगी के साथ होता है।

36. षष्ठी सम्बन्ध प्रतियोगी- अनुयोगी संख्या यदि विषम हो तो स्थानेऽन्तरतमः यह परिभाषा प्रवृत्त होती है।

37. स्थान, अर्थ, गुण, प्रमाण कृत आन्तर्य चार प्रकार का है।

38. 1)

39. 2)

40. 4)

**उत्तर भाग-5**

41. जहाँ साक्षात् स्थानी का निर्देश न हो किन्तु गुण वृद्धि शब्द से गुणवृद्धी का विधान है वहां इको गुणवृद्धी यह परिभाषा प्रवृत्त होती है।

42. ह्रस्व दीर्घ प्लुत से जहां अच् का विधान है वहां अचश्च यह परिभाषा प्रवृत्त होती है।

43. इकः यह षष्ठ्यन्त से प्रथमा विभक्ति है।

44. 4)

45. 4)

**उत्तर भाग-6**

46. एक लक्ष्य का ही संस्कार के लिए यदि दो सूत्र एक साथ प्राप्त होते हैं। वे दोनों सूत्र भी लब्धावकाश एक लक्ष्य का ही संस्कार के लिए उपस्थित होते हैं। तब उन दोनों सूत्र का बल

ध्यान दें:



तुल्य है उन दोनों का विप्रतिषेध है।

47. नित्य से भी बलवान अन्तरङ्ग और अपवाद है।

48. पर से भी प्रबल नित्य अन्तरङ्ग और अपवाद का है।

49. कृत अकृत प्रसङ्ग में जो विधि वह नित्य। अन्य सूत्र से कार्य किया नहीं किया जो विधि प्रसज्य वह नित्य कहलाती है।

50. अधिक देशव्यापक विधि उत्सर्ग विधि कहलाती है।

51. उत्सर्ग विधि देश में अन्तर्भूत अल्पदेश व्यापक विधि अपवाद कहलाती है।

52. 2)

ध्यान दें:

6

# अच् सन्धि में यण्-अयवायावादिसन्धि

प्रकृति प्रत्यय के पदों को जोड़ते समय पूर्वपद का जो अन्तिम वर्ण उसका, परवर्ति जो पद है उसका जो आदि वर्ण है उनको समीप लाते हैं। यह समीपता दो पदों का मिलान को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह अर्धमात्राकाल अनिवार्य है। अथवा हो। यदि यह सामीप्य अर्धमात्राकाल ही है तो वहां संहिता है। तब समीप आने वाले पूर्व पर दोनों वर्णों के मध्य में एक अथवा दोनों का विकार, परिवर्तन उत्पन्न होता है। यह विकार ही सन्धिकार्य है। अर्थात् संहितावश से वर्णपरिणाम। आदेश आगम द्वित्व लोप इत्यादि अन्यतम विकार है। जब स्वर का विकार है तब वह स्वर सन्धि अथवा अच्सन्धि कहलाता है। जब व्यञ्जन का विकार होता है तब वह व्यञ्जनसन्धि अथवा हल्सन्धि कहलाती है। इस पाठ में अच्-सन्धि का वर्णन किया गया है।

सूत्र में जितने पद है, किन्तु जितने पदों की अनुवृत्ति प्राप्त है, उन सभी का विभक्ति वचन आदि को सूत्र व्याख्या में कहते हैं। जैसे - इको यणचि इस सूत्र में इकः यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। यण् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। अचि यह भी सप्तमी एकवचनान्त पद है। इसको संक्षिप्त में इस प्रकार भी प्रकट किया जाता है इकः (6/1), यण् (1/1), अचि (7/1) यह भी उपाय करते हैं। वहाँ इकः (षष्ठी/एकवचन) इसको ही इकः (6/1) इस रूप से प्रकट करते हैं। अचि (सप्तमी/एकवचन) को ही अचि (7/1) इस रूप से प्रकट करते हैं। यह यह उपाय वहां-वहां जानना चाहिए।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर सक्षम होंगे-

- दो स्वरों की जब संधि होती है तो क्या-क्या परिवर्तन होता है जान पाने में;
- यण्-सन्धि को कर पाने में;
- गुणसन्धि और वृद्धि सन्धि को कर पाने में;
- गुण का अपवाद वृद्धि कैसे होता है यह जान पाने में;
- वृद्धि के भी अवपाद हैं यह जान पाने में;

ध्यान दें:



- सवर्णदीर्घ सन्धि को कर पाने में;
- दूर से किसी का भी आह्वान संस्कृत भाषानुसार कर सकता हूँ जान पाने में;
- प्रकृति भाव को जानकर कहाँ प्रकृति भाव होता है यह जान पाने में;

## 6.1 संहितायाम्॥ ( 6.1.72 )

यह अधिकार सूत्र है। यहाँ से आरम्भ करके अनुदात्तं पदमेकवर्जम् (6.1.158) यह इस पाद का अन्तिम सूत्र तक इसका अधिकार है। संहितायाम् (6.1.72) इस सूत्र से आरम्भ अनुदात्तं पदमेकवर्जम् (6.1.158) इस सूत्र से पहले जो कहते हैं उसे संहिता में ही जानना चाहिए।

परः सन्निकर्षः संहिता इस सूत्र में संहिता क्या है इसकी व्याख्या की है।

दो वर्णों के मध्य में कम से कम अर्धमात्रा का ही उच्चारणकाल व्यवधान सम्भव है नहीं तो उससे भी न्यून। अतः जिन दो वर्णों के मध्य में अर्धमात्रा काल का व्यवधान यदि है तो उन वर्णों के मध्य में संहिता है और संहिता दो स्वरों के मध्य, दो व्यञ्जनों के मध्य, स्वर व्यञ्जनों के मध्य भी सम्भव है।

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।

नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते।।

वाक्य के वक्ता वाक्य में पदों का उच्चारण व्यवधान विना भी कर सकता है, व्यवधान करके भी कर सकता है। परन्तु जब समास होता है तब समास में स्थिति पदों का उच्चारण करने में विलम्ब अनुचित और शास्त्रविरुद्ध है। वैसे ही जहां धातु के साथ उपसर्ग युक्त है वहां प्रसङ्ग होने पर धातु उपसर्ग का उच्चारण व्यवधान बिना ही करना चाहिए। जिस पद का विभाग करके अधिक पद नहीं कर सकते वह ही एकपद कहलाता है। अथवा जो पद दो पदों के मेल से निष्पन्न नहीं होता है वह एकपद कहलाता है। एकपद में स्थित वर्णों के उच्चारण में विलम्ब अर्थात् व्यवधान नहीं करना चाहिए। जब विलम्ब रहित उच्चारण होता है तब दो वर्णों के मध्य में अर्धमात्राकाल व्यवधान है। जब दो वर्णों के मध्य में इस प्रकार की समीपता होती है तब दो वर्णों के मध्य में संहिता है ऐसा जानना चाहिए। यह समीपता ही संहिता है। वहां संहिता का विषय है। जहां संहिता का विषय होता है वहां संहिताधिकार में कहे सूत्र कार्य करते हैं। संहिता में जब वर्ण का अथवा वर्णों का बदलाव होता है, तब यह विपरिणाम भी संहिता, सन्धि इस नाम से उसका व्यवहार करते हैं।

जब दो स्वरों के मध्य संहिता होती है तब **अच्सन्धि** कहलाती है।

जब दो व्यञ्जनों के मध्य संहिता होती है तब **हल्सन्धि** कहलाती है।

जब विसर्ग निष्पन्न होते हैं विसर्ग का अन्य परिणाम होता है तब **विसर्गसन्धि** कहलाती है।

जब संहिता होती है, परन्तु वर्ण परिणाम नहीं होता है तब **प्रकृतिभावसन्धि** कहलाती है।

यद्यपि संधियों के भेद और उपभेद अनेक हैं, फिर भी संधि पांच हैं, ऐसा व्याकरण सम्प्रदाय में प्रसिद्धि है। चार सन्धियां ही कही हैं। पांचवी सन्धि तो **स्वादिसन्धि** कहलाती है।

सामान्य रूप से व्याकरण द्वारा एक-एक पद का संस्कार करते हैं। तब पद संस्कार पक्ष अथवा पदान्वाख्यानपक्ष कहलाता है। परन्तु सन्धि प्रकरण में बाहुल्य से समास में अथवा वाक्य में स्थित दोनों पदों का संस्कार करते हैं। यह वाक्य संस्कार पक्ष अथवा वाक्यान्वाख्यानपक्ष कहलाता है।

ध्यान दें:

## 6.2 इको यणचि॥ ( 6.1.77 )

**सूत्रार्थ**- अच् के परे रहते इक् के स्थान में यण् होता है संहिता विषय में।

**अवधेयम्**- इस ग्रन्थ में यह ही प्रथम विधिसूत्र है। इसलिए अन्य सूत्रों से इसकी कुछ विस्तार से व्याख्या करनी है। एक जगह की व्याख्यान को विभिन्न स्थानों में पाठक स्वयं ही समझ लेंगे।

**सूत्रव्याख्या**- विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। इकः यण् अचि ये सूत्रगत पदच्छेद है।

इकः यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। यहाँ षष्ठी का अर्थ सम्बन्ध है। सम्बन्ध का एक प्रतियोगी अन्य अनुयोगी है। प्रतियोगी का सम्बन्ध अनुयोगी के साथ होता है। इस सूत्र में अनुयोगी का उल्लेख नहीं है। अतः अनुयोगी रहित यह स्थान षष्ठी है। किन्तु इक् अल् बोधक पद है। अतः षष्ठी स्थानेयोगा इस परिभाषा द्वारा स्थान यह पद उपस्थित होता है। तब इक् के स्थान में यह अर्थ प्राप्त होता है।

यण् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। यण् यहाँ विधेय है।

अचि यह सप्तमी एकवचनान्त पद, यह परसप्तमी। इसलिए तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य इस परिभाषा द्वारा अच् को अव्यवहित पूर्व का यह अर्थ प्राप्त है।

संहितायाम् (7/1) यह अधिकार है। 'भवति' इस क्रियापद का अध्याहार करते हैं। सूत्र घटक तीन पद भी प्रत्याहार रूप है। अतः इक् यह संज्ञा, इ उ ऋ ऌ इन संज्ञियों को यहाँ जानना चाहिए। तब पद योजना होती है- संहिता में अच् के परे अव्यवहित पूर्व इक् के स्थान में यण् होता है। सूत्रार्थ है- संहिता अच् के परे इक् के स्थान में यण् होता है। अर्थात् इक् के परे अच् है, इक् अच् इनके मध्य में अर्धमात्रा अधिक काल व्यवधान अभाव है तो, इक् के स्थान में यण् होता है। अ इ उ ऌ ए ओ ऐ औ इन सभी में एक के परे इ उ ऋ ऌ इन वर्णों के स्थान में य् व् र् ल् ये वर्ण आदेश हो यह सूत्रार्थ है।

इक् अविधीयमान है। अतः इकार के 18, उकार के 18, ऋकार के 30 ये 66 वर्ण स्थानी है। यण् विधीयमान है। अतः य् व् र् ल् ये चार ही आदेश हैं। यहाँ स्थानी संख्या से आदेश संख्या का वैषम्य है। इसलिए यहाँ स्थानेऽन्तरतमः यह परिभाषा लगती है और वैसे- सुधी उपास्यः इत्यादि उदाहरणों में स्थानकृत सादृश्य लेकर इवर्ण के स्थान में यकार, उवर्ण के स्थान में वकार, ऋवर्ण के स्थान में रेफ, ऌ वर्ण के स्थान में लकार होता है।

इक् पद से 66 वर्णों की उपस्थिति अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः इस सूत्र सञ्चारण से परे होता है। प्रथम तो इक् पद से चार वर्ण ही उपस्थिति होते हैं। यण्-पद से चार वर्ण उपस्थित होते हैं। अतः प्राथमिक उपस्थिति लेकर स्थानी चार है आदेशा भी चार हैं। इसलिए यथासंख्यमनुदेशः समानाम् इस परिभाषा द्वारा इकार के स्थान में यकार, उकार के स्थान में वकार, ऋकार के स्थान में रेफ, ऌकार के स्थान में लकार इस उद्देश्य क्रम से आदेश प्रवृत होते हैं। अच् इसकी संख्या इक् और यण् के समान नहीं है। अतः कोई भी क्रम नहीं है। अर्थात् इक् से परे अच् के मध्य से कोई भी स्वर है तो यणादेश होता है।

**उदाहरण** - मह्यकारः। मह्यकारः।

**सूत्रार्थ समन्वय** - मह्याः आकारः यह समास विग्रह। षष्ठी तत्पुरुष समास करने पर समास में स्थित शब्दों में विद्यमान विभक्तियों का लुक् होता है, अर्थात् विभक्तियां लुप्त होती हैं। जैसे मही इस शब्द से परे विद्यमान षष्ठी लुप्त है। वैसे भी प्रत्यय लोपे प्रत्यय लक्षणम् इस परिभाषा द्वारा वह विभक्ति

ध्यान दें:



वहां है ऐसा मानकर मही इसका सुप्तिङन्तं पदम् इस सूत्र से पदसंज्ञा होती है। समासार्थ - मही पृथिवी। उसका आकार में परिवर्तन। पृथिव्या परिमाण। यहाँ समास है। अत: दो पदों पर सन्निधि अनिवार्य ही है। इस प्रकार यहाँ संहिता है। मही आकार: इस स्थिति में आकार से अव्यवहितपूर्व ईकार है- यद्यपि इक् इस प्रत्याहार में ईकार नहीं है, वैसे ही इक् अविधीयमान है। अत: अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्यय: इस ग्रहणकशास्त्र से इक् दीर्घ ईकार का भी बोधक होता है। अत: इको यणचि इस प्रकृतसूत्र से ईकार के स्थान में यकार करने पर मह् य् आकार: यह स्थिति होती है। तब-

## [ 6.3 ] संयोगान्तस्य लोप:।। ( 8.2.23 )

**सूत्रार्थ**- संयोगान्त जो पद उसके अंतिम अल् का लोप होता है।

**सूत्रव्याख्या**-विधिसूत्र है। संयोगान्तस्य लोप: इस सूत्र में दो पद है। संयोगान्तस्य (6/1), लोप: (1/1)। पदस्य इसका अधिकार है। संयोग: अन्ते यस्य तत् संयोगान्तम् यहाँ बहुव्रीहि समास है। संयोगान्तस्य पदस्य लोप: यह पदयोजना। यहाँ संयोगान्तस्य पदस्य ये दो समान विभक्ति दो पद है। उन दोनों में एक विशेषण और दूसरा विशेष्य है। अत: तदन्तविधि होती है। तब वैसा ही विशेष्य ग्रहण करने योग्य है जिसके अन्त में विशेषण है। यहाँ संयोगान्तस्य यह विशेषण। पदस्य यह विशेष्य। तदन्तविधि से तथा पद का ग्रहण है जिसके अन्त में संयोग है। तब सूत्र का अर्थ है- संयोगान्त जो पद उसका लोप। (वस्तुत: सूत्र में संयोगान्तस्य ऐसा न कहकर संयोगस्य ऐसा कहना चाहिए। उससे भी कार्य सिद्ध होते हैं।) 'संयोगान्तं यत् पदं तस्य' इसका प्रकट संयोगान्तपदस्य ऐसा होता है। वहां अब संयोगान्तपदस्य यह पद षष्ठ्यन्त है। तत्पद अल्समुदाय- बोधक है। अर्थात् संयोगान्तपदस्य इस शब्द का अर्थ केवल एक ही वर्ण नहीं अपितु वर्णसमुदाय। अनुयोगी विरह से वहा जो षष्ठी वह स्थान षष्ठी है। एयर जो आदेश वह लोप है। इसलिए ही अलोन्त्यस्य इस परिभाषा सञ्चार से अर्थ होता है- संयोगान्त जो पद उसके अंतिम अल् का लोप होता है।

**उदाहरण** - मह् य् आकार: यह स्थिति है। पूर्वसूत्र में कहा ही है की मह् य् यह पद है। किन्तु उसके अन्त में ह+य् इसका संयोग है। अत: प्रकृतसूत्र से यकार का लोप प्राप्त है। तब-

### 6.3.1 ) यण: प्रतिषेधो वाच्य:। ( वार्तिकम् )

संयोगान्त यण् लोप का प्रतिषेध, निषेध हो यह वार्तिकार्थ है। इस वार्तिक से यकारलोप का निषेध होता है। इस प्रकार मह् य् आकार: यह स्थिति होती है। तब-

## 6.4 अचो रहाभ्यां द्वे।। ( 8.4.46 )

**सूत्रार्थ**- अच् से उत्तर रेफ हकार से परे यर् को दो होता है।

**सूत्र व्याख्या**- विधि सूत्र है। इसमें तीन पद हैं। अच: रहाभ्याम् द्वे ये सूत्रगत पदच्छेद है। अच: (5/1), रहाभ्याम् (5/2), द्वे (1/2)। यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा इस सूत्र से यर: इस षष्ठ्यन्त पद की अनुवृति आ रही है और वा इस अव्यय की भी अनुवृति है। पद योजना- अच: रहाभ्याम् यर: द्वे इति। अच: यह पञ्चमी निर्दिष्ट पद है। यह दिग्योग पञ्चमी है। अत: अच् से उत्तर यह अर्थ प्राप्त होता है। रहाभ्याम् यह निर्दिष्ट पद है। यह दिग्योग पञ्चमी है। अत: रेफ हकार से परे यह अर्थ प्राप्त होता है। सूत्रार्थ होता है- अच् से उत्तर रेफ हकार परे यर् को दो होता है।

ध्यान दें:

**उदाहरण** - मह् य् आकारः यहाँ पर मकार से परे अच् अकार है। उससे परे हकार है। उससे परे यर् यकार है। अतः प्रकृतसूत्र से यर् के यकार को विकल्प से द्वित्व होता है। उससे दो पक्ष उपस्थित होते हैं - द्वित्व अभावपक्ष और द्वित्वपक्ष। जब द्वित्व अभावपक्ष तब मह् य् आकारः इस स्थिति में वर्णों के मेल से मह्याकारः यह साधु रूप सिद्ध होता है। द्वित्वपक्ष में मह् य् आकारः यह स्थिति है। तब-

## [ 6.5 ] हलो यमां यमि लोपः॥ ( 8.4.64 )

**सूत्रार्थ**- हल् के परे यम् का लोप विकल्प से हो यम् के परे रहते।

**सूत्र व्याख्या** -विधि सूत्र है। यहां चार पद है। हलः यमाम् यमि लोपः ये सूत्रगत पदच्छेद है। हलः (5/1), यमाम् (6/3), यमि (7/1), लोपः (1/1)। झयो होऽन्यतरस्याम् इस सूत्र से अन्यतरस्याम् इस विभक्ति प्रतिरूपक अव्यय की अनुवृति है उसका विकल्प यह अर्थ है। सूत्रार्थ- हल से उत्तर यम् का लोप विकल्प से हो यमि परे रहते।

**उदाहरण**- मह् य् य् आकारः यहाँ हल् हकार है। उससे परे यम् यकार है। उसके बाद दूसरा यकार यम् परे है। अतः उसके स्थान में विकल्प से लोप होता है। अर्थात् हकार से परवर्ती यकार का विकल्प से लोप होता है। तब लोपपक्ष में मह् य् आकारः, वर्ण मिलान करने से मह्याकारः यह रूप निष्पन्न होता है। लोप अभावपक्ष में मह्याकारः ऐसा दो यकार से युक्त रूप निष्पन्न होता है।

इस प्रकार मह्याकारः मह्याकारः ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

## 6.6 अनचि च॥ ( 8.4.47 )

**सूत्रार्थ**- अच् के परे यर् को होता है अच् के परे नहीं।

**सूत्र व्याख्या**- विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद है। न अच् अनच्, तस्मिन् अनचि इति नञ्-तत्पुरुषसमास। च यह अव्ययपद है। यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (8.4.44) इस सूत्र से यरः इस षष्ठी एकवचनान्त पद की अनुवृति है और वा इस अव्यय की अनुवृति है। अचो रहाभ्यां द्वे इस सूत्र से अचः इस पञ्चमी एकवचनान्त पद की, द्वे इस प्रथमा द्विवचनान्त पद की अनुवृति है। तब पद योजना होती है - अचः यरः द्वे वा अनचि। अनचि च यहाँ पर प्रजस्य प्रतिषेध है। उससे अर्थ होता है - अचि नहीं होता है। सम्पूर्ण सूत्र का अर्थ- अच से परे यर को दो होता है अच् को नहीं।

**उदाहरण** - मधोः अरिः यह विग्रह है। समास करने पर सुप का लुक करने पर पुनः सु प्रत्यय करने पर मधु अरिः यह स्थिति होती है। यहाँ इक् उकार अच अकार से अव्यवहित पूर्व है। अतः इको यणचि इस सूत्र से उकार के स्थान में स्थानेऽन्तरतमः इस परिभाषा बल से वकार होता है। तब मध् व् अरिः यह स्थिति है। यहाँ अब मकार से परे जो अकार वह अच् है। उससे परे यर् धकार है। उससे परे अच् नहीं है। अतः अनचि च इस सूत्र से धकार को दो धकार हुए। अर्थात् द्वित्व होता है। यह द्वित्व है परन्तु आदेश होने से गणना नहीं करते है। द्वित्व करने पर मध् ध् व् अरिः यह स्थिति होती है। तब - (आगे के सूत्र का उदाहरण देखना चाहिए)

**सन्धि प्रकरण में समास की प्रस्तुति**- सन्धि प्रकरण में अनेक जगह समास करके सन्धि प्रदर्शित है। अतः समास विषय में कुछ ज्ञान आवश्यक है। अतः उसे यहाँ कहते हैं। यह केवल ज्ञानार्थ के लिए है परीक्षा के लिए नहीं।

# पाठ-6

## अच् सन्धि में यण्-अयवायावादिसन्धि

ध्यान दें:



मधोः अरिः ऐसा विग्रह। समास करने पर दो पद के मध्य में एक का पूर्व निपात अपर का पर निपात होता है। किस पद का कहाँ स्थान है इस विषय में पाणिनिमुनि ने व्यवस्था की है। उस मधोः इस पद की पूर्व स्थापना, अरिः इस पद की पर स्थापना। इनका समास होता है कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से 'मधोः अरिः' इस समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा है। प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सुपो धातुप्रातिपदिकयोः इस सूत्र से प्रातिपदिक का अवयवभूत सुब्-विभक्तियों का लुक् होता है। अर्थात् अदर्शनं होता है। उससे मधु+अरि ये विभक्ति रहित शब्द शेष रहते हैं। उसके बाद ङ्याप्प्रातिपदिकात् इस सूत्र से मधु+अरि इस समुदाय से परे पुन सुप् विभक्ति का विधान करते हैं। उससे मधु+अरि+सु यह स्थिति होती है। प्रक्रिया द्वारा मध्वरिः यह रूप निष्पन्न होता है। सभी जगह समास होता है तो यह ही प्रक्रिया है। परन्तु इस प्रकार समास प्रकरण में तो नहीं पढ़ा है। अतः यह प्रपञ्च भार की कल्पना इस हेतु से अब केवल जिज्ञासा शांत करने के लिए दे रहे हैं, परीक्षा के लिए नहीं। सन्धि प्रकरण में अनेक समास का लाघव होने से प्रकट में तो इस प्रकार - मधोः अरिः यह विग्रह है। समास करने पर भी सुपो का लुक पुन सुब्-विधान होने से मधु अरिः यह स्थिति होती है।

**व्युत्पत्ति ज्ञान बढ़ाने के लिए यह विषय। परीक्षा के लिए नहीं** - अनचि यहाँ समास विषय में कुछ-

नञ् इसका अर्थ प्रतिषेध अथवा निषेध है। पर्युदासप्रतिषेध प्रसज्यप्रतिषेध इन भेद से प्रतिषेध दो प्रकार का है।

**पर्युदासप्रतिषेध** - जब दो पदों का समास होता है तब उन दो पदों का परस्पर आकाङ्क्षादिवश से अन्वय/सम्बन्ध होता है। नृपदासः इस समास का विग्रह नृपस्य दासः है। नृप क्या यह जिज्ञासा होती है। दासः इस उत्तर से वह शान्त होती है। दास सेवक परिचर। दासः इस शब्द स्वभाव ही है की दास किसी का होता है। अतः वहा जिज्ञासा होती है की दास किसका। नृपस्य इस उत्तर से वह जिज्ञासा शान्त होती है। अर्थात् नृप का दास से सम्बन्ध होने पर। दास का नृप से सम्बन्ध होने पर।

इस प्रकार जब नञ् इस अव्यय का समास होता है तब न ब्राह्मणः अब्राह्मणः यह समस्त पद निष्पन्न होता है। तब नञ् इस अव्यय का अ ही अवशेष रहता है। निषेध ही नञर्थ है। तब किसका निषेध। ब्राह्मण का निषेध। यहाँ नञर्थ निषेध का अन्वय/सम्बन्ध ब्राह्मण में है। तो समास का अर्थ क्या है? समासार्थ है - ब्राह्मणभिन्न ब्राह्मणसदृश। का है ब्राह्मण भिन्न ब्राह्मणसदृश। क्षत्रिय। यह निषेध पर्युदास कहलाता है।

वाक्य से विधि अथवा निषेध होता है। जैसे जल को दो यह विधि। जल को मत दो यह निषेध। पर्युदास होने से निषेध का प्राधान्य नहीं है, विधि का प्राधान्य है, किन्तु नञ् का जिसमें अन्वय है उससे सदृश का ग्रहण वहां होता है, नञ् अन्वय से उत्तरपद में ब्राह्मण है। इस प्रकार हमेशा ब्राह्मण भिन्न ब्राह्मण सदृश इस प्रकार अर्थ जानना चाहिए। असेवकः जाता है- सेवक भिन्न सेवक सदृश जाता है। यहाँ गमन क्रिया का अभाव विवक्षित नहीं है।

**प्रसज्य प्रतिषेध**- सौ प्रयत्न करने पर भी तोते के समान बक नहीं पढ़ सकता इस उदाहरण में नञ् है। उसका किसी के साथ भी समास नहीं है। यद्यपि वाक्य में नञ् कहीं पर भी लिखित है वैसे भी उसका अन्वय/सम्बन्ध हमेशा समापिका क्रिया के साथ होता है। अतः न पाठ्यते इसका अन्वय है। इस क्रिया से निषेध प्रधान है। पाठन क्रिया का अभाव मुख्य होने से विवक्षित। इन स्थलों पर प्रसज्य प्रतिषेध है। उसमें निषेध प्रधान है, नञ् का अन्वय क्रिया में है।

ध्यान दें:

नञ् समास है तो पर्युदास अर्थ अभीष्ट है। परन्तु कहीं पर समास में भी प्रसज्यप्रतिषेधार्थ नञ् दिखाई देता है। तब वह समास असमर्थ समास कहलाता है। अर्थात् असमर्थ समास नहीं करना चाहिए वैसे भी कहीं पर दिखाई देता है और अङ्गीकार करते हैं। अनचि च इस सूत्र में अनचि यहाँ समास में प्रसज्य प्रतिषेध है।

## 6.7 झलां जश् झशि॥ ( 8.4.53 )

**सूत्रार्थ** - झल् के स्थान में जश् होता है झश् के परे संहिता विषयीभूत में।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। इस सूत्र में तीन पद है। झलाम् जश् झशि ये सूत्र में उल्लिखित पदों का संधि विच्छेद है। वहां झलाम् (6/3) - षष्ठी बहुवचन। जश् (1/1) प्रथमा एकवचन। झशि (7/1) सप्तमी एकवचन। तयोर्य्वावचि संहितायाम् (8.2.108) इस सूत्रस्थ संहितायाम् इस पद का भी अधिकार है। प्राप्त पद का मिलान करने पर जो स्थिति होती है वह- संहितायाम् झलां जश् झशि। सूत्रार्थ है- झल् के स्थान में जश् होता है झश् के परे संहिता में।

**उदाहरण** - अनचि च इस सूत्र से मध् ध् व् अरिः यह स्थिति उत्पन्न है। वहां झल् प्रथम धकार है। और वह झशः द्वितीय धकार से अव्यवहितपूर्व है। अत झलां जश् झशि इस सूत्र से प्रथम धकार के स्थान में जश् होता है। एक के स्थानी जश् - ज ब ग ड द ये पांच आदेश प्राप्त है। उनमें कौन-सा आदेश हो। स्थानी संख्या आदेश संख्या से भिन्न है। अतः स्थानेऽन्तरतमः यह परिभाषा यहाँ प्रवृत्त होती है। वहां स्थानी धकार के सदृशतम आदेश है। स्थानी धकार का उच्चारण स्थान दन्त है। आदेश में जकार का उच्चारणस्थान तालु है, बकार का ओष्ठ, गकार का कण्ठ, डकार का मूर्धा, दकार का दन्त। अतः धकार से सदृशतम उनमें विधीयमान दकार एक ही प्राप्त है। अतः प्रथम धकार के स्थान में दकार करने पर म द् ध् व् अरिः यह स्थिति है। तब संयोगान्तस्य लोपः इस सूत्र से वकार का लोप प्राप्त होने पर यणः प्रतिषेधो वाच्यः इस वार्तिक से लोप का निधेष करने पर वर्णों का मेल करके लिखने पर मद्धवरिः यह रूप सिद्ध होता हैं।

अनचि च इस सूत्र से द्वित्व को विकल्प से करते हैं। जब द्वित्व होता है तब मद्धवरिः यह रूप होता है इसका उल्लेख किया है। यदि द्वित्व नहीं होता है तो द्वित्व अभाव पक्ष में म ध् व् अरिः इस स्थिति में संयोगान्तस्य लोपः इस सूत्र से वकार का लोप प्राप्त होने पर यणः प्रतिषेधो वाच्यः इस वार्तिक से लोप का निधेष करने पर वर्णों का मेल करके लिखने पर मध्वरिः यह रूप सिद्ध होता है। इस प्रकार मद्धवरिः मध्वरिः ये दो रूप निष्पन्न होते हैं।

### आन्तरतम्यपरीक्षा -

स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा का जहां प्रवृत्त होती है वहां स्थानी द्वारा सदृशतम आदेश करना चाहिए। सादृश्य स्थान अर्थ गुण प्रमाण से चार प्रकार का है। सदृशतम् आदेश का अन्वेषण करने के लिए आन्तरतम्य परीक्षा करते हैं और उस परीक्षा का यहाँ कुछ प्रदर्शन करते हैं।

**प्रमाणकृद् आन्तर्य है अथवा नहीं**- प्रमाण यहाँ उच्चारणकाल। स्थानी धकार अर्धमात्रिक, आदेश जश् ज ब ग ड द ये पांच सभी अर्धमात्रिक हैं। अतः उनमें कोई एक प्रमाण से अन्तरतम् नहीं है।

**अर्थकृद् आन्तर्यम है अथवा नहीं** - वर्णों का कोई भी अर्थ यहां ग्रहण नहीं है। समुदाय ही अर्थवान् उसका एकदेश अनर्थक यह न्याय है। अतः अर्थ से आन्तर्य का विचार नहीं करना चाहिए।

ध्यान दें:



**गुणकृदान्तर्य है अथवा नहीं** - गुण शब्द का अर्थ यहाँ बाह्ययत्न है। स्था नी धकार से आदेश में जो जिसका बाह्ययत्न समान है वह आदेश धकार द्वारा सदृशतम्। बाह्ययत्न विस्तार सहित निम्न में प्रदर्शित किये जाते हैं।

| | वर्ण | बाह्ययत्न | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| स्थानी | ध | संवार | नाद | घोष | महाप्राण |
| आदेशा | ज | संवार | नाद | घोष | अल्पप्राण |
| | ब | संवार | नाद | घोष | अल्पप्राण |
| | ग | संवार | नाद | घोष | अल्पप्राण |
| | ड | संवार | नाद | घोष | अल्पप्राण |
| | द | संवार | नाद | घोष | अल्पप्राण |

यहाँ सभी आदेशों के बाह्ययत्न समान ही हैं। परन्तु आदेशों में किसी भी वर्ण का बाह्ययत्न स्थानी धकार द्वारा समान नहीं है। अत: कोई भी एक वर्ण सदृशतम् नहीं है। अत: गुणकृत् आन्तर्य सम्भव नहीं है।

**स्थानकृद् आन्तर्य है अथवा नहीं**- स्थानी धकार का उच्चारणस्थान दन्त है। आदेशों में जकार का उच्चारणस्थान तालु, बकार का ओष्ठ, गकार का कण्ठ, डकार का मूर्धा, दकार का दन्त। अत: धकार का सदृशतम उनमें विधीयमान दकार एक ही प्राप्त है।

यहाँ एक लौकिक उदाहरण विषय का सुबोध के लिए देते हैं- जैसे राम दश मनुष्यों को कहते हैं की मेरे हाथ में पांच आम्रफल है। आपमें जिसके हाथ में मेरे फल के सदृशतम् फल है उसको मैं पुरस्कार दूँगा।

वहां प्रथम प्रसङ्ग - वहां प्रत्येक मनुष्यों के हाथ में पांच फल हैं। परन्तु किसी के पास एक आम्रफल, किसी के पास दो, किसी के पास तीन पुन: चार इति। किसी एक मन्दार के हाथ में पांच आम्रफल हैं। तब कौन सदृशतम्। तब जिसके हाथ में पांच आम्रफल है वह ही सदृशतम्। अत: पुरस्कार मन्दार के लिए देते हैं।

द्वितीय प्रसङ्ग- उनमें प्रत्येक मनुष्य के हाथ में पांच फल हैं। किन्तु सभी के हाथ में पांच बदरफल हैं। एक के भी हाथ में आम्रफल नहीं है। तब कौन सदृशतम्। तब सभी समान है। कोई एक सदृशतम् नहीं है। अत: पुरस्कार नहीं देते हैं।

अत: यदि आदेश विद्यमान होने पर सभी समान हैं तो उनमें कोई भी अन्तरतम् नहीं है।

### 6.7.1 ) रूप साधन

व्याकरण का प्रधान कार्य है प्रक्रिया द्वारा साधु शब्द का निष्पादन करना। साधु शब्द का निष्पादन करने में क्रमश: अनेक सूत्रों का प्रयोग होता है। वह प्रक्रिया ही रूप साधन है। रूप साधन अत्यन्त अल्प शब्दों द्वारा प्रकट कर सकते हैं, और अत्यधिक विस्तार से प्रदर्शित कर सकते हैं। यहाँ उदाहरण रूप से सुद्धयुपास्य: इस रूप को लघु मध्यम और विस्तृत उपाय से प्रदर्शित करते हैं।

ध्यान दें:

**प्रकार** - 1 - केवल परिणाम / **आदेश का** उल्लेख

**सुद्ध्युपास्यः** - **यकार में विकल्प** से **द्वित्व दकार करने पर** द्वित्वपक्ष में सुद्ध्युपास्यः और द्वित्व अभावपक्ष में सुध्युपास्यः यह रूप सिद्ध होता है।

**प्रकार** - 2 - **स्थानी** और आदेश का उल्लेख

**सुद्ध्युपास्यः** - **ईकार का** यकार करने पर, **धकार** का विकल्प से द्वित्व करने पर, **प्रथम धकार के स्थान में** दकार करने पर, **यकार का लोप प्राप्त होने पर,** उसका निषेध होने पर द्वित्वपक्ष में सुद्ध्युपास्यः और द्वित्वाभावपक्ष में सुध्युपास्यः यह रूप सिद्ध होता है।

**प्रकार** - 3 - स्थानी को आदेश का और **निमित्त का** उल्लेख

**सुद्ध्युपास्यः** - **उकार परे** ईकार के स्थान में यकार करने पर, **अच परे** धकार का विकल्प से द्वित्व करने पर, **धकार परे** प्रथम धकार के स्थान में दकार करने पर, **पदान्त होने से** यकार का लोप प्राप्त होने पर, उसका निषेध करने पर द्वित्वपक्ष में सुद्ध्युपास्यः और द्वित्वाभावपक्ष में सुध्युपास्यः ये रूप सिद्ध होता है।

**प्रकार** - 4 - **प्रत्याहार का** स्थानी आदेश का और निमित्त का उल्लेख

**सुद्ध्युपास्यः** - **अच्** उकार परे **इक्** ईकार के स्थान में **यण्** यकार करने पर, **अच्** उकार से परे यर धकार को विकल्प से द्वित्व होने पर, **झश्** धकार परे प्रथम धकार के स्थान में **जश्** दकार करने पर, पदान्त होने से यकार का लोप प्राप्त होने पर, उसका निषेध करने पर द्वित्वपक्ष में सुद्ध्युपास्यः, और द्वित्वाभावपक्ष में सुध्युपास्यः यह रूप सिद्ध होता है।

**प्रकार** - 5 - प्रत्याहार का स्थानी आदेश और निमित्त **सूत्र का** उल्लेख

**सुद्ध्युपास्यः** - **इको यणचि इस सूत्र से** अच् उकार परे इक् ईकार के स्थान में यण् यकार करने पर, **अनचि च इस सूत्र से** अच् उकार से परे यर् धकार को विकल्प से द्वित्व करने पर, **झलां जश् झशि इस सूत्र से** झश धकार परे झल् प्रथम धकार के स्थान में जशि दकार करने पर, **संयोगान्तस्य लोपः इस सूत्र से** पदान्त यकार का लोप प्राप्त होने पर, **यणः प्रतिषधो वाच्यः इस वार्तिक से** यलोप का निषेधे करने पर द्वित्वपक्ष में सुद्ध्युपास्यः और द्वित्वाभावपक्ष में सुध्युपास्यः रूप सिद्ध होता है।

**प्रकार** - 6 - **स्थिति** प्रत्याहार का स्थानी आदेश और निमित्त सूत्र का उल्लेख

**सुद्ध्युपास्यः** - **सुधी उपास्यः इस स्थिति में** इको यणचि इस सूत्र से अच् उकार परे इक् ईकार के स्थान में यण् यकार करने पर, **सुध् य् उपास्यः यह हुआ** अनचि च इस सूत्र से अनचि धकार परे अच् उकार से परे यर धकार को विकल्प से द्वित्व होने पर, **सु ध् ध् य् उपास्यः यह होने पर** झलां जश् झशि इस सूत्र से झश् धकार परे झल प्रथम धकार के स्थान में जश्/जश्त्व दकार करने पर, यणः प्रतिषधो वाच्यः इस वार्तिक से यलोप का निषेध करने पर **सु द् ध् य् उपास्यः ऐसे होने पर** सभी वर्णों का मिलान करने पर द्वित्वपक्ष में **सुद्ध्युपास्यः और** द्वित्वाभावपक्ष में **सुध्युपास्यः** रूप सिद्ध होता है।

**प्रकार** - 7 - स्थिति में प्रत्याहार का स्थानी आदेश निमित्त सूत्र का **परिभाषा से** उल्लेख

**सुद्ध्युपास्यः** - सुधी उपास्यः इस स्थिति में इको यणचि इस सूत्र से अच उकार परे इक ईकार के स्थान में यण करने पर **स्थानेऽन्तरतमः** इस **परिभाषा** से **स्थान आन्तर्य** से यकार करने पर, सु ध् य् उपास्यः इस स्थिति में अनचि च इस सूत्र से अनचि यकार परे अच उकार से परे यर धकार को

ध्यान दें:



विकल्प से द्वित्व करने पर, सु ध् ध् य् उपास्य: इस स्थिति में झलां जश् झशि इस सूत्र से झश धकार परे झल प्रथम धकार के स्थान में जश/जश्त्व करने पर **स्थानेऽन्तरतम: परिभाषा से स्थान आन्तर्य** दकार करने पर, **अलोऽन्त्यस्य परिभाषाबल** से संयोगान्तस्य लोप: सूत्र से यलोप प्राप्त होने पर यण: प्रतिषधे वाच्य: वार्तिक से यलोप का निषेध करने पर सु द् ध् य् उपास्य: होने पर सभी वर्णों का मिलान करने पर द्वित्वपक्ष में सुद्ध्युपास्य: और द्वित्वाभावपक्ष में सुध्युपास्य: रूप सिद्ध होता है।

## पाठगत प्रश्न-1

1. संहिता शब्द का अर्थ क्या है?
2. इको यणचि इस सूत्र का अर्थ लिखें?
3. संयोगान्तस्य लोप: इस सूत्र का अर्थ लिखें?
4. मह्यायाकार: उदाहरण में यकार का द्वित्व किस सूत्र से होता है?
5. झलां जश् झशि सूत्र में पदों की विभक्ति बताओ?
6. सुद्ध्युपास्य: इसका वैकल्पिक रूप क्या है?

## 6.8 एचोऽयवायाव:॥ ( 6.1.75 )

**सूत्रार्थ** - एच के स्थान में क्रमश: अय् अव् आय् आव् हो अच परे।

**सूत्रव्याख्या** - विधिसूत्र है। दो पद है। एच: अयवायाव: सूत्रगत पदच्छेद है। एच: (6/1)। अयवायाव: (1/3)। अय् च अव् च आय् च आव् च इति अयवायाव: इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास। इको यणचि सूत्र से अचि सप्तम्यन्त पद की अनुवृति। सूत्रार्थ- एच के स्थान में अय् अव् आय् आव् ये हो अच् परे। अर्थात् ए ओ ऐ औ ये यदि अच् के पूर्व है तो उनके स्थान में अय् अव् आय् आव् आदेश होता है। स्थानी चार आदेश भी चार हैं। अत: यथासंख्यमनुदेश: समानाम् परिभाषा से प्रथम के स्थान में प्रथम, द्वितीय के स्थान में द्वितीय क्रम से आदेश होते हैं।

**उदाहरण** - हरये विष्णवे नायक: पावक:।

एच् इसका अर्थ ए ओ ऐ औ ये चार वर्ण हैं। अत: चार उदाहरण यहाँ प्रदर्शित करते हैं। वे हरये, विष्णवे, नायक: और पावक: इति।

**सूत्रार्थ समन्वय** - हरि शब्द का चतुर्थी एकवचन में हरये। उसका रूपसाधन प्रक्रिया में हरे ए स्थिति उत्पन्न होती है। वहा रेफ से परे जो एच् एकार वह अच् के एकार से अव्यवहितपूर्व है। अत: प्रकृतसूत्र से एकार को अय् आदेश होता है। तब हरय् ए स्थिति होती है। उसके बाद वर्ण मिलान से हरये रूप सिद्ध होता है।

विष्णुशब्द का चतुर्थी एकवचन विष्णवे है। उसका रूपसाधन प्रक्रिया में विष्णो ए स्थिति है। वहां णकार से परे जो एच् ओकार वह अच् के एकार से अव्यवहितपूर्व है। अत: प्रकृतसूत्र से ओकार को अव् आदेश होता है। तब विष्णव् ए स्थिति है। वर्ण मिलान से विष्णवे रूप सिद्ध है।

नी धातु का ण्वुल् प्रत्ययोग से नायक: शब्द है। उसका रूपसाधन प्रक्रिया में नै अक यह स्थिति

ध्यान दें:

है। वहा नकार से परे जो ऐकार वह अच के अकार से अव्यवहितपूर्व है। अत: प्रकृतसूत्र से ऐकार को आय् आदेश होता है। तब नाय् अक स्थिति है। वर्ण मिलान से नायक शब्द प्राप्त है। उसका प्रथमा विभक्त्यन्त रूप है नायक:।

पू धातु का ण्वुल् प्रत्ययोग से पावक: शब्द है। उसका रूपसाधन प्रक्रिया में पौ अक स्थिति है। वहा पकार से पर जो औकार वह अच अकार से अव्यवहितपूर्व है। अत प्रकृतसूत्र से औकार को आव् आदेश होता है। तब पाव् अक स्थिति है। वर्ण मिलान से पावक शब्द प्राप्त है। उसका प्रथमाविभक्त्यन्त रूप है पावक:।

## 6.9 वान्तो यि प्रत्यये॥ ( 6.1.76 )

**सूत्रार्थ** - यकार आदि प्रत्यय परे ओ औ को अव् आव् होता है

**सूत्रव्याख्या** - विधिसूत्र है। तीन पद है। वान्त: यि प्रत्यये सूत्रगत पदच्छेद है। व: (वकार) अन्ते यस्य स वान्त: बहुव्रीहिसमास। यि (7/1), प्रत्यये (7/1)। यि प्रत्यये दोनों पद सप्तम्यन्त है। उनमे यि अल्-बोधक है। अत: तदादिविधि है। उससे अर्थ है यकारादि प्रत्यय परे। सूत्रार्थ है- यकारादि प्रत्यय परे ओ औ को अव् आव् हो।

**उदाहरण** - गव्यम् नाव्यम् इति।

**सूत्रार्थसमन्वय** - गोशब्द से यत् प्रत्यय है। तब गो य स्थिति है। गकार से परे जो ओकार है, वह यकारादि-यत्-प्रत्यय से अव्यवहितपूर्व है। अत: प्रकृतसूत्र से ओकार के स्थान में अव् आदेश है। तब गव् य है। वर्ण मिलान से गव्य शब्द: बनता है। उसका प्रथमा एकवचन गव्यम् है। गो विकार अर्थ है, अर्थात् दुग्ध दही इत्यादि गव्यम् है।

नौ शब्द से श्यत्श्प्रत्यय है। तब नौ य स्थिति है। नकार से पर जो औकार है, वह यकारादि-यत्-प्रत्यय से अव्यवहितपूर्व है। अत: प्रकृतसूत्र से औकार के स्थान में आव् आदेश है। तब नाव् य स्थिति है। वर्ण मिलान से नाव्य शब्द प्राप्त है। उसका प्रथमा एकवचन नाव्यम् है। नावा तार्यम् अर्थ है, अर्थात् नौका से पार जाने योग्य जलादि नाव्यम् है।

### 6.9.1 ) अध्वपरिमाणे च। ( वार्तिकम् )

यह वार्तिक है। पाणिनी जी ने जो नहीं कहा उसका चिंतन इसमें है। अत: यह जो नहीं कहा है उसकी चिन्ता करता है। वार्तिका अर्थ- गोशब्द के ओकार के स्थान में अव् आदेश होता है यूति परे यदि अध्व परिमाण का बोध कराता है तो।

**उदाहरण** - गव्यूति:।

**वार्तिकार्थसमन्वय** - गोशब्द से यूतिशब्द परे गो यूति स्थिति है। वहा गकार से पर जो ओकार है उसके स्थान में अव् आदेश है। तब गव् यूति स्थिति है। वर्ण मिलान से गव्यूति शब्द प्राप्त है। उसका प्रथमा एकवचन गव्यूति:। यहाँ कहा अव्-आदेश तब ही होता है जब गव्यूतिशब्द मार्ग के परिमाण अर्थ में प्रयोग होता है। यह स्त्रीलिङ्ग शब्द, दो क्रोश परिमाण इसका अर्थ है।

ध्यान दें:



## पाठगत प्रश्न-2

7. एचोऽयवायावः इस सूत्र का अर्थ लिखें?

8. वान्तो यि प्रत्यये इस सूत्र में तदादिविधि को प्रदर्शित कीजिए?

9. गव्यूतिः यहाँ पर अवादेश किससे है?

10. एचोऽयवायावः इस सूत्र में यथासंख्य परिभाषा का ज्ञान कैसे होता है?

11. जनावस्ति इस संधि में किसके स्थान में आदेश?

1) पूर्व का 2) पर का 3) पूर्व पर दोनों का 4) पर रूप को

12. अधोलिखित कौन-सा उदाहरण किस सूत्र का है युक्त तालिका चुनो?

| | |
|---|---|
| (क) सुद्ध्युपास्यः | (i) वान्तो यि प्रत्यये। |
| (ख) सुध्युपास्यः | (ii) एचोऽयवायावः |
| (ग) हरये | (iii) झलां जश् झशि। |
| (घ) नाव्यम् | (iv) इको यणचि। |

| | (क) | (ख) | (ग) | (घ) |
|---|---|---|---|---|
| 1) | (iii) | (iv) | (i) | (ii) |
| 2) | (iv) | (iii) | (ii) | (i) |
| 3) | (iii) | (iv) | (ii) | (i) |
| 4) | (iv) | (i) | (iii) | (ii) |

## पाठ सार

जिन दो वर्ण की संहिता है, अर्थात् जिन दो के मध्य में अर्धमात्रा से अधिककाल का व्यवधान नहीं है, उनको संहिताधिकार में स्थित सूत्रों से विभिन्न आदेश होते हैं। जिनकी संहिता उनमें एक पूर्व वर्ण और अपर परवर्ण है। इस पाठ में पूर्व के स्थान में आदेश का विधान है।

इक् से परे असवर्ण अच् यदि है तो इको यणचि इस सूत्र से इक् के स्थान में यण् का विधान है। इक् यहाँ अविधीयमान है। अतः अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः इस सूत्र से वह दीर्घ आदि का ग्रहण करता है। उससे दीर्घ इक् के स्थान में भी यण् आदेश होता है।

मधु अरिः इस उदाहरण में इक् उकार के स्थान में यण् वकार है। तब मध् व् अरिः स्थिति है। अनचि च इस सूत्र से धकार को विकल्प से द्वित्व होता है। द्वित्वपक्ष में मध् ध् व् अरिः स्थिति है पूर्वधकार को झलां जश् झशि सूत्र से जश् दकार होता है। तब मद् ध् व् अरिः स्थिति है। वकार संयोगान्त पद के अन्त में है। अतः संयोगान्तस्य लोपः सूत्र से उसका लोप प्राप्त होने पर यणः प्रतिषेधो वाच्यः

ध्यान दें:

वार्तिक से वलोप का निषेध होता है। मद्ध्वरि: रूप सिद्ध होता है। द्वित्व अभावपक्ष में मध्वरि: साधु रूप निष्पन्न होता है। यहाँ भी वलोप का निषेध है।

अच् से परे रेफ हकार परे यर को दो विकल्प से होता है अचो रहाभ्यां द्वे सूत्र से। मह्य्याकार: वहां उदाहरण है। वहां भी हल के परे यम का लोप विकल्प से होता है यम के परे रहते। उससे पूर्वयकार का यम् यकार के परे विकल्प से लोप होने पर मह्याकार: एक यकार युक्त रूप होता है।

एच् के परे यदि अच् हो तो एकार के स्थान में अय् ओकार के स्थान में अव् ऐकार के स्थान में आय् और औकार के स्थान में आव् आदेश होता है एचोऽयवायाव: सूत्र का सरलार्थ है। इनमें वान्त अव् आव् दो है। यदि यकारादि प्रत्यय परे हो तो वान्त आदेश होता है वान्तो यि प्रत्यये सूत्र का अर्थ है। गव्यम् नाव्यम् इत्यादि उदाहरण।

## योग्यतावर्धन

सूत्र व्याख्या यह व्याकरण का मुख्य विषय है। व्याकरण अध्यनकाल में सूत्र व्याख्यान के बिना एक पद भी आगे विद्वान नहीं जाते। जो ग्रन्थ साधुरूप का निर्माण करने के लिए आयोजित है वह प्रक्रिया ग्रन्थ ही होता है। हमारा यह पाठ्य ग्रन्थ भी प्रक्रिया ग्रन्थ ही है। प्रक्रिया ग्रन्थ में सूत्रों का व्याख्यान आवश्यक है।

सूत्र व्याख्यान परीक्षा में भी परीक्षकों का रुचि विषय है। अत: व्याख्यान नाम क्या। व्याख्यान के कितने अंग है। उसे कैसे करना चाहिए और उसका विशिष्टक्रम से उपस्थित कैसे यह छात्रहित के लिए प्रदर्शित करते हैं। वहां यह श्लोक मुख्य है-

**पदच्छेद: पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्य योजना।**

**आक्षेपोऽथ समाधानं व्याख्यानं षड्विधं स्मृतम्॥**

1) पदच्छेद, 2) पदोर्थोक्ति, 3) विग्रह, 4) वाक्य योजना, 5) आक्षेप, 6) समाधान

इन सभी का अवलम्ब करके एक सूत्र की व्याख्या की है। उसका अध्ययन करके छात्रों द्वारा अन्य सूत्रों का व्याख्यान स्वयं यत्न से करने में सफल होंगे।

**सूत्रम् - इको यणचि।**

बालकों के सुख के लिए पाणिनीयप्रवेशाय रचित हमारे इस पाठ्यग्रन्थ में अच्सन्धिप्रकरण में यह सूत्र है।

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।

अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रमुच्यते।। षड्विध पाणिनीयसूत्रों में यह साक्षात् लक्ष्यसंस्कार अनुरोध होने से विधिसूत्र है।

इस सूत्र में तीन पद हैं। इक: यण् अचि पदच्छेद है। वहां इक: षष्ठी एकवचनान्त पद है। यण् प्रथमा एकवचनान्त पद है। अचि सप्तम्यन्त पद है। **संहितायाम्** इसका अधिकार है। संहिता में इक को अच परे यण् वाक्य योजना।

# पाठ-6

## अच् सन्धि में यण्-अयवायावादिसन्धि

ध्यान दें:

**इकः** यहाँ पर इक् **आदिरन्त्येन सहिंता** इस सूत्र से निर्मित प्रत्याहार है। और वह कृत्रिम संज्ञा। इक् प्रत्याहार में इ उ ऋ ऌ ये चार वर्णसमाम्नायिक वर्ण है।

**इकः** षष्ठी। उसका अर्थ सम्बन्ध है। सम्बन्ध का अनुयोगी नहीं है। इसलिए वह **षष्ठी स्थानेयोगा** परिभाषा से स्थान षष्ठी है। उससे स्थाने पद प्राप्त होता है और स्थान प्रसङ्ग है। यहाँ इक् अविधीयमान होता है। **अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः** सूत्र से इक् सवर्ण का ग्राहक होता है। उससे ईकारादि दीर्घ के स्थान में भी कार्य सम्भव है।

**अचि** अच् प्रत्याहार, और वह संज्ञा, उसके संज्ञि अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ नव वर्णसमाम्नायिक स्वर हैं।

**तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** परिभाषा से अच का अर्थ होता है जो अच् का अव्यवहितपूर्व है। इस प्रकार अच् अविधीयमान है। अतः **अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः** सूत्र से सवर्ण का ग्राहक होता है। उससे दीर्घ आकारादि के परे भी कार्य सम्भव है।

**यण्** प्रत्याहार है और वह संज्ञा, उसके संज्ञि य्, व्, र्, ल् ये चार वर्णसमाम्नायिक वर्ण हैं। यण् प्रथमान्त है। अतः विधीयमान अथवा भाव्यमान है। **भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं न** परिभाषा से यण् सवर्ण का ग्रहण नहीं कराता।

इस प्रकार संहिता विषय होने पर इक् के स्थान में यण् होता है, अच् के परे यह अर्थ है।

सुधी उपास्यः यहाँ उदारहण। और वह समास है। समास में सान्निध्य की अनिवार्यत्व होने से दो पद के मध्य में केवल अर्धमात्राकालिक व्यवधान है। अतः संहिता का यहाँ विषय है। इस प्रकार यहाँ ईकार स्थानी और वह अच का अव्यवहितपूर्व है। अतः उसके स्थान में यण् अर्थात् य् व् र् ल् ये चार आदेश प्राप्त है। स्थानी आदेश की संख्या वैषम्य होने से स्थानेऽन्तरतमः सूत्र से स्थान अर्थ गुण प्रमाण कृत् चार प्रकार के आन्तर्य में स्थान आन्तर्य से ईकार के स्थान में यकार ही होता है। इस प्रक्रिया से सुद्धयुपास्यः रूप सिद्ध होता है।

### पाठान्त प्रश्न

नीचे कुछ प्रश्न देते हैं। उनका उत्तर प्रमुख्य से दीर्घ ही है। सूत्र व्याख्यान और रूप साधन दो होते हैं व्याकरण प्रश्न का मुख्य प्रकार है। अच्सन्धि प्रकरण में योग्यतावर्धनांश में एक सूत्र का व्याख्यान सविस्तार प्रदर्शित है। उसको देखकर और समझकर इन सूत्रों की भी व्याख्यान करना चाहिए।

झलां जश् झशि सूत्र में रूपसाधन कैसे करना चाहिए रूपसाधन के अनेक प्रकारों का सविस्तार प्रदर्शित है। अतः उस स्थल को देखकर और समझकर अन्य रूप साधन में प्रयास करना चाहिए। प्रथम लघु रूप साधनीय है। उसके बाद क्रमशः विस्तार करना चाहिए।

1. संहितैकपदे नित्या कारिका की व्याख्या कीजिए।
2. इको यणचि सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. संयोगान्तस्य लोपः सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. अनचि च सूत्र की व्याख्या कीजिए।

5. एचोऽयवायावः सूत्र की व्याख्या कीजिए।

6. प्रसज्यप्रतिषेध-पर्युदासप्रतिषेध पर लघुटिप्पणी लिखिए।

7. यहाँ नीचे प्रारम्भस्थिति देते हैं और जिस रूप को सिद्ध करना है उसे भी देते हैं प्रदत्त रूप को सूत्र सहित सिद्ध कीजिए।

7.1) घसल् आदेश - घस्लादेशः,

7.2) मातृ आज्ञा - मात्राज्ञा, मात्राज्ञा

7.3) यदि अपि - यद्यपि

7.4) पितृ उपदेशः - पित्रुपदेशः, पित्रुपदेशः

7.5) शशी उदयः - शश्युदयः

7.6) साधु इच्छा - साध्विच्छा, साद्धिवच्छा

7.7) अभि उदयः - अभ्युदयः, अब्भ्युदयः

7.8) उभौ अपि - उभावपि

7.9) असौ अत्र - असावत्र

7.10) प्रभो ईहा - प्रभवीहा

## पाठगत प्रश्नोत्तर

**उत्तर भाग -1**

1. अर्धमात्रा अधिककाल व्यवधान अभावत्मक समीपता ही संहिता।

2. इक के स्थान में यण् हो अच परे संहिता विषय में।

3. संयोगान्त जो पद उसके अंतिम अल का लोप होता है।

4. अचो रहाभ्यां द्वे।

5. सुध्युपास्यः।

6. झलाम् षष्ठी बहुवचन। जश् प्रथमा एकवचन। झशि सप्तमी एकवचन।

**उत्तर भाग-2**

7. एच के स्थान में क्रम से अय् अव् आय् आव् हो अच परे।

8. वान्तो यि प्रत्यये इस सूत्र में यि प्रत्यये दोनों पद सप्तम्यन्त है। उनमे यि अल्-बोधक है। अतः वहा तदादिविधि है। उससे अर्थ प्राप्त होता है यकारादि प्रत्यय परे।

9. गव्यूतिः यहाँ अवादेश और अध्वपरिमाणे च इस वार्तिक से।

ध्यान दें:

ध्यान दें:



10. एचोऽयवायावः सूत्र में यथासंख्य परिभाषा का ज्ञान हि स्थानी ए ओ ऐ औ ये एच चार है। आदेश अय् अव् आय् आव् ये भी अयवायाव चार हैं। स्थानी संख्या और आदेश संख्या समान है यथासंख्यपरिभाषा का ज्ञान है।

11. पूर्व का।

12. 3)

7

# अच् सन्धि में एकादेश और प्रकृतिभाव

ध्यान दें:

पाणिनीय सूत्र ही लक्षण कहलाते हैं। वह लक्षण जिस शब्द स्वरूप का संस्कार करता है वह शब्द स्वरूप उसका लक्ष्य कहलाता है। अत: व्याकरण के छात्र द्वारा लक्षण और लक्ष्य को अच्छी प्रकार से जानना चाहिए। लक्षण का अर्थ जानने वाला ही लक्ष्य का संस्कार करने में समर्थ होता है। अत: लक्षण उसका अर्थ और लक्ष्य इन तीनों को जानना चाहिए। यह ही व्याकरणाध्ययन का पन्थ है। वही व्याकरण है जो लक्षण को जानता है, अर्थ को जानता है, और लक्ष्य को जानता है, और लक्षण से लक्ष्य का संस्कार करता है, और इस प्रकार संस्कृत पदों का व्यवहार करता है।

संहिता विषय होने पर भी पूर्व पर को पूर्व के स्थान में आदेश होता है पूर्व पाठ में व्याख्या की है।

एक: पूर्वपरयो: यह अधिकार सूत्र यहाँ मुख्य है। वर्णों की संहिता उनमे एक पूर्ववर्ण अपर परवर्ण है। इस पाठ में पूर्वपर दोनों के स्थान में एक ही आदेश का विधान करते हैं। यह इस पाठ का मुख्य विषय है।

कहीं पर यद्यपि हम चिन्तन करते हैं की यहाँ सन्धि परिणाम हो परन्तु नहीं होता है। उस प्रकार के स्थल भी है। वहां प्रकृति भाव कहलाता है। अर्थात् यद्यपि वर्णों में इ समीपता आने पर भी वैसा परिणाम नहीं होता है। उनका प्रकृति स्वभाव स्वरूप वैसा ही रहता है। यह ही प्रकृतिभाव है।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- अधिकार सूत्र कैसे अन्य सूत्रों में कार्य करता है जान पाने में;
- कब पूर्व पर को एकादेश होता है जान पाने में;
- सूत्रों का व्याख्यान करने में समर्थ हैं जान पाने में;
- प्रदत्त संधि के उदाहरण का सूत्र सहित साधन करने में;
- सिद्धकाण्ड असिद्धकाण्ड पाणिनी के कौशल को जान पाने में;

# पाठ-7

## अच् सन्धि में एकादेश और प्रकृतिभाव

**ध्यान दें:**

- गुण: वृद्धि: पररूपम् पूर्वरूपम् सवर्णदीर्घ: प्रकृतिभाव: इन संधियों का ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- इस पाठ के सही ज्ञान से आगे के पाठ में इसके प्रवृत्ति स्थल को समझकर उनका संस्कार करने में समर्थ होंगे।

## 7.1 एक: पूर्वपरयो:॥ ( 6.1.81 )

**सूत्रार्थ** - इस अधिकार में विधीयमान आदेश पूर्व पर के स्थान में एक ही होता है।

**सूत्र व्याख्या** - अधिकार सूत्र है। दो पद है। एक: (1/1), पूर्वपरयो: (6/2) पूर्वश्च परश्च इति पूर्वपरौ इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास। तयो: पूर्वपरयो: षष्ठी द्विवचन है। यहाँ से आरम्भ करके ख्यत्यात् परस्य (6.1.112) सूत्र से पहले यह अधिकार है। जिन वर्णों की संहिता उनमें एक पूर्व वर्ण और अपर पर वर्ण होता है। इस अधिकार में विधीयमान आदेश पूर्व पर के स्थान में एक ही करना चाहिए। इस अधिकार में पूर्व पर दोनों स्थान में एक आदेश होता है। इसके उदाहरण आगे आद् गुण: इत्यादि में यथा स्थान स्पष्ट होंगे।

## 7.2 आद् गुण:॥ ( 6.1.84 )

**सूत्रार्थ** - अवर्ण से अच् परे पूर्व पर के स्थान में एक गुण आदेश होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। आद् गुण: दो पद है। आद् (5/1), तपरकरण नहीं है। सभी प्रकार के अकार का ग्रहण कराता है। गुण: (1/1), अदेङ्गुण: संज्ञाकरण से अ (ह्रस्व), ए, ओ ये स्वर गुणपद वाच्य है। एक: पूर्वपरयो: (6.1.81) यह अधिकार है। पूर्व और पर इन दोनों के स्थान में एक ही आदेश होता है। इको यणचि सूत्र से अचि (7/1) अनुवृति है। अवर्ण से अच् परे पूर्व पर के स्थान में एक गुण आदेश होता है सूत्रार्थ है। अवर्ण से अच परे पूर्व पर के अवर्ण अचो के स्थान में एक गुणादेश होता है। यह गुणादेश असवर्ण अच् परे होने पर होता है ऐसा जानना चाहिए।

**उदाहरण** - उपेन्द्र:। गङ्गोदकम्। कृष्णर्द्धि:। तवल्कार:।

**सूत्रार्थ समन्वय** - उप इन्द्र: स्थिति में पकार से पर जो अकार है, उससे पर अच् इन्द्र शब्द का इकार है, इस प्रकार वह अकार इन्द्र शब्द के इकार से अव्यवहितपूर्व है। अत: प्रकृतसूत्र से अकार-इकार के स्थान में एक गुणनामक आदेश प्राप्त होता है। अदेङ् गुण: सूत्र संज्ञाप्रकरण में पढ़ा गया है। अ ए ओ इनका नाम गुण है। वहा अ+इ इन दोनों के स्थान में तीनों में से कौन-सा हो। वहां स्थानी आदेश की संख्या वैषम्य है। अत: स्थानेऽन्तरतम: इस परिभाषा से स्थानकृत आन्तर्य यहाँ जानना चाहिए। जैसे - अ+इ यहाँ पर अकार का उच्चारण स्थान कण्ठ, और इकार का तालु। आदेशों में अकार का उच्चारण स्थान कण्ठ, एकार का कण्ठतालु, ओकार का कण्ठ ओष्ठ है। यहाँ यह स्पष्ट होना चाहिए की अकार-इकार के स्थान में कण्ठ और तालु, एकार का भी स्थान कण्ठतालु है। अत: अ+इ स्थानी के साथ आदेश का ए इसका स्थान से आन्तर्य है। अत एकार ही आदेश होता है। तब उपेन्द्र शब्द निष्पन्न होता है।

गङ्गाया: उदकम् विग्रह है। समास करने पर गङ्गा उदकम् यह स्थिति है। गङ्गा उदकम् स्थिति में गकार से परे जो आकार है, उससे परे अच् उदकशब्द का उकार है, इस प्रकार वह आकार उदक शब्द के उकार से अव्यवहितपूर्व है। प्रकृत सूत्र से आकार-उकार के स्थान में एक गुणनामक आदेश प्राप्त होता है। वहां आ+उ इन दोनों के स्थान में अ ए ओ इन तीन में से गुण नामक में कैसे हो। वहा स्थानी आदेश की संख्या वैषम्य है। अत: स्थानेऽन्तरतम: परिभाषा का स्थानकृत आन्तर्य यहाँ जानना चाहिए। जैसे - आ+उ यहाँ पर आकार का उच्चारणस्थान कण्ठ, और उकार का ओष्ठौ। आदेश में अकार का

ध्यान दें:

उच्चारणस्थान कण्ठ, एकार का कण्ठतालु, ओकार का कण्ठोष्ठ है। यहाँ यह स्पष्ट है की आकार-उकार के स्थान में कण्ठ और औष्ठ है, ओकार का भी स्थान कण्ठोष्ठ है। अत: आ+उ स्थानी के साथ आदेश ओकार का स्थान से आन्तर्य है। अत ओकार ही आदेश होता है। तब गङ्गोदकम् शब्द निष्पन्न होता है।

कृष्णस्य ऋद्धि: विग्रह है। समास करने पर कृष्ण ऋद्धि: स्थिति होती है। कृष्ण ऋद्धि: स्थिति में णकार से परे जो अकार है, उससे परे अच् ऋद्धिशब्द का ऋकार है, इस प्रकार वह अकार ऋद्धिशब्द के ऋकार से अव्यवहितपूर्व है। प्रकृतसूत्र से अकार-ऋकार के स्थान में एक गुणनामक आदेश करना चाहिए। अ+ऋ इनके स्थान में अ ए ओ इन तीनो में गुणनामक कैसे हो। वहा स्थानी आदेश की संख्या वैषम्य है। अत: स्थानेऽन्तरतम: इस परिभाषा से स्थानकृत आन्तर्य यहाँ जानना चाहिए। जैसे - अ+ऋ यहाँ अकार का उच्चारणस्थान कण्ठ, ऋकार का मूर्धा। आदेश में अकार का उच्चारणस्थान कण्ठ, एकार का कण्ठतालु, ओकार कण्ठोष्ठ। यहाँ यह स्पष्ट है की अकार-ऋकार का स्थान कण्ठ और मूर्धा है परन्तु आदेश में किसी का भी उच्चारणस्थान कण्ठ और मूर्धा दोनों ही नहीं है। अत: आन्तरतम् अभाव है। तब आदेश क्या हो। तब-

## 7.3 उरण् रपर:॥ ( 1.1.50 )

**सूत्रार्थ** - ऋकार के स्थान में विधीयमान अण् रपर सहित होता है।

**सूत्रव्याख्या** - परिभाषासूत्र है। तीन पद है। उ: अण् रपर: सूत्रगत पदच्छेद है। उ: ऋवर्ण का षष्ठी एकवचन है। अत: उ: इसका ऋवर्ण और ष्वर्ण यह अर्थ है। अण् (1/1), रपर: (1/1)। यहाँ अण् पूर्व णकार के साथ है। र: परो यस्माद् असौ रपर: बहुव्रीहि समास। यहाँ रँ प्रत्याहार है। माहेश्वर सूत्र में लण् सूत्र में लकार से परे जो अकार वह अनुनासिक है, पाणिनि परम्परा से मानते। उस अकार के साथ रेफ का योग होने से र यह प्रत्याहार निष्पन्न होता है। उसका अर्थ है र् ल् वर्ण। षष्ठी स्थानेयोगा सूत्र से स्थाने पद की अनुवृति है। स्थानेऽन्तरतम: सूत्र से भी स्थाने पद की अनुवृति है और उसका प्रथमान्त से विपरिणाम होता है। सूत्रार्थ- ऋकार के स्थान में अण् प्रसङ्ग में वह अण् रपर सहित प्रवृत होता है। अर्थात् यदि ऋवर्ण के स्थान में अ इ उ इत्यादि में कोई भी हो तो उस प्रयोग से पूर्व उनके साथ र् को जोड़ना चाहिए। यदि ऌ वर्ण के स्थान में अ इ उ कोई भी हो तो तब प्रयोग से पूर्व उनके साथ ल् को जोड़ना चाहिए।

### यहाँ यह सार-

अ+ऋ इन दोनों के स्थान में गुण करने से हमेशा अर् होता है। अ+ऌ इनके स्थान में गुण करने से हमेशा अल् होता है। अ+ऋ इनके स्थान में वृद्धि: करने से हमेशा आर् होता है। अ+ऌ इनके स्थान में वृद्धि करने पर हमेशा आल् होता है। ऋकार को गुणवृद्धी अर् आर ही होता है भाष्य वाक्य।

**उदाहरण** - कृष्ण ऋद्धि: इस स्थिति में अकार-ऋकार के स्थान में आद् गुण: सूत्र से अ ए ओ गुण हुआ। प्रकृत सूत्र से रपरत्व करने पर अर् ए ओ ये तीनों आदेश प्राप्त हुए। इनमें अर् इसका उच्चारण स्थान कण्ठ और मूर्धा है। अत: अ+ऋ स्थानी के साथ अर् इसका ही स्थान कृत आन्तर्य है। अत: अर् ही आदेश होता है। उससे कृष्ण् अर् द्धि: स्थिति में वर्ण सम्मेलन करने से कृष्णर्द्धि: परिनिष्ठित रूप प्राप्त होता है।

तव ऌकार: वाक्य है। दोनों पद में अर्धमात्राकाल समीपता विवक्षित होने से संहिता है। तब तव ऌकार: स्थिति है। वकार से पर जो अकार, उससे पर अच् ऌकार शब्द का ऌ वर्ण है, इस प्रकार वह अकार ऌकार से अव्यवहितपूर्व है। आद् गुण: इस सूत्र से अकार-ऌकार के स्थान में एक गुणनामक

ध्यान दें:



आदेश करना चाहिए। अ+ऌ इन दोनों के स्थान में अ ए ओ ये तीन गुणनाम कैसे हो। वहां स्थानी आदेश की संख्यावैषम्य है। अतः स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से स्थानकृत आन्तर्य यहाँ जानना चाहिए। अ+ऌ यहाँ पर अकार का उच्चारणस्थान कण्ठ और ऌकार का दन्त है। अकार-ऌकार के स्थाने में प्रसक्त गुण उरण् रपरः सूत्र से अल् ए ओ हो। इनमें अल् इसका उच्चारण स्थान कण्ठ और दन्त है। अतः अ+ऌ स्थानी के साथ अल् इसका ही स्थानकृत आन्तर्य है। अतः अल् ही होता है। उससे तव् अल् कारः स्थिति में वर्ण मिलान करने से तवल्कारः परिनिष्ठित रूप प्राप्त होता है।

## पाठगत प्रश्न-1

1. एकः पूर्वपरयोः किस प्रकार का सूत्र है और क्या अर्थ है?
2. गङ्गोदकम् यहाँ पर ओकार किस सूत्र से?
3. आद् गुणः इस सूत्र का अर्थ लिखो?
4. उरण् रपरः इस सूत्र में अण् किस णकार से?
5. ऋकार के स्थान में इकार होता है तो वस्तुतः क्या आदेश होता है और किस सूत्र से?
6. आद् गुणः इसका उदाहरण क्या है?

   1) गव्यम्  2) नाव्यम्  3) विष्णवे  4) उपेक्षा

7. उरण् रपरः इसका उदाहरण क्या है।

   1) कृष्णर्द्धिः  2) गवेन्द्रः  3) नरेन्द्रः  4) शचीन्द्रः

## 7.4 वृद्धिरेचि॥ ( 6.1.85 )

**सूत्रार्थ** - अवर्ण से एच परे पूर्व पर के स्थान में एक वृद्धि आदेश होती है।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र। दो पद है। वृद्धिः एचि सूत्रगत पदच्छेद है। वृद्धिः (1/1), एचि (7/1)। आद् गुणः सूत्र से आद् पञ्चमी एकवचनान्त पद की अनुवृति। एकः पूर्वपरयोः (6.1.81) अधिकार है। पूर्व और पर दोनों के स्थान में एक ही आदेश होता है। अवर्ण से एच परे पूर्व पर के स्थान में एक वृद्धि आदेश होता है सूत्रार्थ। अर्थात् यदि अवर्ण (ह्रस्व अथवा दीर्घ) एच (ए ओ ऐ औ) के अव्यवहित पूर्व हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि (आ ऐ औ) एकादेश होती है। अवर्ण से एच् परे पूर्व पर के अवर्ण-एच् स्थान में एक वृद्धि आदेश होता है।

**अपवाद** - आद् गुणः सूत्र से अवर्ण से अच परे गुण का विधान है। वृद्धिरेचि सूत्र से अवर्ण से एच् परे वृद्धि का विधान है। अवर्ण से एच् परे ये दोनों सूत्र कार्य के लिए प्रवृत्त होते हैं। तब किस सूत्र से कार्य करना चाहिए। यदि सभी जगह आद् गुणः सूत्र को प्रवृत्त करते हैं तो वृद्धिरेचि सूत्र का प्रवृत्त अर्थ क्षेत्र अर्थात् कोई भी लक्ष्य शेष नहीं रहता है। तब वृद्धिरेचि सूत्र व्यर्थ हो जायेगा। परन्तु भगवान पाणिनी का कोई वचन व्यर्थ नहीं है। अतः वृद्धिरेचि सूत्र का जितना लक्ष्य है वह सभी उसका ही हो। उसके लक्ष्य में आद् गुणः कार्य नहीं करेगा। गुण का जितना लक्ष्य देखा उतना वस्तुत नहीं है। उसमें लघुता आ गई। यह लक्ष्यसंकोच अर्थात् लक्ष्य में प्रवृत्तिबाध वृद्धिरेचि सूत्र से किया है। अतः वृद्धिरेचि सूत्र गुण का अपवाद है। गुण अवश्य प्राप्त था। फिर भी वृद्धिरेचि सूत्र को आरम्भ किया। अतः वह बाधक ही होता है। गुण उत्सर्गविधि होता है, वृद्धि अपवाद होता है।

ध्यान दें:

**उदाहरण** - कृष्णैकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

**सूत्रार्थ समन्वय** - कृष्णस्य एकत्वम् विग्रह। समास करने पर कृष्ण एकत्वम् स्थिति है। णकार से उत्तरवर्ती जो अकार, उससे पर एच् एकत्वशब्द का ए वर्ण है, इस प्रकार वह अकार एकार से अव्यवहित पूर्व है। अतः अ+ए यहाँ अवर्ण से एच् स्थिति है। तब अ+ए पूर्व पर दोनों के स्थान में प्रकृत सूत्र से (आ ऐ औ इनमें से) वृद्धि एकादेश प्राप्त होता है। इनमें से कौन-सा हो। वहां स्थानी आदेश की संख्या वैषम्य है। अतः स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से स्थानकृत आन्तर्य यहाँ देखना चाहिए। जैसे- स्थानी अकार का उच्चारणस्थान कण्ठ, और एकार का कण्ठतालु है। आदेश में केवल ऐकार का ही उच्चारण स्थान कण्ठ तालु है। अतः अ+ए स्थानी के साथ आन्तरतम्य ऐकार ही होता है। तब अ+ए इनके स्थान में अन्तरतम ऐकार होता है। तब कृष्ण् ऐ कत्वम् स्थिति होती है। वर्ण मिलान करने से कृष्णैकत्वम् रूप सिद्ध होता है।

गङ्गायाः ओघः विग्रह। समास करने पर गङ्गा ओघः स्थिति है। वहा आ+ओ इन दोनों के स्थान में स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा बल से कण्ठोष्ठ स्थान जन्यत्व धर्म से अन्तरतम औकार होता है। तब गङ्गौघः रूप सिद्ध होता है। गङ्गाप्रवाह उस शब्द का अर्थ है।

देवस्य ऐश्वर्यम् विग्रह। समास करने पर देव ऐश्वर्यम् स्थिति होती है। वहा अ+ऐ दोनों के स्थान में स्थानेऽन्तरतमः परिभाषाबल से कण्ठतालु स्थानजन्यत्व धर्म से अन्तरतम ऐकार होता है। तब देवश्वैर्यम् रूप सिद्ध होता है।

कृष्णस्य औत्कण्ठ्यम् विग्रह। समास करने पर कृष्ण औत्कण्ठ्यम् स्थिति है। वहा अ+औ के स्थान में स्थानेऽन्तरतमः परिभाषाबल से कण्ठोष्ठस्थान जन्यत्वधर्म से अन्तरतम औकार होता है। तब कृष्णौत्कण्ठ्यम् रूप सिद्ध होता है। कृष्णसम्बन्धि जिज्ञासा अर्थ है।

अच्सन्धिप्रकरण में किस सूत्र का वस्तुत कितना कार्य क्षेत्र है, कितना लक्ष्य नीचे सारणी में देखने से स्पष्ट होगा।

| पूर्व | पर | आदेश | किस प्रकार | सूत्र |
|---|---|---|---|---|
| अ | इक् | गुण | पूर्वपर को एकादेश | आद् गुणः |
| अ | एच् | वृद्धि | पूर्वपर को एकादेश | वृद्धिरेचि |
| इक् | अच् असवर्ण | यण् | पूर्व के स्थान में आदेश | इको यणचि |
| एच् | अच् | अय् अव् आय् आव् | पूर्व के स्थान में आदेश | एचोऽयवायावः |

## 7.5 एत्येधत्यूठ्सु॥ ( 6.1.86 )

**सूत्रार्थ** - अवर्ण से एजादि एति एधति और ऊठ के परे पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।

**सूत्रव्याख्या** - विधिसूत्र है। एत्येधत्यूठ्सु एक ही पद सूत्र में है। और वह सप्तमी बहुवचनान्त है। एतिः च एधतिः च ऊठ् च इति एत्येधत्यूठः इतरेतर योग द्वन्द्व तेषु एत्येधत्यूठ्सु इति। प्रथम पाठ में ही उल्लेख किया है कि धातु निर्देश के लिए इक् अथवा शितप् का व्यवहार करते हैं। यहाँ इण् गतौ, एध वृद्धौ धातु हैं। उनका शितप्-प्रत्ययोग से एतिः एधतिः शब्द निष्पन्न होते हैं। आद् गुणः सूत्र से आत्

ध्यान दें:



पञ्चम्यन्त पद की अनुवृति है। वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि: एचि दो पद की अनुवृति है। एक: पूर्वपरयो: का अधिकार है। पूर्व और पर दोनों के स्थान में एक ही आदेश होता है। पद योजना - आद् एचि एत्येधत्यूठ्सु वृद्धि: एक: पूर्वपरयो: इति।

**तदादिविधि** - यहाँ तदादिविधि कैसे होती है उस विषय में थोड़ा प्रकाश डालते हैं। येन विधि स्तदन्तस्य सूत्र व्याख्या के समय तदाविधि का वर्णन किया है। उसका ही ये प्रयोग स्थल है। एचि एत्येधत्यूठ्सु दोनों पद सप्तमी में है। उनका एचि पद से लक्ष्य में एक बार केवल एक ही अल् प्राप्त होता है। अत: एच अल्बोधक पद है। ऐसा होने पर तदादिविधि है। अर्थ है - एजादि एति और एधति। यहाँ एच् केवल इण्-धातु और एध धातु का ही विशेषण है ऊठ् इसका नहीं है, क्योंकि ऊठ् कभी भी एजादि नहीं होता है।

सूत्रार्थ होता है - अवर्ण एजादि एति एधति और ऊठ के परे पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है। अर्थात् अवर्ण से पर एजादि अर्थात् जिसका आदि वर्ण एच्-प्रत्याहारस्थ है, उस प्रकार की इण् धातु अथवा एध् धातु हो अथवा ऊठ् हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।

**सूत्रावतरण** - उप एति उप एधते यहाँ पर वृद्धिरेचि सूत्र से ही वृद्धि सम्भव होने पर इस सूत्र की रचना क्यों की यह प्रश्न आता है। वहां उत्तर है - एङि पररूपम् आगे सूत्र है। उसका अर्थ है - अवर्णान्त उपसर्ग से एङ आदि धातु से परे पूर्व पर के स्थान में पर रूप एकादेश होता है। अत उप एति, उप एधते यहाँ पर एङि पररूपम् सूत्र से पर रूप प्राप्त है। उसका अपवाद होने से वृद्धि करने के लिए एत्येधत्यूठ्सु सूत्र की रचना पाणिनिमुनि ने की।

**उदाहरण** - उपैति। उपैधते। प्रष्ठौह:।

**सूत्रार्थ समन्वय** - इण्-धातु का प्रथम पुरुष एकवचन में रूप है एति। उप उपसर्ग योग से उप एति स्थिति है। धातु उपसर्ग की संहिता अनिवार्य है। यहाँ अवर्ण से पर एजादि अर्थात् एकारादि इण्-धातु है। तब अ+ए पूर्वपर के स्थान में एङि पररूपम् सूत्र से पररूप प्राप्त होने पर एत्येधत्यूठ्सु सूत्र से वृद्धि का विधान करते हैं। वहां अ+ए दोनों के स्थान में स्थानेऽन्तरतम: परिभाषा बल से कण्ठ तालुस्थान जन्यत्वधर्म से अन्तरतम ऐकार होता है। तब उपैति रूप सिद्ध होता है। समीप जाता है उसका अर्थ है।

एध् धातु से त प्रत्यय का रूप एधते हैं। उप उपसर्गयोग से उप एधते स्थिति बनती है। वहां अवर्ण से पर एजादि एध् धातु है। अत: अ+ए स्थिति में एङि पररूपम् सूत्र से पररूप प्राप्त होने पर एत्येध त्यूठ्सु सूत्र से वृद्धि विधान करते हैं। वहा अ+ए दोनों के स्थान में स्थानेऽन्तरतम: परिभाषा बल से कण्ठ तालुस्थानजन्यत्वधर्म से अन्तरतम ऐकार होता है। तब उपैधते रूप सिद्ध होता है। समीप बढ़ता है अर्थ है।

प्रष्ठौह: प्रष्ठवाह् का षष्ठी है। वहा प्रष्ठ ऊह: स्थिति है। ऊह शब्द में ऊकार ऊठ् है ऐसा जानना चाहिए। अवर्ण से ऊठ परे पूर्व पर के स्थान में आद् गुण: सूत्र से गुण प्राप्त है। अत: आद् गुण: सूत्र से प्राप्त गुण को रोककर अ+ऊ पूर्वपर के स्थान में आन्तरतम्य से औ वृद्धि होती है। तब प्रष्ठौह: रूप निष्पन्न होता है।

इस सूत्र में कुछ वार्तिक है। उनका समास संधि होने से व्याख्या करते हैं।

### 7.5.1 ) अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्। ( वार्तिकम् )

वार्तिकार्थ - अक्षशब्द से ऊहिनीशब्द परे पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।

**उदाहरण** - अक्षाणाम् ऊहिनी विग्रह है। समास करने पर अक्ष ऊहिनी स्थिति में अकार-ऊकार

ध्यान दें:

के स्थान में आद् गुणः सूत्र से गुण प्राप्त करने पर इस वार्तिक से वृद्धि होती है। तब अक्षौहिणी रूप निष्पन्न होता है। अक्षौहिणी सेना का नाम है। उसका परिमाण - 21870 रथ, 21870 हाथी, 65610 घोड़े, 109350 पदाति सैनिक।

### 7.5.2 ) प्राद् ऊहोढोढ्येषैष्येषु। ( वार्तिकम् )

**वार्तिकार्थः** - प्र उपसर्ग से परे यदि ऊह ऊढ ऊढि एष एष्य शब्द हो तो पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होती है।

**उदाहरण** - प्र ऊहः - प्रौहः (उत्तम ऊहकर्ता, तर्ककर्ता)। प्र ऊढः - प्रौढः (वृद्ध)। प्र ऊढिः - प्रौढिः (प्रौढता)। प्र एषः - प्रैषः (प्रेरणा)। प्र एष्यः - प्रैष्यः (प्रेरणयोग्य, सेवक)।

### 7.5.3 ) ऋते च तृतीयासमासे। ( वार्तिकम् )

**वार्तिकार्थ** - तृतीया समास में अवर्ण से ऋकारादि ऋतशब्द के परे पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होती है।

**उदाहरण** - सुखेन ऋतः तृतीयासमास करने पर सुख ऋतः स्थिति में आद् गुणः से गुण प्राप्त होने पर इस वार्तिक से अकार-ऋकार के स्थान में वृद्धि एकादेश होती है। स्थान आन्तर्य से अकार-ऋकार के स्थान में उरण् रपरः सूत्र से आर् आदेश होता है। तब सुखार्तः रूप निष्पन्न होता है। सुखी उसका अर्थ है।

### 7.5.4 ) प्र-वत्सतर-कम्बल-वसनार्ण-दशानाम् ऋणे। ( वार्तिकम् )

**वार्तिकार्थ** - प्र वत्सतर कम्बल वसन ऋण दश से ऋणशब्द परे पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होती है।

**उदाहरण** - प्र ऋणम् - प्रार्णम् (उत्तम ऋण)। वत्सतर ऋणम् - वत्सतरार्णम् (वत्स के लिए गृहीत ऋण)। कम्बल ऋणम् - कम्बलार्णम् (कम्बल के लिए गृहीत ऋण)। वसन ऋणम् - वसनार्णम् (वस्त्र के लिए गृहीत ऋण )। ऋण ऋणम् - ऋणार्णम् (एक ऋण के लिए गृहीत अपर ऋण)। दश ऋणम् - दशार्णम् (जिस देश में दश प्रकारक का जल है वह देश विशेष)।

## 7.6 उपसर्गाद् ऋति धातौ॥ ( 6.1.88 )

**सूत्रार्थ** - अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु के परे पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होती है।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। तीन पद है। उपसर्गात् (5/1), ऋति (7/1), धातौ (7/1)। ऋत् तपरकरण है। उससे ह्रस्व ऋकार ही जानना चाहिए। आद् गुणः सूत्र से आत् पञ्चम्यन्त पद की अनुवृति है। वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धिः पद की अनुवृति है। एकः पूर्वपरयोः का अधिकार है। पूर्व और पर दोनों के स्थान में एक ही आदेश होता है। पदयोजना - आद् उपसर्गात् ऋति धातौ वृद्धिः एकः पूर्वपरयोः इति।

**तदन्तविधि** - इस सूत्र में तदन्तविधि है। यहाँ आद् उपसर्गात् समान विभक्तिक दो पद है। यहाँ आद् यह विशेषण है, उपसर्गात् विशेष्य है। अतः तदन्तविधि है। तब वैसे विशेष्य उपसर्ग ग्रहण करना चाहिए जिसके अन्त में विशेषण अवर्ण है। यहाँ उपसर्ग विशेष्य है। आद् विशेषण है। तदन्तविधि से अवर्णान्त उपसर्ग अर्थ होता है।

**तदादिविधि** - इस सूत्र में कैसे तदादिविधि होती है उसको प्रदर्शित करते हैं। येन विधिस्तदन्तस्य

ध्यान दें:



सूत्र व्याख्या के समय तदाविधि का वर्णन किया है। उसका ही प्रयोग स्थल ये है। ऋति धातौ दोनों पद सप्तमी में है। उनमें ऋति पद से लक्ष्य में केवल एक ही अल् ऋकार प्राप्त है। अत: ऋति अल्बोधक पद है। इस प्रकार होने से तदादिविधि है। इस प्रकार वैसा विशेष्य ग्रहण करना चाहिए जिसका आदि विशेषण है। यहाँ विशेष्य धातु, विशेषण ऋत् है। अत: वैसी धातु को जानना चाहिए जिसका आदि वर्ण ऋकार है। अर्थ होता है - ऋकारादि धातु।

सूत्रार्थ है - अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु के परे पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।

**उदाहरण** - प्रार्च्छति।

**सूत्रार्थ समन्वय** - प्र ऋच्छति यहाँ पर प्र अवर्णान्त उपसर्ग है, ऋच्छति ऋकारादि धातु परे है। वहा आद् गुण: सूत्र से गुण प्राप्त करने पर प्रकृत सूत्र से वृद्धि का विधान करते हैं। यदि यहाँ भी आद् गुण: सूत्र प्रवृत होता तो प्रकृत सूत्र निरवकाश अर्थात् व्यर्थ होता। अत: वचन प्रामाण्य से यह गुण का अपवाद है। अ+ऋ पूर्वपर के स्थान में आ ऐ औ इनमें अन्यतम प्राप्त है। वह आ अण् है और वह ऋकार के स्थान में प्राप्त है। अत: उरण् रपर: सूत्र से आर् होता है। तब आर् ऐ औ इनमें आर् ही स्थान से अन्तरतम है। पूर्वपर के स्थान में आर् आदेश ही होता है। तब प्रार्च्छति रूप सिद्ध होता है।

## 7.7 एङि पररूपम्॥ ( 6.1.91 )

**सूत्रार्थ** - अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के परे पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

**सूत्रव्याख्या** - विधिसूत्र है। सूत्र में दो पद है। एङि (7/1), परस्य रूपम् पररूपम् इति षष्ठी तत्पुरुष समास। पूर्ववर्ण परवर्ण रूप से अवशेष रहता है पररूपशब्द का अर्थ। आद् गुण: सूत्र से आत् पञ्चम्यन्त पद की अनुवृति है। उपसर्गद् ऋति धातौ सूत्र से उपसर्गात् पञ्चम्यन्त धातौ सप्तमी एकवचनान्त दो पद की अनुवृति है। एक: पूर्वपरयो: का अधिकार है। पूर्व और पर दोनों के स्थान में एक ही आदेश होता है उसका अर्थ है। पदयोजना - आद् उपसर्गात् एङि धातौ पूर्वपरयो: एक: पररूपम् इति।

**तदादिविधि और तदन्तविधि** - आद् उपसर्गात् समान विभक्तिक दो पद है। आद् विशेषण उपसर्गाद् विशेष्य है। अत: तदन्तविधि द्वारा अवर्णान्त उपसर्ग से अर्थ होता है। एङि धातौ दोनों सप्तम्यन्त पद है। उनमें एङि अल्बोधक है। अत: तदादिविधि से एङादि धातु को अर्थ होता है।

सूत्रार्थ है - अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के परे पूर्वपर के स्थान में पर रूप एकादेश होता है।

**अपवाद** - अ+ए, आ+ए, अ+ओ, आ+ओ स्थिति में वस्तुत: वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि प्राप्त है। अत: यह विधि वृद्धिरेचि की अपवाद है। अवर्ण से एजादि इण् वा एध धातु यदि हो तो एङि पररूपम सूत्र से पररूप प्राप्त होने पर एत्येधत्यूठ्सु सूत्र से वृद्धि होती है। अत: एङि पररूपम् इसका एत्येधत्यूठ्सु सूत्र अपवाद है। प्रथम वृद्धिरेचि इसका अपवाद एङि पररूपम्।

**उदाहरण** - प्रेजते। उपोषति।

**सूत्रार्थ समन्वय** - प्र एजते (एजृ दीप्तौ धातु) यहाँ अवर्णान्त उपसर्ग प्र है। उससे परे एङादि धातु एजते हैं। वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि प्राप्त होने पर एङि पररूपम् सूत्र वृद्धि का अपवाद है। प्र-उपसर्ग अकार का और एकार के स्थान में पररूप होता है, अर्थात् अकार एकाररूप से अवशेष रहता है। तब प्रेजते रूप सिद्ध होता है। उत्कर्ष रूप से प्रदीप्त अर्थ है।

उप ओषति (उष दाहे धातु) यहाँ अवर्णान्त उपसर्ग उप है। उससे परे एङादि धातु ओषति है।

ध्यान दें:

वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि प्राप्त होने पर एङि पररूपम् सूत्र वृद्धि का अपवाद है। किन्तु उप-उपसर्ग अकार का और ओकार के स्थान में पररूप होता है, अर्थात् अकार ओकाररूप में शेष रहता है। तब उपोषति रूप सिद्ध होता है। जलना अर्थ है।

### 7.7.1 ) शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। ( वार्तिकम् )

यह वार्तिक है। पाणिनिमुनि ने जैसे सूत्रपाठ को लिखा है, वैसे ही गणपाठ भी लिखा है। उसमें विशिष्टकार्य के अर्थ के लिए शब्दों का संग्रह है। उनमें एक गण शकन्ध्वादिगण है। वार्तिकार्थ - अच् परे शकन्ध्वादि विषय में टी पररूप होता है।

**उदाहरण** - शकन्धुः। कर्कन्धुः। कुलटा। मनीषा। हलीषा। लाङ्गलीषा। पतञ्जलिः। सारङ्गः। सीमन्तः।

**वार्तिकार्थ समन्वय** - शकानाम् अन्धुः कूपः। शक अन्धुः स्थिति में ककार से उत्तरवर्ती अकार अच अव्यवहितपूर्व है। अतः शक् इसके अकार की टि संज्ञा है। उसका पररूप करने पर शकन्धुः रूप सिद्ध होता है।

कर्काणाम् अन्धुः। (कर्काः कोई राजा, उनका कुआ अर्थ।) कर्क अन्धुः यहाँ पर पररूप करने पर कर्कन्धुः रूप निष्पन्न होता है।

कुलेषु अटति सा कुलटा (व्यभिचारिणी स्त्री)। कुल अटा स्थिति में टी का पररूप होने पर कुलटा सिद्ध होता है।

मनस् ईषा यहाँ पर मनस् शब्द का अस् टिसंज्ञक है। उसका पररूप करने पर मन् ईषा होता है। वर्ण मिलान से मनीषा रूप की निष्पति होती है। बुद्धि अर्थ है।

पतत् अञ्जलिः यहाँ पर पतत्-शब्द का अत् टिसंज्ञक है। उसका पर रूप करने पर पत् अञ्जलिः होता है। वर्ण मिलान करने से पतञ्जलिः रूप की निष्पति होती है। महाभाष्यकार शेषावतार पतञ्जलि अर्थ है।

सार अङ्गः - सारङ्गः (हरिण पक्षिविशेष वा)।

सीमन् अन्तः (सीम्नः अन्तः - सीमन्तः)। यहाँ टिः अन् है। उसका पररूप करने पर सीमन्तः सिद्ध होता है। नारी के केशवेश शिर में जो केश विभाजन रेखा दिखाई देती है वह सीमन्त कहलाती है।

शकन्ध्वादिगण आकृतिगण।

आकृति स्वरूप कार्य दर्शन से कार्य करता है आकृतिगण। जिस गण में अवर्तमान कोई शब्द उस गण में स्थिति का ग्रहण करता है, उसका रूप साधु है ऐसा कह सकते हैं, तब वह गण आकृतिगण कहलाता है।

मार्तण्डः शब्द लोक में प्रसिद्ध है। सूर्य अर्थ है। मृतण्डे भवः मार्तण्डः उसकी व्युत्पति है। परन्तु मृतण्ड शब्द कैसा। वहां कहते हैं मृतम् अण्डम् कर्मधारयसमास करने पर मृत अण्ड स्थिति होती है। वहां पर रूप करने पर मृतण्डशब्द निष्पन होता है। यह मृतण्ड शब्द शकन्ध्वादिगण में नहीं है। परन्तु उसका जो रूप वह तब ही सम्भव है, यदि वह शब्द शक्न्ध्वादिगण माना जाता है। अतः शकन्ध्वादिगण आकृतिगण कहलाता है।

ध्यान दें:



## पाठगत प्रश्न-2

8. वृद्धिरेचि सूत्र का अर्थ लिखें?

9. वृद्धिरेचि सूत्र का अपवाद कौन है?

10. एङि पररूपमिति सूत्र का अपवाद कौन है?

1) वृद्धिरेचि 2) एङः पदान्तादति 3) एत्येधत्यूठ्सु 4) आद् गुणः

11. एङि पररूपमिति सूत्र का उदाहरण क्या है?

1) प्रेजते 2) उपैति 3) गङ्गौघः 4) देवालयः

12. नीचे प्रथमस्तम्भ का द्वितीयस्तम्भ में कौन अपवाद सही है तालिका चुने?

| **स्तम्भः-1** | **स्तम्भः-2** |
|---|---|
| (क) आद् गुणः | (i) एङि पररूपम् |
| (ख) वृद्धिरेचि | (ii) एत्येधत्यूठ्सु |
| (ग) एङि पररूपम् | (iii) अकः सवर्णे दीर्घः |
| (घ) इको यणचि | (iv) वृद्धिरेचि |

| | **(क)** | **(ख)** | **(ग)** | **(घ)** |
|---|---|---|---|---|
| 1) | (i) | (ii) | (iii) | (iv) |
| 2) | (ii) | (i) | (iii) | (iv) |
| 3) | (iii) | (ii) | (i) | (iv) |
| 4) | (iv) | (i) | (ii) | (iii) |

## 7.8 अकः सवर्णे दीर्घः॥ ( 6.1.97 )

**सूत्रार्थ** - अक् का सवर्ण अच् परे पूर्वपर के स्थान में दीर्घ एकादेश होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधिसूत्र है। तीन पद हैं। अकः सवर्णे दीर्घः सूत्रगत पदच्छेद है। अकः (5/1), सवर्णे (7/1), दीर्घः (1/1)। इको यणचि सूत्र से अचि सप्तम्यन्त पद की अनुवृति है। एकः पूर्वपरयोः का अधिकार है। पूर्व और पर दोनों के स्थान में एक ही आदेश होता है। पदयोजना - अकः सवर्णे अचि दीर्घः एकः पूर्वपरयोः इति। सूत्रार्थ- अक् का सवर्ण अच् परे पूर्वपर के स्थान में दीर्घ एकादेश होता है। अक् के परे सवर्ण अच् वस्तुत अक् ही होता है। अतः अर्थ है - अ इ उ ऋ ऌ वर्णों से परे यदि सवर्ण अ इ उ ऋ ऌ वर्ण हो तो पूर्वपर के स्थान में (अक्-सवर्ण अच् के स्थान में) दीर्घ एकादेश होता है।

**उदाहरण** - दैत्यारिः। श्रीशः। विष्णूदयः। होतृषिः।

**सूत्रार्थसमन्वय** - दैत्यानाम् अरिः विग्रह है। समास करने पर दैत्य अरिः स्थिति होती है। वहां यकार से परे जो अकार, उससे पर तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् सूत्र से सवर्ण अच् अकार है। आद् गुणः सूत्र से गुण प्राप्त करने पर प्रकृत सूत्र से पूर्वपर अकार-अकार के स्थान में स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से स्थान

ध्यान दें:

आन्तर्य से आकार ही दीर्घ एकादेश होता है। तब दैत्य् आ रि: स्थिति में वर्ण मिलान से दैत्यारि: रूप सिद्ध होता है। दैत्य दानवों का शत्रु अर्थ है।

श्रिय: ईश: विग्रह। समास करने पर श्री ईश स्थिति होती है। वहां ईकार से पर ईकार है और वह तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् सूत्र से सवर्णसंज्ञक है। यहाँ इको यणचि इससे पूर्व ईकार के स्थान में यण् प्राप्त करने पर अक: सवर्णे दीर्घ: प्रकृतसूत्र से पूर्वपर के ईकार-ईकार के स्थान में स्थानेऽन्तरतम: परिभाषा से स्थान आन्तर्य से ईकार ही दीर्घ एकादेश होता है। तब श्रीश: रूप परिनिष्ठित होता है।

विष्णो: उदय: विग्रह। समास करने पर विष्णु उदय: स्थिति है। वहा उकार से परे उकार है, वह तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् सूत्र से सवर्णसंज्ञक है। यहाँ इको यणचि इससे पूर्व उकार के स्थान में यण् प्राप्त होने पर अक: सवर्णे दीर्घ: प्रकृत सूत्र से पूर्वपर उकार-उकार के स्थान में स्थानेऽन्तरतम: परिभाषा से स्थान आन्तर्य से ऊकार ही दीर्घ एकादेश होता है। तब विष्णूदय: रूप सिद्ध होता है।

होता ऋषि: विग्रह। कर्मधारय समास करने पर होतृ ऋषि: स्थिति है। वहा ऋवर्ण से पर ऋवर्ण है और वह तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् सूत्र से सवर्ण संज्ञक है। यहाँ इको यणचि इससे पूर्व ऋकार के स्थान में यण प्राप्त करने पर अक: सवर्णे दीर्घ: प्रकृत सूत्र से पूर्वपर ऋकार-ऋकार के स्थान में स्थानेऽन्तरतम: परिभाषा से स्थान आन्तर्य से ऋकार ही दीर्घ एकादेश होता है। तब होतृषि: रूप सिद्ध होता है।

किससे परे कौन-सा सवर्ण होना चाहिए और वह होने पर आदेश क्या होना चाहिए नीचे चार बाक्स में प्रदर्शित किया है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1) अ+अ=आ | अ+आ=आ | आ+अ=आ | आ+आ=आ |
| 2) इ+इ=ई | इ+ई=ई | ई+इ=ई | ई+ई=ई |
| 3) उ+उ=ऊ | उ+ऊ=ऊ | ऊ+उ=ऊ | ऊ+ऊ=ऊ |
| 4) ऋ+ऋ=ॠ | ऋ+ॠ=ॠ | ॠ+ऋ=ॠ | ॠ+ॠ=ॠ |

## 7.9 एङ: पदान्तादति॥ ( 6.1.105 )

**सूत्रार्थ** - पदान्त एङ से अति परे पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है।

**सूत्रव्याख्या** - विधि सूत्र है। तीन पद है। एङ: पदान्ताद् अति सूत्रगत पदच्छेद है। एङ: (5/1), पदस्य अन्त: पदान्त: षष्ठी तत्पुरुष समास: तस्मात् पदान्तात् पञ्चमी एकवचन। अति (7/1), तपरस्तत्कालस्य सूत्र से यहाँ एकमात्रिक अकार को जानना चाहिए। अमि पूर्व: सूत्र से पूर्व: पद की अनुवृति है। एक: पूर्वपरयो: का अधिकार है। पूर्व और पर दोनों के स्थान में एक ही आदेश होता है अर्थ है। पदयोजना - पदान्ताद् एङ: अति पूर्वपरयो: एक: पूर्व: भवति। सूत्रार्थ - पदान्त एङ् से अत: परे पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है। एचोऽयवायाव: सूत्र का यह अपवाद है।

**उदाहरण** - हरेऽव। विष्णोऽव।

**सूत्रार्थ समन्वय** - हरिशब्द का सम्बोधन हरे है। अव्-धातु का लोट मध्यम पुरुष में रूप अव्। हरे अव् वाक्य में स्थित रेफ से परे जो एकार वह अवशब्द के अकार से अव्यवहितपूर्व है। वहां एचोऽयवायाव: सूत्र से अयादेश प्राप्त होने पर प्रकृत सूत्र से पूर्व पर के स्थान में पूर्व रूप करने पर हरेऽव वाक्य सिद्ध होता है। हे हरे, हे गोविन्द, तुम रक्षा करो अर्थ है।

ध्यान दें:



विष्णु शब्द का सम्बोधन विष्णो है। अव्-धातु का लोट मध्यमपुरुष रूप अव् है। विष्णो अव वाक्य में स्थित रेफ से पर जो एकार वह अवशब्द के अकार से अव्यवहितपूर्व है। वहा एचोऽयवायावः सूत्र से अयादेश प्राप्त होने पर प्रकृतसूत्र से पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप करने पर विष्णोऽव वाक्य बनता है। हे विष्णो, तुम रक्षा करो अर्थ है।

[अनेक स्थान पर 'ऽ' जो चिह्न दिखाई देता है उसका नाम अवग्रह है। वह चिह्न दिखाता है की यहाँ एक ह्रस्व अकार था अब नहीं है। पूर्वरूप पररूप अथवा लुप्त हुए को दिखाता है। इस चिह्न का कोई उच्चारण नहीं होता है, अथवा करते नहीं है। जहा इस चिह्न को लिखा है वहा लुप्त अकार का उच्चारण नहीं करना चाहिए।]

## 7.10 लोपः शाकल्यस्य॥ ( 8.3.19 )

**सूत्रार्थ** - अवर्णपूर्व का पदान्त में यकार वकार का अश् परे विकल्प से लोप हो।

**सूत्र व्याख्या** - विधिसूत्र है। दो पद है। लोपः (1/1), शाकल्यस्य (6/1)। भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य योऽशि (8.3.17) सूत्र से अपूर्वस्य षष्ठ्यन्त अशि सप्तम्यन्त दो पदों की अनुवृति है। अपूर्वस्य इसका अवर्णपूर्वयोः षष्ठीद्विवचन में बदल जाती है। अवर्णः पूर्वः याभ्यां तौ अपूर्वौ। तयोः अपूर्वयोः बहुव्रीहिसमासः। यहाँ अवर्ण इससे अकार के अट्ठारह भेद जानना चाहिए। व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य इससे व्योः षष्ठीद्विवचनान्त पद की अनुवृति है। व् च य् च इति व्यौ, तयोः व्योः इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास। पदस्य का अधिकार है। उसका पदयोः षष्ठी द्विवचन में परिणाम होता है। वाक्य योजना - अपूर्वयोः व्योः पदयोः लोपः शाकल्यस्य अशि। यहाँ पदयोः अपूर्वयोः व्योः स्थिति होती है। वहां अपूर्वयोः व्योः का विशेषण है। और व्योः यह पदयोः का विशेषण है। अत व्योः इतने अंश में तदन्तविधि है। उससे अवर्णपूर्व जो यकार अथवा वकार तदन्त जो पद उसका विकल्प से लोप होता है। उसके बाद अलोऽन्त्यस्य परिभाषा से अन्त वकार यकार का ही लोप होता है। अतः फलितार्थ - पदान्त अवर्णपूर्व के वकार यकार का विकल्प से लोप हो अश परे। शाकल्य नाम कोई पाणिनिपूर्ववर्ती व्याकरणकार है। उनके मत से यह कार्य होता है। परन्तु अन्य आचार्यों के मत में यह कार्य नहीं होता है। पाणिनि दोनों का अनुमोदन कर रहे हैं। अतः विकल्प इष्ट है। सूत्रार्थ है - अवर्णपूर्व पदान्त के यकार वकार का विकल्प से अश परे लोप हो। अर्थात् पदान्त में अवर्ण पूर्व जिससे उस यकार अथवा वकार है तो और उसके बाद भी अश्-प्रत्याहारस्थ वर्ण है तो यकार वकार का विकल्प से लोप होता है। अर्थात् अश परे यदि पदान्त में अय् अव् आय् आव् ये हो तो उन यकार और वकार का लोप विकल्प से हो अर्थ है।

**उदाहरण** - हर आगच्छ। विष्ण आगच्छ। तस्मा आह। विष्णा आस्था।

**सूत्रार्थ समन्वय** - हरे आगच्छ इत्यादि वाक्य है। वाक्य में संहिता विकल्प से होती है। यदि संहिता हो तो वहा संहिताधिकारस्थ सूत्र प्रवृत होंगे। तब हरे आगच्छ इत्यादि उदाहरण में एकार अच् आकार से अव्यवहितपूर्व है। अतः एचोऽयवायावः सूत्र प्रवृत्त है। तब एकार के स्थान में अय् आदेश होता है। तब हरय् आगच्छ स्थिति होती है। वहां पदान्त में अवर्ण पूर्व जिससे वैसा यकार है, अर्थात् पदान्त में अय् है, उससे पर अश्-प्रत्याहारस्थ आकार है। लोपः शाकल्यस्य सूत्र से विकल्प से लोप होता है। जब लोप नहीं होता तब लोप अभावपक्ष में हरय् आगच्छ इस स्थिति में वर्णमिलान से हरयागच्छ साधु रूप बनेगा।

विष्णो आगच्छ। तस्मै आह। विष्णौ आस्था। इत्यादि उदाहरण में भी उपर दर्शितक्रम से कार्य होते हैं और भी विष्णव् आगच्छ। तस्माय् आह। विष्णाव् आस्था। स्थिति होने पर। इन उदाहरण में अवर्ण पूर्व यकार और वकार है। यकार वकार का लोप विकल्प से होता है। तब लोप अभावपक्ष में - विष्णवागच्छ। तस्मायाह। विष्णावास्था। रूप होते हैं।

ध्यान दें:

इन चार उदाहरण में लोपपक्ष में तो - हर आगच्छ। विष्ण आगच्छ। तस्मा आह। विष्णा आस्था स्थिति होती है। तब उनमें अवर्ण से पर सवर्ण अवर्ण है। अत: अक: सवर्णे दीर्घ: सूत्र से सवर्णदीर्घ एकादेश प्राप्त होने पर-

## 7.11 पूर्वत्रासिद्धम्॥ ( 8.2.1 )

**सूत्रार्थ**- सवा सात अध्यायी के प्रति तीन पाद असिद्ध, तीन पादों में भी पूर्व के प्रति पर असिद्ध है।

**सूत्रव्याख्या** - अधिकार सूत्र है। अष्टमाध्याय के चतुर्थपाद का अ अ (8.4.67) अन्तिम सूत्र तक इसका अधिकार है। सूत्र में दो पद हैं। पूर्वत्र असिद्धम् सूत्रगत पदच्छेद है। पूर्वत्र यहाँ त्रल्-प्रत्ययान्त अव्यय। पूर्वत्र यहाँ सप्तमी अर्थ में त्रल् है। उससे पूर्व में यह अर्थ प्राप्त होता है। किससे पूर्व में और क्या पूर्व में। वहां कहते हैं- अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय में चार पाद है। पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र अष्टमाध्याय के द्वितीयपाद का प्रथम सूत्र है। तब किससे पूर्व इसका उत्तर होता है पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र से पूर्व। वह पूर्व क्या है प्रश्न का उत्तर है - पूर्व विद्यमान शास्त्र, सूत्रजाल। और वह अष्टमाध्याय के प्रथमपाद सहित सात अध्याय है। इतना भाग सपादसप्ताध्यायी कहलाता है। शेष अष्टमाध्याय के तीन पाद त्रिपादी कहलाता है।

असिद्धमिति प्रथमा एकवचनान्त पद है। सिद्धम् इसका निष्पन्न अर्थ है। न सिद्धम् असिद्धमिति नञ्-तत्पुरुष समास। असिद्धम् इसका असिद्धवद् अनिष्पन्नवद् अर्थ करते हैं। क्या असिद्ध इति प्रश्न। तब कहते हैं। त्रिपादी असिद्ध। सपादसप्ताध्यायी के प्रति त्रिपादी असिद्ध।

यह अधिकारसूत्र। इससे (पूर्वत्रासिद्धम्) पर जितने अधिकार सभी सूत्रों में इसका निवेश करना चाहिए। तब तीन पादों में भी पूर्व सूत्र के प्रति परसूत्र असिद्ध यह अर्थ प्राप्त होता है।

सूत्रार्थ - सपादसप्ताध्याय के प्रति तीन पाद असिद्ध, तीन पादों में भी पूर्व के प्रति पर असिद्ध है।

इस प्रकार सपादसप्ताध्यायी सिद्धकाण्ड कहलाता है। त्रिपाद असिद्धकाण्ड कहलाता है। क्योंकि सपादसप्ताध्यायी के प्रति त्रिपाद असिद्ध, किन्तु त्रिपाद में भी पूर्वसूत्र प्रति परसूत्र असिद्ध वैसे भी सपादसप्ताध्यायी सिद्ध ही। यह भी जानना कि त्रिपाद में भी पर के प्रति पूर्वसूत्र सिद्ध है।

**सूत्रार्थ समन्वय** - हर आगच्छ यहाँ लोप: शाकल्यस्य (8.3.19) लोप विधायक सूत्र त्रिपाद में स्थित है। अक: सवर्णे दीर्घ: (6.1.97) सपादसप्ताध्याय में स्थित है। अत: पूर्वत्रासिद्धम् सूत्रप्रभाव से अक: सवर्णे दीर्घ: सूत्र के प्रति लोप: शाकल्यस्य सूत्र असिद्ध है। अर्थात् लोप: शाकल्यस्य सूत्र नहीं है के समान। तब अक: सवर्णे दीर्घ: सूत्र को लोप: शाकल्यस्य सूत्र से किया गया यकार वकार का लोप नहीं जान सकता। उसकी दृष्टि में हर आगच्छ स्थिति नहीं है, वस्तुत: हरय् आगच्छ यह ही स्थिति है ऐसा मानते हैं। अत: अक् का पर सवर्ण अक् नहीं है न सवर्णदीर्घ एकादेश है। उससे हर आगच्छ स्थिति वैसी ही रहती है, वहा पुन सवर्णदीर्घ एकादेश नहीं होता है। इसी प्रकार विष्ण आगच्छ। तस्मा आह। विष्णा आस्था इत्यादि उदाहरण में भी सवर्णदीर्घैकादेश नहीं है। किन्तु इसकी दृष्टि में तो सम्पूर्ण शास्त्र सिद्ध ही है। अत: हमारे द्वारा हर आगच्छ ऐसा ही लिखा जाता है और व्यवहार किया जाता है।

### पाठगत प्रश्न-3

13. अक: सवर्णे दीर्घ: सूत्र का अर्थ लिखें।

ध्यान दें:



14. (ए+ए) एकार से परे एकार है तो कौन-सा सूत्र लगेगा?

15. एङः पदान्तादति सूत्र किसका अपवाद है?

16. लोपः शाकल्यस्य सूत्र से किसका लोप होता है?

17. विष्णो आगच्छ इसका विष्ण आगच्छ इति परिवर्तन के बाद सवर्णदीर्घसन्धि क्यों नहीं होती?

18. असिद्धकाण्ड में कौन-से पादा है?

19. विष्णो आगच्छ इसका संधि में क्या रूप बनेगा?

1) विष्ण आगच्छ, विष्णावागच्छ  2) विष्णा आगच्छ, विष्णवागच्छ

3) विष्ण आगच्छ, विष्णवागच्छ  4) विष्ण आगच्छ, विष्णावगच्छ

20. उत्तर का योग्य क्रम चुनो जहाँ पूर्व का अपवाद परसूत्र है?

| i) एङि पररूपम् | ii) एत्येधत्यूठ्सु | iii) वृद्धिरेचि | iv) आद् गुणः |
|---|---|---|---|
| 1) (i) | (ii) | (iii) | (iv) |
| 2) (ii) | (i) | (iii) | (iv) |
| 3) (iv) | (iii) | (i) | (ii) |
| 4) (iv) | (i) | (iii) | (ii) |

21. अधः प्रथम स्तम्भ में स्थिति प्रदर्शित। वहां कौन-सा सूत्र प्रवृत होता है द्वितीय स्तम्भ से चुनो।

| (क) आ+ए | (i) इको यणचि | (ख) इ+उ | (ii) आद् गुणः |
|---|---|---|---|
| (ग) ए+ऊ | (iii) वृद्धिरेचि | (घ) आ+उ | (iv) एचोऽयवायावः |

| | (क) | (ख) | (ग) | (घ) |
|---|---|---|---|---|
| 1) | (i) | (ii) | (iii) | (iv) |
| 2) | (ii) | (i) | (iii) | (iv) |
| 3) | (iii) | (i) | (iv) | (ii) |
| 4) | (ii) | (iii) | (iv) | (i) |

इससे आगे प्लुत और प्रगृह्य की प्रकृतिभाव के बारे में वर्णन करेंगे। अतः प्लुत कौन है, कौन प्रगृह्य इस ज्ञान के लिए कुछ सूत्र उपस्थित करते हैं। यह सन्धि प्रकृतिभावसन्धि कहलाती है।

## 7.12 दूराद्धूते च॥ ( 8.2.84 )

**सूत्रार्थ** - दूर से सम्बोधन में वाक्य के टी को प्लुत विकल्प से होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधिसूत्र है। सूत्र में तीन पद है। दूरात् हूते च सूत्रगतपदच्छेद है। दूरात् (5/1), हूते (7/1), च इत्यव्ययपद। वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः सूत्र से वाक्यस्य षष्ठ्येकवचनान्त, टेः षष्ठ्येकवचनान्त, प्लुतः प्रथमान्त तीन पद की अनुवृति है। पदसमूह वाक्य है। पदयोजना - दूरात् हूते वाक्यस्य टेः प्लुतः भवति। कोई किसी को बुलाता है। तब प्रथम उच्चारित शब्द को बोध्यमान नहीं सुनता,

ध्यान दें:

किन्तु अधिक प्रयत्न की अपेक्षा, तब वह दूर में मानता है। हूतशब्द का आह्वान अर्थ है। आह्वानम् यहाँ सम्बोधन में ही है। सूत्रार्थ है - दूर से सम्बोधन में वाक्य के टी को प्लुत विकल्प से होता है।

**उदाहरण** - आगच्छ कृष्ण 3।

**सूत्रार्थ समन्वय** - आगच्छ कृष्ण 3 इस वाक्य में कोई गोप कृष्ण को बुलाता है। तब कम ध्वनि को कृष्ण सुन नहीं सकता। उससे जाना जाता है की कृष्ण दूर में है। अत: गोप उच्च से बोलता है। आगच्छ कृष्ण इस वाक्य में णकार से परवर्ती अकार टिसंज्ञक है। वह प्रकृत सूत्र से प्लुत होता है। तब आगच्छ कृष्ण3 यह वाक्य होता है।

## 7.13 ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्॥ ( 1.1.11 )

**सूत्रार्थ** - ईदन्त ऊदन्त और एदन्त द्विवचन की प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

**सूत्रव्याख्या** - संज्ञा सूत्र है। इस सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञा का विधान करते हैं। सूत्र में तीन पद हैं। ईदूदेत् द्विवचनम् प्रगृह्यम् सूत्रगतपदच्छेद है। ईत् च ऊत् च एत् च इति ईदूदेत् इति समाहारद्वन्द्वसमास। यहाँ ईत् ऊत् एत् इनमे तपरकरण सन्देहराह इस अर्थ के लिए तपरस्तत्कालस्य के तत्कालिक का ग्रहणार्थ के लिए नहीं। ईदूदेत् पद द्विवचनम् इसका विशेषण है। अत: तदन्तविधि से ईदन्त ऊदन्त और एदन्त द्विवचन यह अर्थ प्राप्त होता है। तब सूत्रार्थ - ईदन्त ऊदन्त और एदन्त द्विवचन की प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

**उदाहरणम्** - हरी। विष्णू। गङ्गे। यहाँ हरिशब्द का विष्णुशब्द का और गङ्गाशब्द का प्रथमाद्विवचन में ये रूप है। इस सूत्र से हरी इति शब्द में व्यपदेशिवद्भाव से ईदन्त द्विवचन ईकार का, विष्णू यहाँ ऊकार का, और गङ्गे यहाँ एकार की प्रगृह्य संज्ञा होती है।

## 7.14 अदसो मात्॥ ( 1.1.12 )

**सूत्रार्थ** - अदस्-शब्द का अवयव जो मकार, उससे परे ईदूतौ प्रगृह्य हो।

**सूत्रव्याख्या** - संज्ञासूत्र है। सूत्र में दो पद है। अदस: मात् सूत्रगतपदच्छेद है। अदस् यह सर्वनाम्न अदस: षष्ठ्येकवचन है। इयमवयवषष्ठी है। मात् पञ्चमी एकवचनान्त पद है। यह दिग्योग में पञ्चमी। ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् सूत्र से ईदूत् और प्रगृह्यम् दो पद की अनुवृति है। सूत्रार्थ है - अदस्-शब्द का अवयव जो मकार, उससे परे ईदूतौ प्रगृह्य हो।

**उदाहरण** - अमी। अमू। प्रकृते अमी अदस्-शब्द का पुल्लिङ्ग प्रथमाबहुवचनान्त रूप है। उस मकार से परे ईद् है। अमू यहाँ अदस्-शब्द का पुल्लिङ्ग प्रथमाद्विवचनान्त रूप है। उस मकार से परे ईद है।

## 7.15 निपात एकाजनाङ्॥ ( 1.1.14 )

**सूत्रार्थ** - आङ्-भिन्न एकाच् निपात प्रगृह्यसंज्ञ होता है।

**सूत्र व्याख्या** - संज्ञासूत्र है। इसमें तीन पद हैं। निपात: एकाच् अनाङ् सूत्रगत पदच्छेद है। निपात: प्रथमा एकवचन। एक: अच् इति एकाच् इति कर्मधारयसमास। न आङ् इति अनाङ् इति नञ्तत्पुरुषसमास। ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् सूत्र से प्रगृह्यम् पद की अनुवृति। सूत्रार्थ - आङ्-भिन्न एकाच् निपात प्रगृह्यसंज्ञ होता है।

**उदाहरण** - अ (आक्षेप में), आ (वाक्य और स्मरण में), इ (सम्बोधन, विस्मय में), ई

ध्यान दें:



(सम्बोधन में), उ (सम्बोधन, वितर्क में), ऊ, ए, ऐ, ओ, औ (सम्बोधन में), आङ् (अल्प, मर्यादा में) ये चादि है। उससे चादयोऽसत्त्वे सूत्र से निपातसंज्ञक है। और ये एकाच है। उनमें आङ् प्रगृह्यसंज्ञ नहीं होती है। अन्य में प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

## 7.16 प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्॥ ( 6.1.121 )

**सूत्रार्थ** - प्लुत और प्रगृह्य अच् परे नित्य प्रकृतिभाव होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। तीन पद हैं। प्लुतप्रगृह्याः अचि नित्यम् सूत्रगतपदच्छेद है। प्लुताः च प्रगृह्याः च इति प्लुतप्रगृह्याः इतरेतरयोगद्वन्द्व। अचि (7/1), नित्यम् (1/1)। प्रकृत्यान्तःपादम् सूत्र से प्रकृत्या तृतीयान्त पद की अनुवृति है। पदयोजना - प्लुतप्रगृह्याः अचि प्रकृत्या नित्यम्। सूत्रार्थ- प्लुत और प्रगृह्य अच परे नित्य प्रकृतिभाव होते है। सन्धिविकार नहीं होता है।

**उदाहरण** - प्लुतस्य उदाहरणम् - आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति।

**सूत्रार्थसमन्वय** - आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति यहाँ पर आगच्छ कृष्ण एक वाक्य है। दूराद्धूते च सूत्र से विकल्प से णकारोत्तर अकार प्लुत होता है। तब आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति यह स्थिति होती है। वहां अ३कार से पर अत्र शब्द का अकार अच् है। अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र से दीर्घैकादेश प्राप्त होने पर प्रकृत सूत्र से प्रकृति भाव होता है। अर्थात् जब प्लुत होता है तब सवर्णदीर्घ नहीं होता है। जब प्लुत नहीं होता है तब सवर्णदीर्घ होता है, इस प्रकार आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति इति, 'आगच्छ कृष्णात्र गौश्चरति' दो प्रकार का प्रयोग होता है।

प्रगृह्य का उदाहरण - हरी एतौ। यहाँ रेफ से उत्तर जो ईकार वह ईदन्त द्विवचन है। ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् सूत्र से उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है। उससे परे अच् एकार है। वहां इको यणचि इससे यण प्राप्त होने पर प्रकृतसूत्र से प्रकृतिभाव होता है। अर्थात् स्वरूप में ही रहता है कोई भी वर्णविकार नहीं होता है। उससे हरी एतौ यह ही रूप रहता है। ऊदन्तद्विवचन का उदाहरण - विष्णू इमौ। एदन्तद्विवचन का उदाहरण - गङ्गे अमू।

अमी ईशाः। यहाँ अदस् सर्वनाम्न पुल्लिङ्ग प्रथमा बहुवचन में अमी रूप है। इस मकार से परे ईत् है। उसको अदसो मात् सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञा होती है। यहाँ मकार से पपरे जो ईकार, उससे परे ईकार है। अकः सवर्णे दीर्घः इससे सवर्णदीर्घैकादेश प्राप्त होने पर प्रकृत सूत्र से प्रकृतिभाव होता है। उससे अमी ईशाः यह ही रूप रहता है।

अदस् सर्वनाम्न पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में प्रथमा द्विवचन में रूप अमू अमू अमू। वहां इन रूपों की सिद्धि प्रक्रिया पृथक्-पृथक् है।

स्त्रीलिङ्ग और क्लीब प्रक्रिया से 'अदे' स्थिति होती है। वहा अदसोऽसेर्दादु दो मः (8.2.80) सूत्र से दकार को मकार, और एकार को ऊकार का विधान करते हैं। परन्तु ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् सूत्रदृष्टि से अदसोऽसेर्दादु दो मः (8.2.80) सूत्र असिद्ध है। और भी 'अदे' स्थिति में ही एदन्त द्विवचन की प्रगृह्यसंज्ञा होती है। उससे ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् सूत्र से ही प्रगृह्यसंज्ञा होकर प्रकृतिभाव होता है प्रकृतसूत्र से। अतः अदसो मात् (1.1.12) सूत्र वहां आवश्यक नहीं है। परन्तु पुल्लिङ्ग में अमू रूपसाधन प्रक्रिया में अदौ स्थिति होती है। वहां अदसोऽसेर्दादु दो मः (8.2.80) सूत्र से दकार को मकार, और एकार को ऊकार का विधान करते हैं। उससे अमू रूप पुल्लिंग में बनता है। अदौ रूप में औकार की किसी भी सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञा नहीं है। तब अदसो मात् सूत्र की रचना की। और वह सिद्धकाण्डीय है। उसकी दृष्टि से अदसोऽसेर्दादु दो मः (8.2.80) सूत्र असिद्ध है। परन्तु अदसो मात् (1.1.12) इति

ध्यान दें:

सूत्रारम्भसामर्थ्य से अदसोऽसेर्दादु दो मः (8.2.80) सूत्र असिद्ध नहीं होता है। अतः अमू यहाँ ऊकार का अदसो मात् (1.1.12) सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञा होती है। अतः ऊदन्त का उदाहरण रामकृष्णावमू आसाते देते हैं। वहा रामकृष्णौ यह पद दिखाते हैं की यहाँ अमू रूप पुल्लिङ्ग में है। प्रगृह्यसंज्ञावश से प्रकृतिभाव होता है।

निपात जो प्रगृह्य है उनका उदाहरण - इ इन्द्रः। उ उमेशः। आ एवं नु मन्यसे। आ एवं किल तत्। यहाँ सभी में इ, उ, आ ये चादित्व होने से चादयोऽसत्त्वे सूत्र से निपातसंज्ञा, निपात होने से निपात एकाजनाङ् सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञा। इ इन्द्रः यहाँ, और उ उमेशः यहाँ अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्णदीर्घैकादेश प्राप्त होने पर प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृतिभाव होता है। आ एवं नु मन्यसे, आ एवं किल तत् इन दोनों उदाहरण में वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि प्राप्त होने पर प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृतिभाव होता है।

## पाठगत प्रश्न-4

22. दूराद्धूते च सूत्र से किसका विधान करते हैं?
23. विष्णू यहाँ प्रगृह्यसंज्ञाविधायक सूत्र क्या है?
24. अमी यहाँ प्रगृह्यसंज्ञा किस सूत्र से होती है?
25. आङ की प्रगृह्यसंज्ञा होती है अथवा नहीं?
26. प्रकृतिभावविधायक सूत्र क्या है।

## पाठ सार

जिन दो वर्णों की संहिता होती है, अर्थात् जिन दो के मध्य में अर्धमात्रा से अधिककाल का व्यवधान नहीं है उनको संहिताधिकार में स्थित सूत्रों द्वारा विभिन्न आदेश होते हैं। जिनकी संहिता उनमें एक पूर्ववर्ण अपर परवर्ण कहलाता है। इस पाठ में पूर्वपर दोनों के स्थान में एक ही आदेश का विधान करते हैं। वहां अधिकारसूत्र ही एकः पूर्वपरयोः।

अवर्ण से इकि परे आद् गुणः सूत्र से पूर्वपर के स्थान में गुणः अर्थात् अ ए ओ इनमें अन्यतम एकादेश होता है। उपेन्द्रः इत्युदाहरण। यह ही गुणसन्धि प्रसिद्धि है। अवर्ण से एच् परे पूर्वपर के स्थान में वृद्धि अर्थात् आ ऐ औ इनमें अन्यतम एकादेश वृद्धिरेचि सूत्र से होता है। यह सूत्र गुण का अपवाद है। यह ही वृद्धिसन्धि नाम से प्रसिद्ध है।

ऋकार के स्थान में जब अ आ इ ई उ ऊ इन वर्णों का विधान करते हैं तब उनके साथ रेफ का योग करके विधान करते हैं। ऋकार के स्थान में अकार का विधान करे तो वह अर् वस्तुतः प्रयोग करना चाहिए। वहा उरण् रपरः सूत्र। कृष्णर्द्धिः इत्युदाहरण।

वृद्धिरेचि सूत्र से उत्सर्ग वृद्धि प्राप्त होती है परन्तु कही पर नहीं चाहिए। अतः एङि पररूम् सूत्र से अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के परे वृद्धि को बांधकर पररूप का विधान करते हैं। यह कार्य शकन्ध्वादिगण में भी आवश्यक है शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् वार्तिक बनाया कात्ययनमुनि ने। यह पररूपसन्धि इस नाम से संस्कृत में प्रचार है। यह एङि पररूपं कहीं पर इष्ट नहीं है। अतः एत्येधत्यूठ्सु सूत्र की रचना पाणिनि जी ने की। उससे अवर्ण से एजादि एति एधति यदि परे हो तो पररूप को बांधकर वृद्धि का विधान करते हैं। यदि ऊठ् परे हो तो गुण को बांधकर वृद्धि का विधान करते हैं।

ध्यान दें:



एत्येधत्यूठ्सु सूत्र के अनेक वार्तिक है। उससे अक्षौहिणी प्रौहः प्रौढ़ः सुखार्तः प्रार्णम् इत्यादि साधुरूप होते हैं।

अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु परे आद् गुणः सूत्र से गुण प्राप्त होने पर गुण को बांधकर वृद्धि का विधान करते हैं। वहां उपसर्गाद् ऋति धातौ सूत्र है। प्रार्च्छति यहाँ उदाहरण है।

अक् से परे सवर्ण अक् हो तो पूर्वपर के स्थान में दीर्घ एकादेश होता है। यह सवर्णदीर्घसन्धि इस नाम से प्रसिद्ध है। देवालयः विष्णूदयः इत्यादि उदाहरण है।

पदान्त में एङ् के परवर्ण यदि अत् अर्थात् ह्रस्व अकार है तो पूर्व रूप होता है। अकार का लोप होने पर सामान्य रूप से उसका उच्चारण नहीं करते। परन्तु इसका लोप नहीं होता है। यहाँ पूर्वरूप हुआ ऐसा जानना चाहिए। विष्णोऽव प्रभोऽत्र इत्यादि उदाहरण।

अनेक जगह संस्कृत में हम देखते हैं कि ये रथोपस्थ उपाविशत् इसी प्रकार स्थलानि सन्ति जहां अ+इ, अ+उ इनमें पुनः गुण वृद्धि सवर्णदीर्घ आदि सन्धिकार्य नहीं होते हैं। परन्तु भाति अत्र तो हो सकती है। परन्तु नहीं होती है। वहां रहस्य को ही उन उदाहरण में तय् इमे रथोपस्थय् उपाविशत् इति यकार को गुणादिविधायक सूत्र देखते हैं। यकार का लोप होने से लोपः शाकल्यस्य सूत्र से विहित है। परन्तु उस सुत्र से ही गुणादिविधायक सूत्र दृष्टि नहीं के समान है। पाणिनि ने बड़ी कुशलता से अष्टमाध्याय के द्वितीयपाद के प्रथम सूत्र की रचना की पूर्वत्रासिद्धमिति। इस सूत्र से अष्टमाध्याय पाद के साथ सप्त अध्याय सपादसप्ताध्यायी सिद्धकाण्ड कहलाते हैं। अष्टमाध्याय के अन्तिम तीन पाद ही त्रिपादी और असिद्धकाण्ड कहलाते हैं।

प्लुतवर्ण से परे और प्रगृह्यसंज्ञक से परे यदि अच् हो तो वहां पूर्व पर अथवा दोनों का परिवर्तन नहीं होता है। इस स्वरूप को प्रकृतिभाव कहते हैं। वहां प्लुत का विधान दूराद्धूते च सूत्र से होता है। और प्रगृह्यसंज्ञा ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् इति असतो मात् सूत्र से होती है। प्रकृतिभावविधायक सूत्र प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्।

## योग्यतावर्धन

सूत्र का व्याख्यान व्याकरण का विशाल विषय है। अष्टाध्यायी के पठन अथवा पाठन हो, सूत्रव्याख्यान के विना एक पद भी आगे नहीं जाते विद्वान लोग। जो व्याकरण के सहारे आगे पढ़ते हैं, वे बड़ी कक्षाओं में व्याकरण का सर्वप्रथम प्रक्रियाग्रन्थों को पढ़ते हैं। उसके बाद वादग्रन्थ को पढ़ते हैं। उसके बाद दार्शनि कग्रन्थों को पढ़ते हैं। हमारा यह पाठ्यग्रन्थ भी प्रक्रिया ग्रन्थ ही है। प्रक्रिया ग्रन्थ में सूत्रों का व्याख्यान आवश्यक है। वादग्रन्थ में तो वस्तुतः विभिन्न आचार्यों के व्याख्यान में मतभेद की बहुलता है। दार्शनिकग्रन्थ में व्याकरण के सूत्रव्याख्यान प्रायः नहीं होते हैं। अथवा कोई रूप भी सिद्ध नहीं करते हैं।

सूत्र व्याख्यान परीक्षा में भी अधिक पूछते हैं। अतः व्याख्यान नाम क्या है। कितने अङ्ग व्याख्यान के हैं। वे कैसे करने चाहिए। उसका विशिष्टक्रम से और उपस्थापन क्या ये छात्रहित के लिए यहाँ प्रदर्शित करते हैं। वहां यह श्लोक मुख्य है-

**पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।**

**आक्षेपोऽथ समाधानं व्याख्यानं षड्विधं स्मृतम्॥**

1) पदच्छेद, 2) पदोर्थोक्त, 3) विग्रह, 4) वाक्य योजना, 5) आक्षेप, 6) समाधान

ध्यान दें:

ये विषय इस प्रकार अन्य भी कुछ विषय नीचे विस्तार सहित प्रदर्शित करते हैं।

उदाहरण - **उपसर्गाद् ऋति धातौ** इति सूत्र।

- **सूत्र का अवतरण। किसलिए सूत्र की रचना की।**

  (प्र ऋच्छति इस स्थिति में आद् गुण: इससे गुण प्राप्त होने पर गुण का अपवाद करके वृद्धिविधान के लिए इस सूत्र की रचना की।)

- **सूत्रस्थल- किस प्रकरण में है।**

  इस पाठ्यक्रम में अच्सन्धिप्रकरण में यह सूत्र शोभित हो रहा है।

- **छः प्रकार के सूत्र में इस सूत्र का प्रकार क्या है।** (विधिसूत्र, परिभाषासूत्र ...)

  (संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।

  अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रमुच्यते।।

  इन छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में यह विधिसूत्र है)

- **सूत्र में कितने पद हैं।**

  (इस सूत्र में तीन पद हैं।)

- **यदि पदों में सन्धि है तो सन्धिविच्छेद करके पद का उल्लेख कीजिए।**

  (उपसर्गाद् ऋति धातौ सूत्रगत पदच्छेद।)

- **सूत्रस्थपदों की विभक्ति निर्देश करें।**

  (उपसर्गाद् पञ्चमी एकवचनान्त पद। ऋति सप्तमी एकवचनान्त पद। धातौ सप्तमी एकवचनान्त पद।)

- **यदि कोई भी समास है तो उसका विग्रह और समास का नाम बताओ?**

  (इसमें समास तो नहीं दिखाई दे रहा है। अतः कुछ भी नहीं कहना है।)

- **अनुवृत्ति अधिकार आक्षेप प्रकार से जो पद आते हैं, वहां किस सूत्र से कौन-सा पद आता है। उसकी विभक्ति बताओ। यदि समास है तो विग्रह और समास का नाम बताओ। आये हुए पदों को कोई विभक्ति विपरिणाम है। वह विपरिणाम भी बताओ।**

  (आद् गुणः सूत्र से आत् पञ्चम्यन्त पद की अनुवृति है। वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धिः प्रथमान्त विधेयपरपद की अनुवृति है। एकः पूर्वपरयोः अधिकार है। समासः - पूर्वः च परः च तौ पूर्वपरौ इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास। तयोः पूर्वपरयोः इति। पूर्व और पर दोनों के स्थान में एक ही आदेश होता है।)

- **परिभाषा से उपस्थापित पद बताओ।**

  (यहाँ पदोपस्थापिक परिभाषा से कोई पद नहीं आया।)

- **इस प्रकार सभी पद प्राप्त होने पर सभी पदों के विशिष्टक्रम से उल्लेख करना चाहिए - वह पद योजना/वाक्य योजना होती है।**

  (वाक्य योजना - आद् उपसर्ग से ऋत धातु के पूर्व पर को एक वृद्धि होता है।)

- **किस सूत्र से, किस नियम से, किस परिभाषा द्वारा किस पद का किस अन्वय/सम्बन्ध**

ध्यान दें:



**होता है ऐसा कहना चाहिए।**

(**तदन्तविधि** - इस सूत्र में तदन्तविधि होती है। यहाँ आद् उपसर्गात् समान विभक्तिक पद दो हैं। एक विशेषण अपर विशेष्य। अत: तदन्तविधि होता है। तब वैसा विशेष्य उपसर्ग ग्रहण जिसके अन्त में विशेषण अवर्ण है। यहाँ उपसर्ग: विशेष्य है। आद् विशेषण है। तदन्तविधि अवर्णान्त उपसर्ग समझना चाहिए।

**तदादिविधि** - ऋति धातौ दोनों पद सप्तमी है। ऋति पद से केवल लक्ष्य में एक बार एक ही अल् ऋकार का प्राप्त है। अत: ऋति अल्बोधक पद है। इससे तदादिविधि होती है। इसी प्रकार विशेष्य ग्रहण जिसका आदि विशेषण है। यहाँ विशेष्य धातु है, विशेषण ऋत् है। अत: वैसे ही धातु को समझना चाहिए जिसका आदि वर्ण ऋकार है। अर्थ होता है- ऋकारादि धातु है।

एक: पूर्वपरयो: यहाँ पूर्वपरयो: पद में अनुयोगिविरह से स्थानषष्ठी है। अत: षष्ठी स्थानेयोगा परिभाषा से पूर्वपर के स्थान में अर्थ प्राप्त है।)

- **सूत्रार्थ कहना चाहिए।**

  (सूत्रार्थ होता है - अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु के परे पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।)

- **सूत्र की सरल भाषा से अर्थ स्पष्ट करना चाहिए।**

  (अर्थात् अकारान्त उपसर्ग से पर यदि ऋकारादिधातु हो तो अकार-ऋकार के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है।)

- **उदाहरण देना चाहिए।**

  (उदाहरण - प्रार्छति।)

- **सूत्रार्थ के उदाहरण में योजन/ समन्वय प्रदर्शन करना चाहिए। और उदाहरण के अर्थ कहना चाहिए।**

(**सूत्रार्थ समन्वय** - प्र ऋच्छति यहाँ अवर्णान्त उपसर्ग है, ऋच्छति ऋकारादि धातु परे है। अत: वहां आद् गुण: सूत्र से गुण प्राप्त होने पर प्रकृत सूत्र से वृद्धि विधान करते हैं। यदि यहाँ भी आद् गुण: सूत्र ही प्रवृत होता है तो प्रकृत सूत्र निरवकाश अर्थात् व्यर्थ होता। अत: वचनप्रामाण्य से यह गुण का अपवाद है। अ+ऋ पूर्वपर के स्थान में आ ऐ औ इनमें अन्यतम होता है। वहां आ अण् है, और वह ऋकार के स्थान में विधान करते हैं। अत: उरण् रपर: इस सूत्र से आर् होता है। तब आर् ऐ औ इनमें आर् ही स्थान से अन्तरतम है। अत: वह ही होता है। तब प्रार्च्छति रूप निष्पन्न होता है।)

## पाठान्त प्रश्न

नीचे कुछ प्रश्न देते हैं। उनमें उत्तर प्रमुख्य से दीर्घ ही होता है। सूत्र व्याख्यान और रूपसाधन दोनों होते हैं व्याकरण प्रश्न के मुख्य प्रकार हैं। अच्सन्धिप्रकरण में योग्यता वर्धन अश में एक सूत्र की व्याख्यान सविस्तार प्रदर्शित है। तब देखकर और समझकर इन सूत्रों का व्याख्यान करना चाहिए।

झलां जश् झशि सूत्र में रूपसाधन कैसे करना चाहिए रूपसाधन की अनेक प्रकार सविस्तार प्रदर्शित है। अत: वह स्थल देखकर और समझकर अन्य रूपों का साधन में प्रयास निष्ठा से विधान है। प्रथम लघु रूप साधनीय है। तत: पर क्रमश: विस्तार करना चाहिए।

## अच् सन्धि में एकादेश और प्रकृतिभाव

1. आद् गुणः सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. वृद्धिरेचि सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. उपसर्गाद् ऋति धातौ सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम सूत्र की व्याख्या कीजिए।
7. इस पाठ में कौन-सा सूत्र किसका अपवाद संगृह कारण भी प्रतिपाद न है।
8. यहाँ नीचे प्रारम्भस्थिति दी जाती है। किन्तु जो रूप साधनीय वे भी दिए जाते हैं। वहां से प्रदत्त रूप सूत्र सहित साधन कीजिए।

| प्रारम्भ | साध्य रूप | प्रारम्भ | साध्य रूप |
|---|---|---|---|
| गज इन्द्रः | गजेन्द्रः | तव एव | तवैव |
| रमा ईशः | रमेशः | दुग्ध ओदनः | दुग्धौदनः |
| सूर्य उदयः | सूर्योदयः | राम औत्सुक्यम् | रामौत्सुक्यम् |
| देव ऋषिः | देवर्षिः | दुर्गा औदार्यम् | दुर्गौदार्यम् |
| यज्ञ उपवीतम् | यज्ञोपवीतम् | मा एवम् | मैवम् |
| जन्म उत्सवः | जन्मोत्सवः | रोग औषधम् | रोगौषधम् |
| ग्रीष्म ऋतुः | ग्रीष्मर्तुः | दीर्घ एकारः | दीर्घैकारः |
| दण्ड अग्रम् | दण्डाग्रम् | हरि ईशः | हरीशः |
| विद्या आनन्दः | विद्यानन्दः | मुनि इन्द्रः | मुनीद्रः |
| भूमि ईशः | भूमीशः | गुणी इति | गुणीति |
| मधु उदकम् | मधूदकम् | पितृ ऋणम् | पितृणम् |

9. स्तम्भ के सम्बद्धो का मिलान कीजिए।

| | |
|---|---|
| (क) वृद्धिरेचि | (i) प्रैति |
| (ख) एत्येधत्यूठ्सु | (ii) नद्युदकम् |
| (ग) एङि परूपम् | (iii) गुणापवादः |
| (घ) अकः सवर्णे दीर्घः | (iv) अधिकारः |
| (ङ) इको यणचि | (v) देवेशः |
| (च) आद् गुणः | (vi) उपोषति |
| (छ) एचोऽयवायावः | (vii) कवीशः |
| (ज) एकः पूर्वपरयोः | (viii) देवावास्ताम् |

पाठ-7

अच् सन्धि में एकादेश और प्रकृतिभाव

ध्यान दें:

# पाठ-7

## अच् सन्धि में एकादेश और प्रकृतिभाव

ध्यान दें:

## पाठगत प्रश्नोत्तर

### उत्तर भाग-1

1. एकः पूर्वपरयोः यह अधिकार सूत्र है। इस अधिकार में विधीयमान आदेश पूर्वपर के स्थान में एक ही होता है।
2. गङ्गोदकम् यहाँ पर ओकार आद् गुणः सूत्र से।
3. अवर्ण से अच् परे रहते पूर्वपर के स्थान में एक गुण आदेश होता है आद् गुणः सूत्र का अर्थ।
4. उरण् रपरः सूत्र में अण् अइउण् सूत्र में स्थित णकार से।
5. ऋकार के स्थान में इकार होता है तो वस्तुत इर् आदेश होता है, उरण् रपरः सूत्र से।
6. 4) 7. 1)

### उत्तर भाग-2

8. वृद्धिरेचि सूत्र का अर्थ अवर्ण से एच परे पूर्वपर के स्थान में एक वृद्धि आदेश होता है।
9. एङि पररूपम्।
10. 3) 11. 1) 12. 4)

### उत्तर भाग-3

13. अक का सवर्ण अच परे पूर्वपर को दीर्घ एकादेश होता है।
14. एचोऽयवायावः। 15. एचोऽयवायावः।
16. अवर्णपूर्व पदान्त में यकार वकार का अश परे विकल्प से लोप होता है।
17. विष्णो आगच्छ इसका विष्ण आगच्छ परिवर्तन होने से लोपः शाकल्यस्य सूत्र से वलोप किया। वलोपविधायक यह सूत्र अकः सवर्णे दीर्घः सवर्णदीर्घसन्धिविधायक सूत्र के प्रति पूर्वत्रासिद्धमिति सूत्र से असिद्ध। वलोप का असिद्धत्व होने से सवर्णदीर्घैकादेश नहीं होता।
18. असिद्धकाण्ड में अष्टमाध्याय के द्वितीयतृतीयचतुर्थ पाद हैं।
19. 3) 20. 3) 21. 3)

### उत्तर भाग-4

22. दूराद्धूते च इस सूत्र से दूरात् सम्बोधन में वाक्य के टी को प्लुत विकल्प से विधान करते हैं।
23. विष्णू यहाँ पर प्रगृह्यसंज्ञाविधायक सूत्र ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् इति।
24. अमी यहाँ पर प्रगृह्यसंज्ञा अदसो मात् सूत्र से।
25. न।
26. प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् इति सूत्र प्रकृति भाव विधायक है।

ध्यान दें:

8

# हल् सन्धि में रुत्व-श्चुत्वादिसन्धि

पूर्व पाठ में स्वर सन्धि आलोचना है। स्वर सन्धि ही अच् सन्धि भी कहलाती है। संहितायाम् (6.1.72) इत्यधिकार में पढ़े हुए सूत्र अच् सन्धि सूत्र गणना करते हैं। तयोर्य्वावचि संहितायाम् (8.2. 108) सूत्रस्थ संहितायाम् पद का भी अधिकार है। यह अधिकार अ अ (8.4.68) इति अष्टाध्यायी का अन्तिम सूत्र तक है। इस संहिताधिकार में व्यञ्जनम् अर्थात् हल को उद्दिश्य कार्य विधान करते हैं। एक व्यञ्जन का अपर व्यञ्जन होने से परिणाम यहाँ होती है। यहाँ व्यञ्जन में अर्थात् हल् में अनुस्वार अनुनासिक विसर्ग जिह्वामूलीय उपध्मानीय की गणना करते हैं। उससे हल् सन्धि इससे इन सभी का परिवर्तन समझना चाहिए। वैसे भी विशिष्य बोध के लिए कभी हल् सन्धि विसर्ग सन्धि अनुस्वार सन्धि इत्यादि का व्यवहार होता है। विसर्ग सन्धि पूर्णता रूप से हल् सन्धि से पृथक् कर नहीं सकते हैं। क्योंकि अष्टाध्याय्या में पूर्व को विसर्ग सन्धि है, ततः पर हल् सन्धि है। विसर्ग सन्धि से परिवर्तन करना हल् सन्धि प्रकरण में ग्रहण करते हैं। उससे विसर्ग सन्धि सूत्र कोई हल् सन्धि प्रकरण में ही उल्लेख है। जो पृथक्ता से विसर्ग सन्धि प्रकरण में उल्लेख कर सकते हैं उससे पृथक् उल्लेख करते हैं।

सूत्र में जो पद हैं, किन्तु जो पद अनुवृत्ति आदि से प्राप्त हैं, उन सभी का विभक्ति वचनादि सूत्र व्याख्या में कहते हैं। जैसे - इको यणचि सूत्र में इकः षष्ठी एकवचनान्त पद है। यण् प्रथमा एकवचनान्त पद है। अचि सप्तमी एकवचनान्त पद है। इसका लघु रूप से लिए इकः (6/1), यण् (1/1), अचि (7/1) इसका भी सहारा लिया जाता है। वहा इकः (षष्ठी/एकवचन) इससे ही इकः (6/1) रूप से प्रकट करते हैं। अचि (सप्तमी/एकवचन) इसको अचि (7/1) रूप से प्रकट करते हैं। यह उपाय वहां जानना चाहिए।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- व्यञ्जन संधि में अनेक सूत्र को जान पाने में;
- तीन पाद में पूर्व के प्रति पर शास्त्र असिद्ध इसके अनेक उदाहरण जान पाने में;
- स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा का विस्तार प्रवृत्ति क्षेत्र को जान पाने में;

# पाठ-8

## हल् सन्धि में रुत्व-श्चुत्वादिसन्धि

ध्यान दें:

- व्यञ्जन में आन्तरतम परीक्षा को जान पाने में;
- एक ही स्थल के विविध वैकल्पिक रूप कैसे सम्भव जान पाने में सक्षम होंगे।

### प्रस्तुति

पदस्य। (8.1.16) यह अधिकार है। इडाया वा (8.3.54) सूत्र तक पदस्य का अधिकार है।

तयोर्य्वावचि संहितायाम् (8.2.108) सूत्र में संहितायाम् अधिकार त्रिपाद में अर्थात् असिद्धकाण्ड में है। उन सूत्रों में यह अधिकार है। परन्तु सूत्रव्याख्यानकाल में बहुधा उलेख नहीं करते हैं। इस काण्ड में पूर्व प्रति पर सूत्र असिद्ध होता है। अत: उन सूत्रों का कौन पूर्वतन सूत्र कौन-सा परवर्ती सूत्र स्पष्ट ज्ञान नहीं है तो हल् सन्धि सुबोध नहीं होती है। अत: इस प्रकरण का सुख अध्ययन के लिए तीन पाद कण्ठस्थ हो तो उत्तम है।

राम+सु शेते उदाहरण में अनुबन्धलोप होने पर रामस् शेते स्थिति में प्रक्रिया से राम: शेते इति रामश्शेते दोनों प्रयोग सही हैं। पाणिनि व्याकरण में दोनों प्रयोग की सिद्धि जिस क्रम से होती है उस क्रम से नीचे सूत्र दिए जा रहे हैं। इसी प्रकार पर क्रम को भी दिया है।

## 8.1 ससजुषो रु:॥ ( 8.2.66 )

**सूत्रार्थ**- सकारान्तपद का और सजुषन्तपद के अन्त्य को रु होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। दो पद है। ससजुष: रु: सूत्रगत पदच्छेद है। स: च सजू: च इति ससजुषौ, तयो: ससजुषो: इति इतरेतरयोग द्वन्द्व समास:। यह षष्ठी द्विवचन है। रुँ: इति प्रथमा एकवचन। वहा उँकार का उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र से इत्-संज्ञा प्राप्त है। उसके बाद तस्य लोप: इस सूत्र से उसका लोप होता है। पदस्य का अधिकार है। पदयोजना - पदस्य ससजुषो रु:। पदस्य ससजुषो दोनों समान विभक्तिक पद हैं। पदस्य विशेष्य। ससजुषो: विशेषण है। अत: तदन्तविधि से सकारान्त पद का और सजुष्-शब्दान्त पद का अर्थ प्राप्त होता है। उसके बाद अलोऽन्त्यस्य परिभाषा से उस प्रकार पद के अन्त्य का कार्य होता है। सूत्रार्थ होता है- सकारान्तपद और सजुषन्तपद के अन्त्य को रु होता है। अर्थात् यदि पदान्त में सकार हो, अथवा सजुष्-शब्दान्त पद के अन्तिमवर्ण हो तो उसके स्थान में रुँ: होता है। यह नित्य कार्य है और संहिताधिकार में नहीं है।

**उदाहरण** - रामशब्द से सु इति विभक्ति प्रत्यय योग से रामस् होता है। रामस् सुबन्त है। अत: सुप्तिङन्तं पदम सूत्र से उसकी पदसंज्ञा होती है। रामस् सकारान्त पद है। उस अन्त्य सकार के स्थान में ससजुषो रु: सूत्र से रु होता है। रुँ: यह उँकार अनुनासिक है। उसका उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र से इत्संज्ञा होती है। तस्य लोप: सूत्र से लोप होता है। तब रामर् यह होता है। तब-

## 8.2 खरवसानयोर्विसर्जनीय:॥ ( 8.3.15 )

**सूत्रार्थ** - खर् और अवसान् परे पदान्त के रेफ को विसर्ग हो।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। दो पद है। खरवसानयो: विसर्जनीय: सूत्रगत पदच्छेद है। खर्च अवसानञ्च इति खरवसाने, तयो: खरवसानयो: इति इतरेतरयोग द्वन्द्व समास। पदस्य इत्यधिकार है। रो रि सूत्र से र: षष्ठ्यन्त पद की अनुवृति है। पदयोजना खरि अवसाने च पदस्य र: विसर्जनीय:। यहाँ पदस्य र: समान विभक्तिक दो पद हैं। पदस्य विशेष्य, र: विशेषण है। अत: तदन्तविधि से रेफान्तपद का प्राप्त

ध्यान दें:

होता है। वहां भी रेफान्तपद की अल् समुदाय बोधक होने से स्थान षष्ठी सुनाई जाती है। अतः अलोऽन्त्यस्य परिभाषा से रेफान्त पद के अन्त्य को यह अर्थ प्राप्त होता है। सूत्रार्थ होता है - खर और अवसान परे रेफान्तपद के अन्त्य को विसर्ग होता है। यह ही- खर और अवसान परे पदान्त रेफ का विसर्ग हो सरलता से प्रकट करते हैं। परन्तु यह फलितार्थ है तो परिभाषादि योजना से निष्पन्न अर्थ।

**उदाहरण** - रामः।

**सूत्रार्थसमन्वय** - रामप्रातिपदिक से सुविभक्तियोग से रामस् होने पर ससजुषो रुः सूत्र से रुत्व होता है। तब रामर् शब्द प्राप्त होता है। उसके बाद पर यदि कोई पद नहीं है, अर्थात् वर्णोच्चारण अभाव है, तो अवसान है। तब अवसान परे रेफ का खरवसानयोर्विसर्जनीयः सूत्र से विसर्ग होता है। उससे रामः रूप सिद्ध होता है।

यदि वाक्य संस्कार पक्ष तो राम प्रातिपदिक से सु विभक्ति योग से, किन्तु उससे परे शेते शब्द प्रयोग से रामस् शेते स्थिति होते हैं। वहा रामस् पद है। उसके अन्त में सकार है। अतः ससजुषो रुः सूत्र से रुत्व होता है। तब रामर् शेते स्थिति होती है। रामर् शेते यहाँ रेफ से पर खर् शकार है। किन्तु यह रेफ पदान्त है। अतः प्रकृत सूत्र से रेफ के स्थान में विसर्ग होता है। उससे रामः शेते स्थितिः होती है। तब-

## 8.3 विसर्जनीयस्य सः॥ ( 8.3.34 )

**सूत्रार्थ** - खर् परे विसर्जनीय को स होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधिसूत्र है। दो पद है। विसर्जनीयस्य (6/1), सः (1/1), सकार अर्थ है। पदस्य अधिकार है। खरवसानयोर्विसर्जनीयः सूत्र से खरि एकांश अनुवृति है। और वह मण्डूकप्लुत से आता है। मेढक जैसे उछल उछल कर जाता है वैसे ही कुछ पद भी कुछ सूत्रों को छोड़कर जाते हैं। अर्थात् यत् पद की अनुवृति अपने स्थान से जितनी दूर जाती है उतनी वह क्रमशः सभी सूत्र में ग्रहण नहीं करते हैं परन्तु परवर्ति कुछ का ग्रहण करते हैं तब वह पद मण्डूकप्लुत से जाता है कहलाता है। पद योजना - संहितायाम् पदस्य विसर्जनीयस्य खरि सः। पदस्य विसर्जनीयस्य इति समान विभक्तिक दो पद है। अतः तदन्तविधि से विसर्गान्त पद का अर्थ प्राप्त होता है। उसके बाद अलोऽन्त्यस्य परिभाषा से विसर्गान्तपद के अन्त्य को अर्थ प्राप्त होता है। सूत्रार्थ होता है- विसर्गान्तपद के अन्तिम खर परे सः होता है यदि संहिता हो तो। यह ही- खर परे विसर्जनीय को स होता है अनेक जगह प्रकट करता है।

**उदाहरण** - रामः शेते यहाँ विसर्ग से परे खर् है। अतः विसर्जनीयस्य सः प्रकृत सूत्र से विसर्ग को नित्य सकार प्राप्त है। तब -

## 8.4 वा शरि॥ ( 8.3.35 )

**सूत्रार्थः** - शर परे विसर्ग को विकल्प से विसर्ग होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। दो पद है। वा विकल्पार्थ में अव्यय है। शरि सप्तमी एकवचन है। विसर्जनीयस्य सः सूत्र से विसर्जनीयस्य षष्ठ्यन्त पद की अनुवृति है। शपरे विसर्जनीयः सूत्र से विसर्जनीयः प्रथमान्त विधेयपद की अनुवृति है। पदस्य अधिकार है। संहितायाम् अधिकार है। वाक्य योजना - संहितायाम् पदस्य शरि विसर्जनीयस्य वा विसर्जनीयः। विसर्जनीयस्य सः सूत्र से नित्य विसर्ग प्राप्त होने पर वा शरि सूत्र से विकल्प से विसर्ग का विधान करते हैं। जब विसर्ग नहीं होता है तब विसर्जनीयस्य सः सूत्र से सकार होता है। सूत्रार्थ- शर परे विसर्ग को विसर्ग विकल्प से होता है।

ध्यान दें:



**उदाहरण** - रामः शेते।

**सूत्रार्थ समन्वय** - रामः शेते स्थिति में यहाँ पदान्त विसर्ग है। उससे परे शर् शकार है। विसर्जनीयस्य सः सूत्र से नित्य सकार प्राप्त होने पर वा शरि प्रकृत सूत्र से विसर्ग को विकल्प से विसर्ग होता है। उससे रामः शेते सिद्धि होता है।

जब रामः शेते यहाँ विसर्गाभावपक्ष का प्रयोग किया जाता है तब विसर्जनीयस्य सः सूत्र से विसर्ग सकार करने पर रामस् शेते स्थिति होती है। तब- (आगे सूत्र में देखना चाहिए )

**पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र का प्रभावः** - विसर्गाभावपक्ष में रामः शेते यहाँ विसर्जनीयस्य सः उत्सर्ग सूत्र से सकार होता है। उससे रामस् शेते स्थिति होती है। यहाँ रामस् शब्द में यद्यपि पदान्त में सकार दिखाई देता है फिर भी ससजुषो रुः सूत्र से यहाँ पुन रुत्व नहीं होता है। कैसे यदि कोई कहता है तो अब रामस् यहाँ सकार का स विसर्जनीयस्य सः सूत्र से विहित है। ससजुषो रुः (8.2.66) विसर्जनीयस्य सः (8.3.34) ये दोनों सूत्र तीन पाद में हैं। तीन पाद में पूर्व के प्रति पर सूत्र असिद्ध होता है। अतः पूर्व विद्यमान ससजुषो रुः सूत्र के प्रति विसर्जनीयस्य सः सूत्र असिद्ध। अर्थात् ससजुषो रुः सूत्र दिखाई नहीं देता है अतः सकार है। वहां अब-

**उदाहरण** - रामः चिनोति स्थिति में विसर्ग है। उससे पर खर् चकार है। अतः विसर्जनीयस्य सः प्रकृत सूत्र से विसर्ग सकार होता है। उससे रामस् चिनोति होता है। तब -

## 8.5 स्तोः श्चुँना श्चुँः॥ ( 8.4.39 )

**सूत्रार्थ** - सकार तवर्ग का शकार चवर्ग के साथ योग होने पर शकार चवर्ग होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। तीन पद हैं। स् च तुः च इति स्तुः। तस्य स्तोः इति समाहार द्वन्द्व समासः। तुः इससे अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः ग्रहणकशास्त्रबल से त् थ् द् ध् न् तवर्ग को जानना चाहिए। स्तोः पद के सकार और तवर्ग अर्थ है। श् च चुः च इति श्चुः। तेन श्चुना। इति समाहार द्वन्द्व समासः। यहाँ चुः से च् छ् ज् झ् ञ् इति चवर्ग का ग्रहण। उससे श्चुना इसका शकारः और चवर्ग अर्थ है। श् च चुः च इति श्चुः इति समाहार द्वन्द्व समासः। तयोर्य्वावचि संहितायाम् (8.2.108) संहितायाम अधिकार है। सूत्रार्थ- सकार तवर्ग का शकार चवर्ग के योग में शकार चवर्ग होता है। स्थानित्व सकार और तवर्ग है। आदेशत्व शकार और चवर्ग है। स्थानी छ और आदेश छ। अतः यथासंख्यमनुदेशः समानाम् परिभाषा से आदेश क्रमशः से हो। सकार तवर्ग का और शकार चवर्ग से यथासंभवं योग होने पर सकार के स्थान में सकार, तवर्ग के स्थान में चवर्ग होता है। वह ही श्चुत्व कहलाता है।

स्तोः पद में और श्चुः पद में समाहार द्वन्द्व समास है और समाहार द्वन्द्व समास में पद नपुंसकलिङ्ग होता है। अतः स्तु और श्चु शब्द के रूप नपुंसकलिङ्ग में हो। उससे स्तुना श्चु यह ही रूप हो। किन्तु सूत्र में स्तोः और श्चुः पुल्लिंग में प्रयोग है। वह कैसे। कहते हैं - पाणिनिसूत्र वेदाङ्ग होते हैं। वहां नियम का अतिक्रमण भी होता है। सूत्रवश से पुंलिङ्ग है। तब वह यहाँ पुंलिङ्गम कहते हैं।

**उदाहरण** - रामश्शेते। रामश्चिनोति।

**सूत्रार्थ समन्वय** - रामस् शेते यहा स्तोः सकार का श्चुना शकार के साथ योग है। अतः सकार के स्थान में षष्ठी स्थानेयोगा परिभाषा बल से स्तोः श्चुना श्चुः प्रकृत सूत्र से शकार होता है। उससे रामश्शेते सन्धि कार्य होता है।

ध्यान दें:

रामस् चिनोति यहाँ स्तो: सकार का श्चुना चकार के साथ योग है। अत: सकार के स्थान में षष्ठी स्थानेयोगा परिभाषा बल से स्तो: श्चुना श्चु: प्रकृतसूत्र से शकार होता है। उससे रामश्चिनोति यहाँ सन्धि कार्य होता है।

इस उदाहरण में सकार का चकार के साथ योग है। स्तो: श्चुना योग: यहाँ यथासंख्य इसका प्रयोजन नहीं है स्पष्ट करने के लिए ही इस उदाहरण को यहाँ दिया गया है। स्तो: मध्य सकार प्रथम वर्ण, श्चुना यहाँ चकार द्वितीय वर्ण है। अत: योग विषय में यथासंख्य नहीं है ऐसा जानना चाहिए।

अब सच्चित् रूप भी स्तो: श्चुना श्चु: सूत्र का उदाहरण है। परन्तु वहां क्रमश: इससे भी अधिक सूत्रों की अपेक्षा है। अत: उस रूप की साधना के लिए जिस क्रम से सूत्र आते हैं उस क्रम से नीचे दिए जाते हैं। वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी अथवा लघुसिद्धान्तकौमुदी में इको यणचि अच्सन्धिसूत्रानन्तर अनचि च हल् सन्धिसूत्र को दिया है। उसके बाद झलां जश् झशि यह भी हल् सन्धिसूत्र से लिया। परन्तु प्रकरण अच्सन्धि ऐसा उल्लेख है। तो कैसे हल् सन्धिसूत्र भी वहां आये प्रश्न हैं तो उत्तर इस प्रकार दिया जाता है की एक शब्द का सम्पूर्ण रूप साधने के लिए जितने सूत्र आवश्यक है उतने दिए। वहां अच्सन्धिप्रकरण का सूत्र आवश्यक और कहीं हल् सन्धिप्रकरण का सूत्र आवश्यक है। तो सूत्रों का संकर अपरिहार्यकारण से किया। वैसे ही हल् सन्धिप्रकरण में विसर्गसन्धिप्रकरण के सूत्र आवश्यक होते हैं अपरिहार्यता के लिए। अत: जिस क्रम से कोई भी एक साधु रूप साधने के लिए जितने सूत्र आवश्यक हैं उतने यहां दिए। उससे सूत्रों का संकर यद्यपि हुआ फिर भी वह हटाया नहीं जा सकता है।

## 8.6 झलां जशोऽन्ते॥ ( 8.2.39 )

**सूत्रार्थ** - पदान्त में झलो के स्थान में जश होता है।

**सूत्रव्याख्या** - विधि सूत्र है। तीन पद हैं। झलाम् जश: अन्ते सूत्रगतपदच्छेद है। झलाम् (6/3), जश: (1/3), अन्ते (7/1)। पदस्य का अधिकार है। पदयोजना - पदस्य अन्ते झलां जश:। सूत्रार्थ- पदान्त में झलो के स्थान में जश होता है। झल् और जश् प्रत्याहार है। झल् स्थानी और जश् आदेश है। स्थानिसंख्या से आदेश संख्या भिन्न है। अत: स्थानेऽन्तरतम: परिभाषा बल से स्थानी से स्थान का अन्तरतम आदेश करना चाहिए।

**उदाहरण** - सत् चित् (सत्य और ज्ञान अर्थ) स्थिति में सत् शब्द का तकार पदान्त में है और वह झल् है। अत: प्रकृत सूत्र से तकार के स्थान में जश् होता है। तकार एक स्थानी, उसके स्थान में जश् - ज् ब् ग् ड् द् पांच आदेश हैं। स्थानी संख्या से आदेश संख्या विषम हैं। अत: इनमें से कौन-सी हो। तब स्थानेऽन्तरतम: परिभाषा से स्थानी द्वारा अन्तरतम आदेश करना चाहिए। नीचे आन्तर्य को कैसे जाना जाता है उसको प्रदर्शित करते हैं।

आन्तरतम्य परीक्षा - और आन्तर्य स्थान अर्थ गुण प्रमाण द्वारा चार प्रकार का होता है। प्रमाण यहाँ उच्चारणकाल। स्थानी उच्चारणकाल अर्धमात्रा, आदेश भी उच्चारणकाल अर्धमात्रा ही है। उससे कोई भी एक अन्तरतम कह नहीं सकते हैं।

गुण बाह्ययत्न है। तकार का बाह्ययत्न - विवार श्वास अघोष अल्पप्राण है। ज् ब् ग् ड् द् इनका बाह्ययत्न- संवार नाद घोष अल्पप्राण है। अत: इनमें से कोई भी एक अन्तरतम कह नहीं सकते हैं।

सामान्य रूप से वर्णों का कोई भी अर्थ यहाँ ग्रहण नहीं करता है। उससे अर्थकृत आन्तर्य की परीक्षा नहीं करते हैं।

ध्यान दें:



तकार का उच्चारणस्थान दन्त है। जकार का उच्चारणस्थान तालु, बकार का ओष्ठ, गकार का कण्ठ, डकार का मूर्धा, दकार का दन्त है। तकार का जो उच्चारणस्थान वह ही उच्चारणस्थान दकार का भी है। अत: तकार के स्थान में दकार से स्थानकृत आंतर्य प्राप्त होता है। उससे तकार के स्थान में दकार आदेश होता है। तब सद् चित् स्थिति होती है। यहाँ स्तो: दकार का श्चुना चकार से योग है। अत: स्तो: श्चुना श्चु: सूत्र से दकार के स्थान में यथासंख्यमनुदेश: समानाम् इति परिभाषा से जकार होता है। उससे सज् चित् स्थिति होती है। तब -

## 8.7 खरि च॥ ( 8.4.54 )

**सूत्रार्थ** - खर परे झलो को चर होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। दो पद है। खरि सप्तमी एकवचन। च अव्ययपद। झलां जश् झशि सूत्र से झलाम् षष्ठी बहुवचनान्त पद की अनुवृति है। अभ्यासे चर्च सूत्र से चर् प्रथमा एकवचनान्त पद की अनुवृति है, उसका प्रथमा बहुवचनत्व से चर में व्यत्य होता है। पद योजना - खरि झलाम् चर:। सूत्रार्थ- खर परे झलो के स्थान में चर होता है।

**उदाहरण** - सत् चित् स्थिति में झलां जशोऽन्ते सूत्र से तकार को दकार करने पर सद् चित् स्थिति होती है। वहा भी स्तो: श्चुना श्चु: सूत्र से दकार को जकार करने पर सज् चित् स्थिति होती है। वहां जो झल् जकार उससे पर खर् चकार है। अत: खरि च सूत्र से जकार के स्थान में चर्- च् ट् त् क् प् श् ष् स् इनमें से अन्यतम का विधान करते हैं। स्थानी आदेश की संख्या वैषम्य है। अत: स्थानेऽन्तरतम: परिभाषा से यहाँ नियम करना चाहिए। स्थानी के सदृशतम आदेश करना चाहिए और सादृश्य से स्थान अर्थ गुण प्रमाणकृत् चार प्रकार का होता है। अत: आन्तर्य से यहाँ क्या ग्रहण है। झलां जशोऽन्ते सूत्र में विस्तार सहित व्याख्या है। यहाँ संक्षिप्त में कहते हैं।

यहाँ सभी आदेशों में अर्धमात्राकालिक प्रमाण समान है, गुण अर्थात् बाह्ययत्न समान, वर्ण का कोई भी अर्थ नहीं है। अत: प्रमाणकृद् गुणकृद् और अर्थकृत् आन्तर्य सम्भव नहीं है। स्थानकृद आन्तर्य अवशिष्ट की परीक्षा करते हैं। स्थानी जकार, उसका उच्चारण स्थान तालु। आदेशों में चकार और शकार का उच्चारण स्थान तालु है। श् ष् स् इनके स्थान में श् ष् स् ही क्रमश: होते हैं ऐसी व्यवस्था है। अत: जकार के स्थान में चकार ही आदेश होता है। तब सच् चित् होता है। वर्ण मिलान करने से सच्चित् इष्ट साधु रूप निष्पन्न होता है।

**यहाँ यह जानना चाहिए** - सत् चित् स्थिति में प्रथम स्तो: श्चुना श्चु: (8.4.39) सूत्र क्यों नहीं प्रवृत्त हुआ। अथवा खरि च (8.4.54) सूत्र आदि में क्यों नहीं लगा। वहां उत्तर है कि असिद्धकाण्ड में पूर्वसूत्र के प्रति परसूत्र असिद्ध है। परसूत्र से किया कार्य पूर्वसूत्र की दृष्टि से नहीं है। अत: असिद्धकाण्ड में जिस क्रम से सूत्र अष्टाध्यायी में उपस्थित किए हैं उस क्रम से उनकी प्रवृत्ति होती है। अत: सत् चित् स्थिति में सबसे आदि में असिद्धकाण्ड में झलां जशोऽन्ते (8.2.39) सूत्र प्रवृत्त है। उससे तकार का जश् दकार होता है। तब सद् चित् स्थिति होती है। यहाँ भी स्तो: श्चुना श्चु: (8.4.39) और खरि च (8.4.54) दोनों की एक साथ प्राप्ति है। परन्तु स्तो: श्चुना श्चु: (8.4.39) सूत्र असिद्धकाण्ड में पूर्व है, खरि च (8.4.54) इति पर है। अत: पूर्वसूत्र स्तो: श्चुना श्चु: (8.4.39) की यहाँ प्रवृत्ति आदि में होती है। उससे स्तु दकार का श्चु जकार होता है। तब सज् चित् स्थिति होती है। यहाँ पदान्त में झल् जकार है। अत: पुन झलां जशोऽन्ते (8.2.39) प्रवृत्त है। क्योकि झलां जशोऽन्ते (8.2.39) सूत्र के प्रति स्तो: श्चुना श्चु: (8.4.39) सूत्र असिद्ध है। अत: झलां जशोऽन्ते (8.2.39) सूत्र की दृष्टि से वहां जकार नहीं है। वहां दकार ही है। अत: झलां जशोऽन्ते (8.2.39) सूत्र पुन: प्रवृत्ति चाहता है। और अन्त में खरि

ध्यान दें:

च (8.4.54) सूत्रदृष्टि से स्तो: श्चुना श्चु: (8.4.39) सूत्र सिद्ध है। अत: खरि च (8.4.54) प्रवृत्त होता है। उससे जकार के स्थान में खर् चकार का विधान करते हैं। अत: सच्चित् रूप निष्पन्न होता है।

## 8.8 शात्।। ( 8.4.43 )

**सूत्रार्थ** - शात् परे तवर्ग को चवर्ग नहीं होता है।

**सूत्र व्याख्या** - निषेध सूत्र है। शात् एक ही पञ्चमी एकवचनान्त पद है। तो: षि सूत्र से तो: षष्ठ्यन्त पद की अनुवृति है। न पदान्ताट्टोरनाम् सूत्र से न अव्यय पद की अनुवृति है। स्तो: श्चुना श्चु: सूत्र से चु: प्रथमान्त पद की अनुवृति। पद योजना - शात् तो: चु: न। सूत्रार्थ होता है - शात् परे तवर्ग को चवर्ग नहीं होता है।

**उदाहरण** - विश्न:। प्रश्न:।

**सूत्रार्थ समन्वय** - विच्छ्-धातु से नङ्-प्रत्ययोग से विच्छ्+न होने पर छकार के स्थान में शकार करने पर विश् न स्थिति होती है। तब स्तो: श्चुना श्चु: सूत्र से नकार को ञकार प्राप्त होने पर शकार से पर तवर्ग का सत्त्व होने से शात् सूत्र से निषेध होता है। उससे विश्न: रूप निष्पन्न होता है। गति अथवा प्रवेश उसका अर्थ है।

प्रच्छ्-धातु से नङ्-प्रत्ययोग में प्रच्छ्+न स्थिति होने पर छकार को शकार करने पर (छकार के अभाव में तुक चकार भी नहीं रहता है।) प्रक्रिया द्वारा प्रश् न स्थिति होती है। तब स्तो: श्चुना श्चु: सूत्र से नकार को ञकार प्राप्त होने पर शकार से परे तवर्ग को सत्त्व होने से शात् सूत्र से निषेध होता है। उससे प्रश्न: रूप निष्पन्न होता है।

### पाठगत प्रश्न-1

1. ससजुषो रु: सूत्र का अर्थ लिखें?
2. खरवसानयोर्विसर्जनीय: सूत्र में किसके द्वारा तदन्तविधि होती है?
3. अवसान में रेफ को विसर्ग किस सूत्र से होता है?
4. कब विसर्ग को विसर्ग विकल्प से होता है और किस सूत्र से?
5. स्तो: श्चुना श्चु: सूत्र में किनको यथासंख्य है?
6. स्तो: श्चुना श्चु: सूत्र में किस किसको यथासंख्य नहीं है?
7. सत् चित् स्थिति में प्रथम ही स्तो: श्चुना श्चु: सूत्र प्रवृत्त होता है अथवा नहीं?
8. तकार को चु के योग में चुत्व क्यों नहीं?
9. प्रश्न: यहाँ स्तो: श्चुना योग में भी श्चुत्व क्यों नहीं?
10. रामस् चेष्टते इससे पर प्रथम कौन-सा सूत्र प्रवृत्त है?

    1) ससजुषो रु:

    2) खरवसानयोर्विसर्जनीय:

ध्यान दें:



3) खरि च

4) झलां जशोऽन्ते

11. रामस् चेष्टते यहाँ क्रम से ये कार्य होते हैं तो रामश्चेष्टते रूप बन जाता है?

1) रुत्वम् - विसर्जनीयः - सः - श्चुत्वम्

2) विसर्जनीयः - रुत्वम् - सः - श्चुत्वम्

3) श्चुत्वम् - रुत्वम् - सः - विसर्जनीयः

4) ष्टुत्वम् - श्चुत्वम् - रुत्वम् - जश्त्वम्

12. झलां जशोऽन्ते यहाँ किसके अन्त में, किसको क्या होता है?

1) झलाम् अन्ते पदस्य जश् भवति।

2) पदस्य अन्ते जशः झल् भवति।

3) जशः अन्ते स्तोः झल् भवति।

4) पदस्य अन्ते झलः जश् भवति।

13. वणिज् छात्रः स्थिति में प्रथम कौन-सा सूत्र प्रवृत होता है?

1) चोः कुः

2) खरि च

3) झलां जशोऽन्ते

4) वा पदान्तस्य

## 8.9 ष्टुना ष्टुः॥ ( 8.4.40 )

**सूत्रार्थ** - सकार तवर्ग का षकार टवर्ग के साथ योग होने पर षकारटवर्ग होता है।

**सूत्रव्याख्या** - विधिसूत्र है। दो पद हैं। ष् च टुः च ष्टुः, तेन ष्टुना द्वन्द्वसमास है। ष् च टुः च इति ष्टुः द्वन्द्वसमास, वह यहाँ पुल्लिङ्ग में है। स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से स्तोः षष्ठ्यन्त पद की अनुवृति है। स् च तुः च स्तुः, तस्य स्तोः द्वन्द्व समास है। पदयोजना - स्तोः ष्टुना ष्टुः। सूत्रार्थ होता है- सकार तवर्ग का षकार टवर्ग के साथ योग होने पर षकार टवर्ग होता है-

तवर्ग का षकार के साथ योग है तो ष्टुना ष्टुः सूत्र से प्राप्त ष्टुत्व तोः षि सूत्र से निषेध करता है। तवर्ग का षकार के साथ योग होने पर ष्टुत्व तब ही प्राप्त हो सकता है, यदि स्तोः ष्टुना योग विषय में यथासंख्य नहीं है। अर्थात् सकार तवर्ग का षकार टवर्ग के साथ यथासम्भव योग होता है, वहां यथासंख्य नहीं है ऐसा तोः षि सूत्रारम्भ पाणिनिमुनि ज्ञापित करते हैं-

**उदाहरण** - देवष्षडाननः।

**सूत्रार्थसमन्वय** - देवशब्द का सुप्रत्यय योग से देवस् षडाननः स्थिति होती है। वहां ससजुषो रुः

ध्यान दें:

सूत्र से रुत्व होता है। उससे देवर् षडानन: होता है। खरवसानयोर्विसर्जनीय: सूत्र से विसर्ग करने पर देव: षडानन: होता है।

देव: षडानन: स्थिति में यहाँ पदान्त विसर्ग है। उससे पर शर् षकार है। विसर्जनीयस्य स: सूत्र से नित्य सकार प्राप्त होने पर वा शरि विसर्ग को विकल्प से विसर्ग होता है। उससे देव: षडानन: सिद्धि होता है।

विसर्ग अभावपक्ष में तो देव: षडानन: यहाँ विसर्जनीयस्य स: उत्सर्ग सूत्र से सकार होता है। उससे देवस् षडानन: स्थिति होती है। यहा स्तो सकार का ष्टुना षकार के साथ योग है। अत: ष्टुना ष्टु: सूत्र से सकार को षकार करने पर देवष्षडानन: साधु रूप बनता है।

गीतायाष्टीका। गीतायास् टीका स्थिति में ससजुषो रु: सूत्र से रुत्व होने पर गीतायार् टीका स्थिति में खरवसानयोर्विसर्जनीय: सूत्र से रेफ को विसर्ग होने पर गीताया: टीका स्थिति होती है। उसके बाद विसर्जनीयस्य स: सूत्र से विसर्ग को सकार करने पर गीतायास् टीका होती है। वहा स्तो: सकार का ष्टुना टकार के साथ योग है। अत: ष्टुना ष्टु: सूत्र से सकार का यथासंख्यमनुदेश: समानाम् परिभाषा बल से षकार करने पर गीतायाष्टीका साधु रूप निष्पन्न होता है।

स्तो का ष्टुना से योग यहाँ यथासंख्य इसका प्रयोजन नहीं है स्पष्ट करने के लिए ही यह उदाहरण यहाँ दिया गया है। स्तो: मध्य में सकार प्रथम वर्ण, ष्टुना यहाँ टकार द्वितीय वर्ण है। फिर भी ष्टुना ष्टु: सूत्र प्रवृत है। अत: योगविषय में यथा संख्य नहीं है ऐसा जानना चाहिए।

## 8.10 न पदान्ताट्टोरनाम्॥ ( 8.4.41 )

**सूत्रार्थ** - पदान्त टवर्ग से परे नामवयवभिन्न स्तु को ष्टु नहीं होता है।

**सूत्र व्याख्या** - निषेध सूत्र है। चार पद हैं। न पदान्तात् टो: अनाम् सूत्र में उपस्थित पदों का संधि विच्छेद है। न अव्ययपद है। पदस्य अन्त: पदान्त:, तस्मात् पदान्तात् इति षष्ठीतत्पुरुष: समास:। टो: इति टु शब्द का पञ्चमी एकवचन। अनाम् यद्यपि प्रथमा एकवचन के समान है फिर भी अनाम् प्रातिपदिक षष्ठ्यन्त का पद है। परन्तु वहा षष्ठी लुप्त है। अत: लुप्त षष्ठी पद कहलाता है और इस पद का नाम अवयव भिन्न अर्थ है। अर्थात् नाम् इसका जो अवयव नकार, उससे भिन्न जितना। स्तो: श्चुना श्चु: सूत्र से स्तो: षष्ठ्यन्त पद की अनुवृति है। स् च तु: स्तु:, तस्य स्तो: इति द्वन्द्व समास:। ष्टुना ष्टु: सूत्र से ष्टु: प्रथमान्त पद की अनुवृति है। ष् च टु: च ष्टु: द्वन्द्व समास। पद योजना - न पदान्तात् टो: अनाम् स्तो: ष्टु:। सूत्रार्थ - पदान्त टवर्ग से परे नाम अवयवभिन्न स्तु को ष्टु नहीं होता है।

**उदाहरण** - षट् सन्त:।

**सूत्रार्थसमन्वय** - षष् प्रातिपदिक का षड् प्रथमान्त रूप है। षड् सन्त: स्थिति में स्तो: सकार का ष्टुना डकार के साथ योग है। वहां ष्टुना ष्टु: सूत्र से सकार को ष्टुत्व षकार प्राप्त है। परन्तु यहाँ पदान्त टवर्ग डकार है। उसके बाद स्तु सकार है। अत: न पदान्ताट्टोरनाम् सूत्र से निषेध होता है। षकार नहीं होता है। उसके बाद झल डकार से परे खर् सकार है। अत: खरि च सूत्र से डकार के स्थान में स्थान आन्तर्य से टकार होता है। तब षट् सन्त: साधु रूप निष्पन्न होता है।

### 8.10.1 ) अनाम्नवति-नगरीणामिति वाच्यम्। ( वार्तिकम् )

**वार्तिकार्थ** - न पदान्ताट्टोरनाम् सूत्र से किया गया निषेध नाम् शब्द का अवयव को छोड़कर

ध्यान दें:



अन्यत्र होता है। स्तो के ष्टुत्व का निषेध नाम् यहाँ पर जैसा नहीं होता है वैसा नवति नगरी शब्दों का भी निषेध नहीं होता है। अर्थात् ष्टुना ष्टुः सूत्र से नाम् नवति नगरी तीनों का ष्टुत्व होता है यह वार्तिक का भाव है।

**उदाहरण** - षण्णाम्। षण्णवति। षण्णगर्यः।

**वार्तिकार्थ समन्वय** - षष् प्रातिपदिक का षष्ठी बहुवचनान्त रूप षण्णाम् है। वहा रूपसाधनक्रम में षष् आम् स्थिति होने पर नुडागम करने पर षष् नाम् होता है। वहां झलां जशोऽन्ते सूत्र से पदान्त षकार का स्थानकृद आन्तर्य से डकार करने पर षड् नाम् स्थिति होती है। वहां अब स्तोः नकार का ष्टुना डकार के साथ योग है। अतः ष्टुना ष्टुः सूत्र से नकार का ष्टुत्व करने पर यथासंख्यमनुदेशः समानाम् परिभाषा से णकार करने पर षड् णाम् होता है। प्रत्यये भाषायां नित्यम् वार्तिक है। उससे डकार को नित्य णकार होता है। इस प्रकार षण्णाम् रूप सिद्ध होता है।

न पदान्ताट्टोरनाम् सूत्र से किया ष्टुत्वनिषेध अनाम् पदवश से नाम् अंश में नहीं होता है। और ष्टुत्व होता है।

षडधिका नवतिः विग्रह करने पर, ततः समास करने पर षड् नवतिः स्थिति होती है। वहां स्तो के नकार का ष्टुना डकार के साथ योग है। अतः ष्टुना ष्टुः सूत्र से नकार का ष्टुत्व णकार प्राप्त होने पर न पदान्ताट्टोरनाम् सूत्र से उसका निषेध प्राप्त होता है। परन्तु अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् वार्तिक में नवतिशब्द का उपादान किया है। उससे ष्टुना ष्टुः सूत्र से निर्बाध ष्टुत्व होता है। तब षड् णवतिः स्थिति होती है। उसका प्रक्रिया से षण्णवतिः रूप निष्पन्न होता है।

## 8.11 तोः षि॥ ( 8.4.42 )

**सूत्रार्थ** - तवर्ग का षकार परे ष्टुत्व नहीं होता है।

**सूत्रव्याख्या** - निषेध सूत्र है। दो पद है। तोः (6/1), षि (7/1)। न पदान्ताट्टोरनाम् सूत्र से न अव्ययपद की अनुवृति है। ष्टुना ष्टुः सूत्र से ष्टुः प्रथमान्त पद की अनुवृति है। ष् च टुः च ष्टुः इति द्वन्द्व समासः। पदयोजना - तोः ष्टुः न षि। सूत्रार्थ- तवर्ग का षकार परे ष्टुत्व नहीं होता है। अर्थात् यदि तवर्ग से पर षकार है तो ष्टुना ष्टुः सूत्र से प्राप्त ष्टुत्व नहीं होता है।

**उदाहरण** - सन् षष्ठः।

**सूत्रार्थ समन्वय** - अस्-धातु का शतृ प्रत्यय योग पुंलिङ्ग प्रथमा एकवचन में है सन्। सन् षष्ठः स्थिति में स्तोः नकार का ष्टुना षकार से योग है। अतः ष्टुना ष्टुः सूत्र से यहाँ स्तोः नकार का ष्टुत्व णकार प्राप्त होता है। परन्तु तोः षि प्रकृत सूत्र से उसका निषेध होता है। और सन् षष्ठः यह ही रूप साधु सिद्ध होता है।

अपवाद - ष्टुना ष्टुः (8.4.41) तोः षि (8.4.43) ये दोनों सूत्र असिद्धकाण्ड में है। किन्तु तोः षि सूत्र ष्टुना ष्टुः (8.4.41) सूत्र से परे है। अतः ष्टुना ष्टुः (8.4.41) सूत्र के प्रति तोः षि (8.4.43) सूत्र को पूर्वत्रासिद्धम् (8.2.1) सूत्र से असिद्ध है। तोः षि (8.4.43) इससे निषेध करने पर भी ष्टुना ष्टुः (8.4.41) सूत्र प्रवृत्ति चाहता है। यदि प्रवृत होता है तो तोः षि (8.4.43) सूत्र व्यर्थ होता है। किन्तु पाणिनी ने कोई भी सूत्र व्यर्थ नहीं बनाया है। अतः वचनप्रमाण्य से ष्टुना ष्टुः (8.4.41) इसका तोः षि (8.4.43) सूत्र अपवाद होता है। और अपवाद असिद्ध नहीं होता है।

ध्यान दें:

## पाठगत प्रश्न-2

14. ष्टुना ष्टुः सूत्र का अर्थ लिखें?

15. ष्टुना ष्टुः सूत्र में किनका यथासंख्य है?

16. ष्टुना ष्टुः सूत्र में किनका यथासंख्य नहीं है?

17. कब स्तो को ष्टु नहीं होता है?

18. षण्णाम् यहाँ पदान्त टवर्ग से परे स्तो का ष्टुत्व निषेध होने पर भी कैसे?

19. सन् षष्ठः यहाँ पर स्तोः ष्टुना योग होने पर भी ष्टुत्व कैसे।

20. ष्टुना ष्टुः इसका निषेध सूत्र क्या है।

    1) तोः षि

    2) शात्

    3) खरि च

    4) झलां जशोऽन्ते

21. इनमें से कौन-सा निषेध सूत्र नहीं है।

    1) तोः षि

    2) शात्

    3) न पदान्ताट्टोरनाम्

    4) खरि च

## 8.12 यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा॥ ( 8.4.44 )

**सूत्रार्थ** - पदान्त यर का अनुनासिक परे अनुनासिक विकल्प से होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। चार पद हैं। यरः अनुनासिके अनुनासिकः वा सूत्रगतपदच्छेद है। यरः (6/1), अनुनासिके (7/1), अनुनासिकः (1/1), वा अव्यय पद है। न पदान्ताट्टोरनाम् सूत्र से पदान्ताद् पञ्चम्यन्त पद की अनुवृति है और वह पदान्तस्य षष्ठ्यन्त से विपरिणाम हो जाती है। तब पद योजना होती है - यरः पदान्तस्य अनुनासिके अनुनासिकः वा। सूत्रार्थ - पदान्त यर को अनुनासिक परे अनुनासिक विकल्प से होता है।

**विवृति** - अनुनासिक परे यर के स्थान में अनुनासिक होता है। स्थानी यर् और आदेश अनुनासिक है। वहा अनुनासिका कौन है। रेफ ऊष्माण सवर्ण नहीं होते हैं, अर्थात् रेफ का और श् ष् स् ह् इनका सवर्ण नहीं है, रेफ अथवा श् ष् स् ह् अनुनासिक नहीं होते हैं। य् यँ् व् वँ् ल् लँ् य व् ल का अनुनासिका है। परन्तु किसी भी पद के अन्त में यवला नहीं होते हैं। अतः उनके स्थान में ही अनुनासिक नहीं होता है। सभी स्वरों का अनुनासिक है। इस प्रकार केवल सभी स्वर यँ् वँ् लँ् ञ् म् ङ् ण् न् ये ही अनुनासिक

ध्यान दें:



हैं। उनमें से कौन-सा हो स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से निर्णय करना चाहिए। चवर्ग को छोड़कर वर्गों का पञ्चम वर्ण परे, पदान्त में वर्तमान वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्ण के स्थान में उस वर्ण का तीसरा अथवा पांचवा वर्ण होता है ऐसा अर्थ जानना चाहिए।

**उदाहरण** - एतन्मुरारिः एतद्मुरारिः।

**सूत्रार्थ समन्वय** - एतस्य मुरारिः षष्ठी तत्पुरुष समास है। अथवा एष मुरारिः कर्मधारय समास है। समास करने पर एतद् मुरारिः स्थिति होती है। एतद् दकारान्त सर्वनाम है। समास करने पर समास पदों में विभक्ति का लुक् होता है। वैसे भी प्रत्यय लोपे प्रत्यय लक्षणम् परिभाषा से प्रत्यय लक्षण करने पर एतद् सुबन्त है। अतः सुप्तिङन्तं पदम् इससे उसकी पद संज्ञा होती है। अतः एतद् पद के अन्त में विद्यमान यर् दकार है। उसके बाद मुरारिशब्द का मकार अनुनासिक है। अतः अनुनासिक परे यर दकार के स्थान में अनुनासिक का विधान करते हैं। वहां अचः यँ वँ लँ ञ् म् ङ् ण् न् ये अनुनासिक उपलब्ध हैं। उनमें स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से दकार के स्थान में अन्तरतम आदेश करना चाहिए। अतः यहाँ आन्तरतम्य परीक्षा करनी चाहिए। वह यहाँ दिखाई जाती है।

**आन्तरतम्यपरीक्षा** -

**प्रमाणकृदान्तर्य है अथवा नहीं** - प्रमाण यहाँ उच्चारण काल। दकार अर्धमात्रिक, आदेश में एकाधिक अर्धमात्रिका है। अतः कोई भी प्रमाण से अन्तरतम नहीं है।

अर्थकृदान्तर्य है अथवा नहीं- वर्णों का कोई भी अर्थ नहीं है। समुदाय ही अर्थवान् तस्यैकदेशोऽनर्थकः न्याय से। अतः अर्थ से आन्तर्य का विचार नहीं करते हैं।

**गुणकृदान्तर्य है अथवा नहीं**- गुण यहाँ बाह्यत्न है। दकार का बाह्यत्न संवार नाद घोष अल्पप्राण है। आदेशों में अच को छोड़कर सभी बाह्यत्न संवार नाद घोष अल्पप्राण हैं। अतः कोई भी एक गुण से अन्तरतम नहीं है।

**स्थानकृद आन्तर्य है अथवा नहीं** - दकार का उच्चारणस्थान दन्त है। आदेशों में ऌतुलसानां दन्ताः वचन से घँ लँ न् इनका उच्चारणस्थान भी दन्त ही है। इनमें नकार ही अन्तरतम है। अतः दकार के स्थान में नकार होना चाहिए। उससे एतन्मुरारिः रूप सिद्ध होता है।

## 8.12.1 ) प्रत्यये भाषायां नित्यम्। ( वार्तिकम् )

**वार्तिकार्थ** - पाणिनिमुनि लौकिक संस्कृत भाषा में ही भाषा इसका प्रयोग करते हैं। लौकिक संस्कृत भाषा में अनुनासिकादि-प्रत्यय परे पदान्त यर को नित्य अनुनासिक होता है। यहाँ परत्व से गृहीत प्रत्यय उसका आदि वर्ण अनुनासिक हैं तो यह वार्तिक प्रवृत होता है।

**उदाहरण** - तन्मात्रम्। चिन्मयम्।

**समन्वय** - तत् प्रमाणं यस्य विग्रह। तद् दकारन्त सर्वनाम से पर मात्रच्-तद्धितप्रत्यय विहित होने पर तद् मात्रम् स्थिति होती है। वहां मात्रच् अनुनासिकादिप्रत्यय है। तद्धितप्रत्यय सुबन्त से ही होते हैं। अतः तद् सुबन्त है। वहां सुप का लुक् होता है। फिर भी प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् परिभाषा से प्रत्ययलक्षण करके तद् की पदसंज्ञा सिद्ध होती है। अतः यहाँ तद् इसका दकार पदान्त है। दकार के स्थान में यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा सूत्र से विकल्प से अनुनासिक प्राप्त होने पर इस वार्तिक से नित्य अनुनासिक का विधान करते हैं। तब दकार के स्थान में स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से दकार से अन्तरतम नकार ही आदेश होता है। उससे तन्मात्रम् साधु रूप निष्पन्न होता है।

ध्यान दें:

चिद् एव विग्रह है। चित् सुबन्तपद से पर स्वार्थ में मयट् तद्धित प्रत्यय का विधान करते हैं। तब चित् मय स्थिति है। पूर्व के समान ही चित् इसकी पदसंज्ञा होती है। इस प्रकार झलां जशोऽन्ते परिभाषा से तकार के स्थान में स्थान आन्तर्य से दकार होता है। तब चिद् मय ऐसा होता है। तब दकार के स्थान में यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा सूत्र से विकल्प से अनुनासिक प्राप्त होने पर इस वार्तिक से नित्य अनुनासिक विधान करते हैं। तब दकार के स्थान में स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से दकार से अन्तरतम नकार ही आदेश होता है। उससे तन्मय होने पर प्रक्रिया से न्मयम् साधु रूप निष्पन्न होता है।

## 8.13 तोर्लि॥ ( 8.4.59 )

**सूत्रार्थ** - लकार परे तवर्ग को परसवर्ण होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं। तोः लि सूत्र में उपस्थित पदों का सन्धिच्छेद है। तोः (6/1), लि (7/1)। अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः सूत्र से परसवर्णः प्रथमान्त पद की अनुवृति है। परस्य सवर्णः परसवर्णः षष्ठी तत्पुरुषः समास है। सूत्रार्थ - लकार परे होने पर तवर्ग को परसवर्ण होता है। यहाँ तवर्ग के स्थान में जो आदेश विधीयमान है वहां पर लकार का सवर्ण हो। लकार का ल् ल्ँ दोनों ही सवर्ण है।

**उदाहरण** - तल्लयः। विद्वानलिखति।

**सूत्रार्थ समन्वय** - तस्मिन् लय सप्तमीतत्पुरुष है। अथवा तस्य लयः षष्ठी तत्पुरुष है। समास करने पर तद् लयः स्थिति होती है। तवर्ग दकार से पर लकार है। अतः तोर्लि सूत्र से दकार के स्थान में लकार को सवर्ण का विधान है। स्थानी दकार अननुनासिक है। स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से अननुनासिक दकार से अन्तरतम अननुनासिक लकार ही आदेश हो। उससे तल्लयः साधु रूप बनता है।

विद्वान् लिखति वाक्य है। वाक्य में संहिता की विवक्षा है तो यहाँ तोः नकार परे लिखति शब्द का लकार है। अतः तोर्लि सूत्र से नकार के स्थान में पर लकार का सवर्ण विधान होता है। स्थानी नकार अनुनासिक है। अतः स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से अनुनासिक नकार से अन्तरतम अनुनासिक लकार ही हो। उससे विद्वानलिखति साधु रूप निष्पन्न होता है।

यह यहाँ जानना चाहिए की विद्वानलिखति विद्वानलिखति दोनों भेद है। विद्वानलिखति रूप में अनुनासिक आकार है, लकार नहीं है। विद्वानलिखति रूप में तो ल् अनुनासिक है। अतः यह ही इष्ट रूप है, विद्वानलिखति नहीं है।

### पाठगत प्रश्न-3

22. एतन्मुरारिः यहाँ दकार को नकार किस सूत्र से होता है?
23. तोर्लि सूत्र का अर्थ लिखें?
24. चित् मयम् स्थिति में सन्धि कितने प्रकार होती है?
25. प्रत्यये भाषायां नित्यम् सूत्र का अर्थ लिखें?
26. तोर्लि सूत्र का उदाहरण लिखें?

ध्यान दें:



## 8.14 उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य॥ ( 8.4.60 )

**सूत्रार्थ** - उद के पर स्था-स्तम्भ को पूर्वसवर्ण होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधिसूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं। उदः उद् उपसर्ग का पञ्चमी एकवचनान्त पद है। स्थास्तम्भोः षष्ठीद्विवचन है। पूर्वस्य षष्ठी एकवचन। अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः सूत्र से सवर्णः प्रथमान्त पद की अनुवृति है। पदयोजना - उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य सवर्णः।

**सूत्रार्थ निष्पादन** - उदः यहाँ जो पञ्चमी वह दिग्योग पञ्चमी कहलाता है। उसके होने पर तस्मादित्युत्तरस्य परिभाषा से उद् इससे अव्यवहितपर को कार्य होता है। उदः पञ्चमी निर्देश होने से कार्य विहित है। किन्तु स्थास्तम्भोः षष्ठी है। अतः उद से पर को कार्य विहित स्पष्ट है। पर सम्पूर्ण स्था अथवा स्तम्भ् दोनों के स्थान में कार्य को प्राप्त होता है। अथवा अलोऽन्त्यस्य परिभाषा से स्था स्तम्भ के अंतिम अल को आदेश प्राप्त होता है। उसका अपवाद होने से प्रबाध आदि के पर को परिभाषा के साथ अर्थ होता है की स्था स्तम्भ् इन दोनों के आदि अल के स्थान में आदेश होता है।

आदेश कौन है। वहां कहते हैं पूर्व का सवर्ण आदेश हो। पूर्व दकार है। उसको सवर्ण आदेश हो। दकार के त् थ् द् ध् न् पांच सवर्ण हैं। उनमें से कौन-सा हो। तब स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से स्था स्तम्भ् दोनों के आदिवर्ण सकार हैं, उसको अन्तरतम आदेश हो। अतः आन्तरतम परीक्षा इष्ट है। सूत्रार्थ - उद से पर स्था-स्तम्भ के आदि में पूर्वसवर्ण होता है यहाँ आन्तरतम्य परीक्षा करनी चाहिए। वह यहाँ प्रदर्शित करते हैं।

### आन्तरतम्य परीक्षा-

**स्थानकृद आन्तर्य है अथवा नहीं** - सकार का उच्चारणस्थान दन्त है। आदेश में ऌतुलसानां दन्ताः वचन से दकार को सवर्ण त् थ् द् ध् न् इन पांच का उच्चारण स्थान भी दन्त ही है। अतः सकार से सदृशतम उनमें कोई एक प्राप्त नहीं होता है। सभी समान हैं।

**प्रमाणकृद आन्तर्य है अथवा नहीं** - प्रमाण यहाँ उच्चारण काल है। सकार अर्धमात्रिक, आदेशों में त् थ् द् ध् न् ये सभी अर्धमात्रिका है। अतः कोई भी प्रमाण से अन्तरतम नहीं है।

**अर्थकृद आन्तर्य है अथवा नहीं** - वर्णों का कोई भी अर्थ नहीं होता है। समुदाय ही अर्थवान् उसका एक भाग अनर्थक है इस न्याय से। अतः अर्थ से आन्तर्य का विचार नहीं करते हैं।

**गुणकृद आन्तर्य है अथवा नहीं** - गुण यहाँ बाह्ययत्न है।

| **वर्ण** | **बाह्ययत्न** | | | |
|---|---|---|---|---|
| **स्** | **विवार** | **श्वास** | **अघोष** | **महाप्राण** |
| त् | विवार | श्वास | अघोष | अल्पप्राण |
| **थ्** | **विवार** | **श्वास** | **अघोष** | **महाप्राण** |
| द् | संवार | नाद | घोष | अल्पप्राण |
| ध् | संवार | नाद | घोष | महाप्राण |
| न् | संवार | नाद | घोष | अल्पप्राण |

ध्यान दें:

अतः सकार के सदृश बाह्यप्रयत्न केवल थकार का ही है। अतः सकार के स्थान में दकार का सवर्ण थकार ही आदेश हो सकता है।

अतः उद् स्थानम्, उद् स्तम्भनम् यहाँ पर सकार का स्थान में थकारे परे उद् थ्थानम्, उद् थ्तम्भनम् स्थिति होती है। तब-

## 8.15 झरो झरि सवर्णे॥ ( 8.4.64 )

**सूत्रार्थ** - हल के पर झर का विकल्प से लोप होता है सवर्ण झर परे।

**सूत्रव्याख्या** - विधिसूत्र है। तीन पद हैं। झरः झरि सवर्णे सूत्रगतपदच्छेद है। झरः (6/1), झरि (7/1), सवर्णे (7/1)। हलो यमां यमि लोपः सूत्र से हलः पञ्चम्यन्त पद, और लोपः प्रथमान्त पद की अनुवृति है। झयो होऽन्यतरस्याम् सूत्र से अन्यतरस्याम अव्ययपद की अनुवृति है। अन्यतरस्याम् इस अव्यय का विभाषा अथवा विकल्प से अर्थ होता है। तब पदयोजना - हलः झरः झरि सवर्णे लोपः अन्यतरस्याम्। सूत्रार्थ - हल परे झर का विकल्प से लोप होता है सवर्ण झर परे। अर्थात् क्रम से हल्+झ+सर्वर्णझ स्थिति होती है तो पूर्वझर का लोप विकल्प से होता है।

**उदाहरण** - उद् थ् थानम्, उद् थ् तम्भनम्। यहाँ हल् दकार है। तत पर थकार झ है। थकार से पर थकार और तकार सवर्ण झ है। अतः झरो झरि सवर्णे सूत्र से दकार से पर थकार का विकल्प से लोप होता है। तब-

| **लोपपक्ष में** | **लोप अभावपक्ष में** |
|---|---|
| उद् थानम्, | उद् थ् थानम् |
| उद् तम्भनम् | उद् थ् तम्भनम् |

स्थिति होती है। वहा अब खरि च सूत्र से दकार से पर खर् चार रूपों में है। अतः सभी जगह दकार के स्थान में स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से स्थान से अन्तरतम चर् तकार ही होता है तब-

| **लोपपक्ष में** | **लोप अभावपक्ष में** |
|---|---|
| उत् थानम् - उत् थ् थानम् | उत् थ् थानम् - उत्थ्थानम् |
| उत् तम्भनम् - उत्तम्भनम् | उत् थ् तम्भनम् - उत्थ्तम्भनम् |

इस प्रकार लोपपक्ष में उत्थानम् उत्तम्भनम् दोनों रूप होते हैं और लोप अभावपक्ष में उत्थ्थानम् उत्थ्तम्भनम् दोनों रूप होते हैं।

**विस्तार - ( परीक्षा के लिए नहीं है )** - उद् थानम् इत्यादि स्थिति में लोप और लोप अभाव में जो स्थिति होती है वहा खरि च ( 8.4.54) सूत्र दृष्टि से लोपविधायक झरो झरि सवर्णे (8.4.64) भी थकार विधायक उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य (8.4.60) दोनों सूत्र असिद्ध हैं। अतः खरि च (8.4.54) सूत्र मूल सकार को देखकर ही दकार को तकार करता है। वैसे वे रूप हों। भाष्यकारमत में खरि च (8.4.54) सूत्र का अष्टाध्यायी में स्थान परिवर्तन करके शश्छोऽटि (8.4.62) सूत्र के बाद स्थापित होता है। तब ऊपर किया लोप और सकार को किया थकार दोनों भी सिद्ध हों। परन्तु यह सभी विषय बालोपयोगी नहीं है तथा इस ग्रन्थ में उल्लेखित होता है। यह चर्चा विशिष्ट विशिष्ट जिज्ञासा की शांति के लिए दिया है।]

ध्यान दें:



## 8.16 झयो होऽन्यतरस्याम्॥ ( 8.4.61 )

**सूत्रार्थ** - झय के पर हकार को पूर्वसवर्ण विकल्प से होता है।

सूत्रव्याख्या - विधिसूत्र है। तीन पद है। झयः (5/1), हः (6/1), अन्यतरस्याम् यह विभाषा अर्थ के लिए अव्यय है। उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य (8.4.60) सूत्र से पूर्वस्य षष्ठ्यन्त पद की अनुवृति है। अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः सूत्र से सवर्णः प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तब पद योजना होती है - झयः हः पूर्वस्य सवर्णः अन्यतरस्याम्। सूत्रार्थ - झय के पर हकार को पूर्वसवर्ण विकल्प से होता है।

**उदाहरण** - वाग्घरिः। वाग्हरिः।

**सूत्रार्थसमन्वय** - वाचि हरिः सप्तमीतत्पुरुषः। वाणी विषय में पटु वाक्पटु अर्थ है। समास करने पर वाक् हरिः स्थिति होती है। वाक् प्रत्ययलक्षण से पद है। अतः झलां जशोऽन्ते सूत्र से ककार को स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से स्थान आन्तर्य जश् गकार होता है। उससे वाग् हरिः होने पर वहा झय् गकार है, उससे पर हकार है। यहाँ प्रकृत सूत्र से हकार के स्थान में आदेश करना चाहिए। आदेश कौन है। पूर्व का सवर्ण। कौन पूर्व। गकार। उसके सवर्ण क ख ग घ ङ ये पांच। एक स्थानी, और आदेश पांच। अतः स्थानी आदेश संख्यावैषम्य है। अतः स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से काटी करना चाहिए। उससे आन्तरतम्य परीक्षा करनी चाहिए।

### आन्तरतम्य परीक्षा -

**स्थानकृद आन्तर्य है अथवा नहीं** - स्थानी हकार का उच्चारणस्थान कण्ठ है। आदेश में अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः वचन से गकार का सवर्ण क ख ग घ ङ ये उच्चारण स्थान भी कण्ठ ही है। अतः हकार से सदृशतम् उनमें कोई एक भी प्राप्त नहीं होता है सभी आदेश समान हैं।

यहाँ एक लौकिक उदाहरण विषय की सरलता के लिए दिया जाता है - राम दश मनुष्यों को कहते हैं मेरे हाथ में पांच आम्रफल हैं। आपमें से जिसके हाथ में मेरे फल के समान फल है, उसको मैं पुरस्कार दूंगा।

वहां एक प्रसङ्ग - वहां प्रत्येक मनुष्य के हाथ में फल है। परन्तु एक के एक आम्रफल, किसी के दो, किसी के तीन पुन किसी के चार। किसी एक मन्दार के हाथ में पांच आम्रफल है। तब सदृशतम् कौन है। जिसके हाथ में पांच फल है वह ही सदृशतम है। अतः पुरस्कार मन्दार के लिए दिया जाता है।

द्वितीय प्रसङ्ग - उनमें प्रत्येक मनुष्य के हाथ में पांच फल हैं। किन्तु सभी के हाथ में बदरफल हैं। एक के भी हाथ में आम्रफल नहीं है। तब सदृशतम कौन। तब सभी समान हैं। कोई एक सदृशतम नहीं है। अतः पुरस्कार नहीं दिया जाता है।

अतः यदि आदेश में विद्यमान सभी समान हैं तो कोई भी अन्तरतम नहीं है।

**प्रमाणकृद आन्तर्य है अथवा नहीं** - प्रमाण यहाँ उच्चारणकाल। हकार अर्धमात्रिक, आदेश क ख ग घ ङ ये सभी भी अर्धमात्रिका है। अतः उनमें कोई एक भी प्रमाण से अन्तरतम नहीं हैं।

**अर्थकृद आन्तर्य है अथवा नहीं** - वर्णों के कोई भी अर्थ नहीं होता है। समुदाय ही अर्थवान् होता है तस्यैकदेशोऽनर्थकः न्याय से। अतः अर्थ से आन्तर्य का विचार नहीं करते हैं।

**गुणकृद आन्तर्य है अथवा नहीं** - गुण यहाँ बाह्यत्न है।

ध्यान दें:

| | वर्ण | बाह्यत्न | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **स्थानी** | **ह** | **संवार** | **नाद** | **घोष** | **महाप्राण** |
| आदेशा | क | विवार | श्वास | अघोष | अल्पप्राण |
| | ख | विवार | श्वास | अघोष | महाप्राण |
| | ग | संवार | नाद | घोष | अल्पप्राण |
| | **घ** | **संवार** | **नाद** | **घोष** | **महाप्राण** |
| | ङ | संवार | नाद | घोष | अल्पप्राण |

अत: हकार के सदृश बाह्यप्रयत्न केवल घकार ही है। अत: हकार के स्थान में गकार का सवर्ण घकार ही आदेश हो सकता है। उससे पूर्वसवर्णपक्ष में वाग् घरि: - वाग्घरि: रूप निष्पन्न होता है। पूर्वसवर्ण का वैकल्पिक होने से पक्ष में वाग्हरि: द्वितीय रूप भी बनता है।

## 8.17 शश्छोऽटि॥ ( 8.4.62 )

**सूत्रार्थ** - झय के पर शकार को छ: विकल्प से होता है अट परे।

**सूत्रव्याख्या** - विधि सूत्र है। सूत्र में तीन पद हैं। श: छ: अटि सूत्रगत पदच्छेद है। श: (6/1), छ: (1/1), अटि (7/1)। झयो होऽन्यतरस्याम् सूत्र से झय: पञ्चमी एकवचनान्त, अन्यतरस्याम् अव्यय दोनों पद की अनुवृति है। तब पदयोजना होती है- झय: श: छ: अटि अन्यतरस्याम्। सूत्र का अर्थ - झय के परे शकार को छकार विकल्प से हो अट परे। अर्थात् यदि झय् + श + अट् स्थिति हो तो शकार के स्थान में विकल्प से छकार होता है।

**उदाहरण** - तच्छिव: तच्शिव:।

**सूत्रार्थसमन्वय** - स: शिव: विग्रह: अथवा तस्य शिव: विग्रह। समास करने पर और सुप् का लुक होने पर तद् शिव: स्थिति होती है। यहाँ झय् दकार है, उसके पर शिवशब्द का आदि वर्ण शकार है। शकार से पर अट् इकार भी है। अत: यहाँ शश्छोऽटि सूत्र की प्रवृत्ति है। परन्तु स्तु के दकार का श्चुना शकार के साथ योग है। अत: स्तो: श्चुना श्चु: सूत्र भी यहाँ प्रसक्त है। किन्तु झल् दकार है, उसके बाद खर् शकार है। अत: खरि च (8.4.54) सूत्र भी प्रवृत्त होना चाहता है। तीनो सूत्रों में युगपत् प्राप्त होने पर वस्तुत: विप्रतिषेधे परं कार्यम् परिभाषा से निर्णय अन्यत्र किया जाता है। परन्तु असिद्धकाण्ड में अर्थात् तीन पाद में वह सम्भव नहीं है। तीन पाद में तो पूर्व के प्रति परशास्त्र असिद्ध है। अत: सम्भव होने पर पूर्वसूत्र आदि में प्रवृत होता है। उसके बाद उससे परवर्ति सूत्र क्रम से। अत: स्तो: श्चुना श्चु: सूत्र से स्तु दकार के स्थान से आन्तर्य श्चुत्व जकार होने पर तज् शिव: स्थिति होती है। तब झल् जकार का झश शकार से अव्यवहितपूर्व है। अत: खरि च सूत्र से झल जकार के स्थान में स्थान आन्तर्य से चर्त्व चकार करने पर तच् शिव: स्थिति होती है। अब यहाँ झय् चकार है, उसके बाद शकार है, शकार से परे अट् इकार है। अत शश्छोऽटि सूत्र से शकार को विकल्प से छकार करने पर छत्वपक्ष में तच् छिव: - तच्छिव: और छत्व अभावपक्ष में तच् शिव: - तच्शिव: रूप निष्पन्न होता है।

ध्यान दें:



### 8.17.1 ) छत्वममीति वाच्यम्। ( वार्तिकम् )

**वार्तिकार्थ** - शश्छोऽटि सूत्र में अट् जो कहा है उसको छोड़कर अम् ऐसा कहना चाहिए यह वार्तिकार्थ है। अर्थात् झय के पर शकार को विकल्प से छत्व होता है अम् परे। अट् प्रत्याहार का ञमङणनम् सूत्र के मकार तक इसको बढ़ाना चाहिए।

**उदाहरण** - तच्छ्लोकः। तच्श्लोकः।

सः श्लोकः - तच्छ्लोकः कर्मधारयसमास। समास करने पर और सुपों का लुक होने पर तद् श्लोकः स्थिति होती है।

यहां स्तोः श्चुना श्चुः (8.4.39), खरि च (8.4.54), शश्छोऽटि (8.4.62) तीनों सूत्र एक साथ प्राप्त हैं। ये असिद्धकाण्ड अर्थात् तीन पाद में है। तीन पाद में पूर्व के प्रति परशास्त्र असिद्ध है। अतः सम्भव होने पर पूर्वसूत्र आदि में प्रवृत्त होते हैं।

तब स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से स्तो दकार का स्थान आन्तर्य से श्चुत्व जकार होने पर तज् श्लोकः स्थिति होती है। तब झल् जकार झश शकार से अव्यवहितपूर्व है। अतः खरि च सूत्र से झल जकार के स्थान में स्थान आन्तर्य से चर्त्व चकार करने पर तच् श्लोकः स्थिति होती है। अब यहाँ झय् चकार है, उसके बाद शकार है, शकार से परे अट् नहीं है। अत शश्छोऽटि सूत्र से यहाँ छत्व सम्भव नहीं है। अतः इस वार्तिक की रचना कात्यायनमुनि ने की। वहां शकार से पर लकार है और वह अट् में नहीं है, अम् में है अतः प्रकृत वार्तिक से शकार को विकल्प से छकार करने पर छत्वपक्ष में तच् छ्लोकः - तच्छ्लोकः छत्व अभावपक्ष में तच् श्लोकः- तच्श्लोकः रूप निष्पन्न होता है।

## पाठगत प्रश्न-4

27. उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य सूत्र का अर्थ लिखें।

28. झरो झरि सवर्णे सूत्र का अर्थ लिखें।

29. झयो होऽन्यतरस्याम् सूत्र का उदाहरण क्या है?

30. शश्छोऽटि सूत्र का उदाहरण क्या है?

## पाठ सार

यह सन्धिप्रकरण असिद्धकाण्ड में है। अतः यहाँ पूर्व के प्रति पर सूत्र असिद्ध है। उससे कब किस सूत्र की प्रवृत्ति होती है निर्णय के लिए सूत्रों का पूर्व पर क्रम का अवश्य ज्ञान होना चाहिए। उसके लिए असिद्धकाण्ड का अष्टाध्यायीक्रम से कण्ठस्थीकरण बहुत ही ज्ञान वर्धक है।

व्याकरण का कार्य हि साधु शब्द निर्माण है। वहां प्रकृत्ति के साथ प्रत्यय को जोड़ना चाहिए। सुप् और तिङ् प्रत्यय जोड़ें तो समुदाय पदसंज्ञक होता है। पद के अन्त में सकार अनेक जगह प्राप्त है। यथा सु जस् शस् ऐस् भिस् भ्यस् ङसि ङस् ओस् इन सुप में, तस् सिप् थस् वस् मस् थास् ये तिङ सकारान्त प्रत्यय हैं। अन्य भी कुछ इनके स्थान में आदेश होते हैं तब पदान्त में सकार प्राप्त होता है। इस पदान्त में सकार को ससजुषो रुः सूत्र से रुत्व होता है।

ध्यान दें:

रुत्व होने पर यदि खर् अथवा अवसान हो तो खरवसानयोः विसर्जनीयः सूत्र से रेफ को विसर्ग होता है। यदि विसर्ग से पर खय् हो तो विसर्ग को सकार होता है। यदि शर् हो तो विकल्प से विसर्ग अथवा सकार होता है वा शरि सूत्र से।

सकार और तवर्ग का शकार और चवर्ग के साथ यथासंभव योग होने पर सकार तवर्ग के स्थान में श्चुत्व स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से होता है।

पदान्त में झल् है तो उसके स्थान में जश्त्व झलां जशोऽन्ते सूत्र से विधान करते हैं। खर परे झलो को चर्त्व खरि च सूत्र से विधान करते हैं।

शात् परे तवर्ग को चवर्ग नहीं होता है शात् इस सूत्र का अर्थ है। उत्सर्गसूत्र करके अपवाद अथवा निषेध करते हैं यह पाणिनि की शैली है। वहां यह शात् सूत्र निषेध सूत्र है।

सकार तवर्ग का षकार टवर्ग के साथ योग होने पर षकार टवर्ग का विधान करते हैं। ष्टुना ष्टुः सूत्र से परन्तु पदान्त टवर्ग से पर स्तु को ष्टुत्व का निषेध न पदान्ताट्टोरनाम् सूत्र से करते हैं। इस प्रकार तवर्ग का षकार परे ष्टुत्व का निषेध तोः षि सूत्र से।

पदान्त यर को अनुनासिक परे अनुनासिक विकल्प से होता है यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा सूत्र से। लकार परे तवर्ग को परसवर्ण विधान तोर्लि सूत्र से।

हल् के पर झर का विकल्प लोप सवर्ण झर परे हो तो होता है झरो झरि सवर्णे सूत्र से झय के परे हकार को पूर्वसवर्ण विकल्प से होता है, झयो होऽन्यतरस्याम् सूत्र से।

यदि झय् + श + अम् स्थिति है तो शकार के स्थान में विकल्प से छकार शश्छोऽटि सूत्र से होता है।

## पाठान्त प्रश्न

नीचे कुछ प्रश्न दिए जाते हैं। उनका उत्तर प्रमुख्य रूप से दीर्घ ही होता है। सूत्रव्याख्यान और रूपसाधन ये दोनों ही व्याकरण प्रश्न के मुख्य प्रकार है। अच्सन्धिप्रकरण में योग्यता बढ़ाने के लिए एक सूत्र का व्याख्यान विस्तार सहित प्रदर्शित है। उसको देखकर और समझकर इन सूत्रों का भी व्याख्यान करना चाहिए।

झलां जश् झशि सूत्र में रूपसाधन कैसे करना चाहिए रूपसाधन के अनेक प्रकार से विस्तार सहित प्रदर्शित है। अतः उस स्थल को देखकर और समझकर अन्य रूपों को साधन का प्रयास निष्ठा से करना चाहिए। प्रथम लघु रूप को सिद्ध करो। उसके बाद क्रमशः विस्तार करना चाहिए।

1. ससजुषो रुः सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. झलां जशोऽन्ते सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. ष्टुना ष्टुः सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा सूत्र की व्याख्या कीजिए।

ध्यान दें:



6. यहाँ नीचे प्रारम्भ स्थिति देते हैं और जो रूप साधनीय हैं वह भी देते हैं। वह प्रदत्त रूप सूत्र सहित सिद्ध कीजिए।

| प्रारम्भ | साध्य रूप | प्रारम्भ | साध्य रूप |
|---|---|---|---|
| तद् श्लोकः | तच्श्लोकः | मन्त्रान् लिख | मन्त्रालँलिख |
| तद् शिवः | तच्शिवः | तद् नाम | तन्नाम |
| अच् ह्रस्वः | अज्ह्रस्वः | तद् चयः | तच्चयः |
| उद् स्थानम् | उत्थानम् | शिवस् शंकरः | शिवश्शंकरः |
| षट् मासाः | षण्मासाः | तद् न | तन्न |
| सत् मार्गः | सन्मार्गः | मनाक् हसति | मनाग्घसति |
| मृद् मयम् | मृण्मयम् | ग्रामाद् चलितः | ग्रामाच्चलितः |
| कृष्णस् चपलः | कृष्णश्चपलः | उद् खननम् | उत्खननम् |
| सत् छात्रः | सच्छात्रः | वाच् माधुर्यम् | वाङ्माधुर्यम् |
| एतद् तु | एतत्तु | हृद् मण्डितः | हृन्मण्डितः |
| उद् तिष्ठ | उत्तिष्ठ | सुहृद् मित्रम् | सुहृन्मित्रम् |

## पाठगत प्रश्नोत्तर

### उत्तर भाग-1

1. सकारान्तपद और सजुषन्तपद के अंतिम को रु होता है खर परे।
2. पदान्तस्य रः दोनों की समान विभक्ति होने से तदन्त विधि होती है।
3. अवसान में रेफ को विसर्ग खरवसानयोर्विसर्जनीयः सूत्र से।
4. विसर्ग से शर परे विसर्ग को विसर्ग विकल्प से वा शरि सूत्र से होता है।
5. स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र में स्तोः स्थानी से श्चुना आदेश यथासंख्य है।
6. स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र में स्तोः स्थानी को श्चुना निमित्त के साथ योग में यथासंख्य नहीं है
7. सत् चित् स्थिति में प्रथम ही स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र प्रवृत्त नहीं होता है। यद्यपि स्तोः तकार का श्चुना चकार के साथ योग दिखाई देता है फिर भी झलां जशोऽन्ते सूत्र प्रवृत्त है। क्योंकि - असिद्धकाण्ड में पूर्वसूत्र प्रति परसूत्र असिद्ध है। अतः सत् चित् स्थिति में सबसे पहले असिद्धकाण्ड में झलां जशोऽन्ते (8.2.39) सूत्र प्रवृत्त है। उससे तकार को जश् दकार होता है। तब सद् चित् स्थिति होती है। यहाँ भी स्तोः श्चुना श्चुः (8.4.39) और खरि च (8.4.54) दोनों की एक साथ प्राप्ति है। परन्तु स्तोः श्चुना श्चुः (8.4.39) सूत्र असिद्धकाण्ड में पूर्व है, खरि च (8.4.54) पर है। अतः पूर्वसूत्र स्तोः श्चुना श्चुः (8.4.39) की प्रवृत्ति आदि में होती है। उससे

ध्यान दें:

स्तु के दकार को श्चु जकार होता है। तब सज् चित् स्थिति होती है।

8. शात् पर तु का चु से योग होने पर चुत्व नहीं है।

9. प्रश्नः यहाँ शकार से पर स्तु है। अतः शात् पर तु को चुत्व शात् सूत्र से निषेध करता है। अतः वहा स्तोः श्चुना योग में भी श्चुत्व नहीं होता है।

10. 1)

11. 1)

12. 4)

13. 1)

## उत्तर भाग-2

14. सकार तवर्ग का षकार टवर्ग के साथ योग होने पर षकारटवर्ग होता है।

15. ष्टुना ष्टुः सूत्र में स्तोः स्थानी का ष्टुना आदेश से यथासंख्य है।

16. ष्टुना ष्टुः सूत्र में स्तोः स्थानी का ष्टुना निमित्त से योग होने पर यथासंख्य नहीं है।

17. पदान्त टवर्ग से परे नामवयवभिन्न का स्तो को ष्टु नहीं होता है।

18. षण्णाम् यहाँ पर पदान्त टवर्ग से परे स्तो को ष्टुत्व निषेध होने पर भी अनाम्नवति-नगरीणामिति वाच्यम् वार्तिकबल से होता है।

19. सन् षष्ठः यहाँ स्तो का ष्टुना से योग होने पर भी तवर्ग से परे नकार षकार परे ष्टुत्व को तोः षि इससे निषेध होने से नहीं।

20. 1)

21. 4)

## उत्तर भाग-3

22. एतद् मुरारिः स्थिति में दकार को नकार यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा सूत्र से होता है।

23. लकार परे तवर्ग को परसवर्ण होता है तोर्लि सूत्र का अर्थ है।

24. चित् मयम् स्थिति में सन्धि करने पर चिन्मयम् एक ही रूप होता है।

25. प्रत्यये भाषायां नित्यम् सूत्र का अर्थ - लौकिकसंस्कृतभाषा में अनुनासिकादि-प्रत्यय परे पदान्त यर को नित्य अनुनासिक होता है।

26. तोर्लि सूत्र का उदाहरण तल्लयः, विद्वानलिखति इत्यादि।

ध्यान दें:



उत्तर भाग-4

27. उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य सूत्र का अर्थ - उद के पर स्था-स्तम्भ को पूर्वसवर्ण होता है।

28. हल् के पर झर का विकल्प से लोप सवर्ण झर परे हो तो झरो झरि सवर्णे सूत्र का अर्थ।

29. झयो होऽन्यतरस्याम् सूत्र का उदाहरण वाग्घरिः है।

30. शश्छोऽटि सूत्र का उदाहरण तच्छिवः तच्शिवः।

ध्यान दें:

9

# हल् सन्धि में अनुस्वार सन्धि और विसर्ग सन्धि

पूर्व पाठों में संज्ञा परिभाषा अच् सन्धि प्रकृति भाव सन्धि हल् सन्धि इन प्रकरण का क्रमशः परिशीलन किया है। अनुस्वार सन्धि वस्तुतः हल् सन्धि ही है। बाहुल्य से मकार को नकार को विकल्प से अनुस्वार होता है। इस प्रकार अनुस्वार का अनेक स्थान पर परसवर्ण होता है। अतः ये सभी हल् सन्धि का कार्य ही है। वैसे भी ज्ञान की सरलता के लिए अलग से उल्लेख किया है। अनुस्वार सन्धि प्रकरण में पदस्य का अधिकार जानना चाहिए।

विसर्ग सन्धि भी इसी पाठ के अंतर्गत है। विसर्ग सन्धि के कुछ सूत्र पूर्व पाठ में भी विद्यमान है। अवशिष्ट सूत्र ही कुछ यहाँ दिए जाते हैं। विसर्ग सन्धि प्रकरण में इस विसर्ग से पूर्व विद्यमान वर्ण और पर विद्यमान वर्ण दोनों ही जानने का विषय है। इस प्रकार विसर्ग सन्धि प्रकरण में मूल स्थित में भी विसर्ग नहीं है, अन्तिम स्थिति में भी विसर्ग नहीं है। रूप साधन प्रक्रिया के मध्य में विसर्ग होता है। पुनः उसका परिवर्तन होता है। अतः इस प्रकरण का नाम विसर्ग सन्धि प्रकरण भी केवल परम्परा प्रभाव ही है।

विसर्ग सन्धि नामकरण का तात्पर्य यह है यदि पदान्वाख्यान पक्ष है तो दोनों पद के मध्य में विसर्ग दिखाई देता है। यदि वाक्यान्वाख्यानपक्ष है तो इस प्रकरण में प्रदर्शित स्थिति होती है। यहाँ केवल वाक्यान्वाख्यानपक्ष ही प्रदर्शित करते हैं।

## उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- पदान्त मकार को अनुस्वार कब होता है यह जान पाने में;
- अपदान्त मकार और नकार अनुस्वार कब होता है यह जान पाने में;
- संस्कृत में जहाँ तहां अनुस्वार सन्धि का विच्छेद करने में;
- वाक्यान्वाख्यानपक्ष में विसर्ग सन्धि क्या होती है जान पाने में;
- विसर्ग सन्धि में विविध प्रकार के सूत्र सहित जान पाने में;

# पाठ-9

## हल् सन्धि में अनुस्वार सन्धि और विसर्ग सन्धि

ध्यान दें:

- अनुस्वार सन्धि और विसर्ग सन्धि में सूत्र की व्याख्या कर पाने में;
- अग्रिम प्रकरण में इस प्रकरण का सूत्र सहित व्यवहार कर पाने में;
- अपने लेख में शुद्ध सन्धि कर पाने में;

## 9.1 मोऽनुस्वारः॥ ( 8.3.23 )

**सूत्रार्थ** - मकारान्त पद को अनुस्वार होता है हल परे।

**सूत्रव्याख्या** - विधिसूत्र है। सूत्र में दो पद है। मः अनुस्वारः सूत्रगतपदच्छेद है। मः (6/1), अनुस्वारः (1/1)। पदस्य का अधिकार है। संहितायाम् का भी अधिकार है। हलि सर्वेषाम् सूत्र से हलि सप्तम्यन्त पद की अनुवृति है। पदयोजना - संहितायाम् पदस्य मः अनुस्वारः हलि।

**तदन्तविधि**- इसमें पदस्य मः दोनों पद षष्ठ्यन्त है। पदस्य विशेष्य है। मः विशेषण है। विशेषण तदन्त विशेष्य की संज्ञा होती है। अतः तदन्त विधि से वैसा पद यहाँ ग्रहण करना चाहिए जिसके अन्त में मकार है। अर्थात् मान्तपद अर्थ प्राप्त होता है। वहां भी मान्तपदस्य षष्ठ्यन्त है। उसका अर्थ सम्बन्ध है। इस सूत्र में सम्बन्ध के प्रतियोगी पद है परन्तु अनुयोगी का उल्लेख तो नहीं है। और किसी भी प्रकार प्राप्त नहीं होता है। अतः यह षष्ठी स्थान षष्ठी अनुयोगी से रहित है। पदस्य यहाँ पर षष्ठी प्रकृति पद शब्द अल्समुदायबोधक है। आदेश अनुस्वार एकाल् है। अतः अलोऽन्त्यस्य परिभाषा बल से मान्तपद के अंतिम अल् के स्थान में अनुस्वार होता है यह अर्थ प्राप्त होता है।

**तब सूत्रार्थ होता है** - मान्तपद के अंतिम अल के स्थान में अनुस्वार होता है हल् परे संहिता विषय होने पर। इसका ही फलितार्थ अनेक जगह - मान्त पद को अनुस्वार होता है हल् परे इस रूप से प्रकट करते हैं। अर्थात् संहिता में विषयीभूत हल के अव्यवहितपूर्व मान्त पद है तो मकार को अनुस्वार होता है यह तात्पर्यार्थ है।

**उदाहरण** - हरिं वन्दे।

हरिम् वन्दे वाक्य है। वाक्य में संहिता विवक्षाधीन है। वहां हरिम् सुबन्त है, अतः उसकी सुप्तिङन्तं पदम् सूत्र से पदसंज्ञा सुलभ है। हरिम् वन्दे यहाँ पर हल वकार से अव्यवहितपूर्व मान्त पद हरिम् है। यदि दोनों पद के मध्य में अर्ध मात्रा से अधिक काल का व्यवधान नहीं है तो मोऽनुस्वारः सूत्र से मकार को अनुस्वार करने पर हरिं वन्दे साधु रूप निष्पन्न होता है। यदि संहिता विवक्षित नहीं है तो हरिम् वन्दे यह भी प्रयोग कर सकते हैं, कोई दोष नहीं है।

**आक्षेप** - 'वनम् अस्ति' उदाहरण में अनुस्वार को मकार किस सूत्र से होता है। वस्तुतः 'वनम्' पद पृथक् सिद्ध होता है। उसके अन्त में अम्-प्रत्यय का मकार स्वकीय है। जब 'वनम् अस्ति' वाक्य का प्रयोग करते है तब वहा मूल शब्द मकार है। उससे पर हल् नहीं है । अतः उसको अनुस्वार नहीं होता है। अनुस्वार ही नहीं होता है तो अनुस्वार को मकार किस सूत्र से होता है यह प्रश्न ही युक्तिहीन है।

कुछ वाक्य के अन्त में भी अनुस्वार को लिखते हैं जैसे - 'अस्ति वनं।' परन्तु वाक्य के अन्त में वनं पद है। अर्थात् उसके बाद हल् नहीं है, अथवा द्वितीय वाक्य है। द्वितीय वाक्य में यद्यपि हल् प्रथम वर्ण होना चाहिए फिर भी दो वाक्यों की संहिता नहीं होती है। अतः संहिता के अभाव में मकार को अनुस्वार नहीं होता है। अतः वाक्य के अन्त में अनुस्वार कभी भी समर्थ नहीं हो सकता है। अतः अस्ति वनं असाधु है। वहां अस्ति वनम् साधु है।

ध्यान दें:

## 9.2 नश्चापदान्तस्य झलि॥ ( 8.3.24 )

**सूत्रार्थ** - अपदान्त नकार और मकार के स्थान में झल् परे अनुस्वार होता है।

**सूत्रव्याख्या** - विधि सूत्र है। चार पद है। नः च पदान्तस्य झलि सूत्र में उपस्थित पदो की संधि विच्छेद है। नः (6/1), च अव्यय है। अपदान्तस्य (6/1), झलि (7/1)। मोऽनुस्वारः सूत्र से मः षष्ठी एकवचन, अनुस्वारः प्रथमान्त पद की अनुवृति है। पदयोजना - अपदान्तस्य नः मः च अनुस्वारः झलि। सूत्रार्थ - अपदान्त नकार और मकार के स्थान में झल परे अनुस्वार होता है। अर्थात् अपदान्त में विद्यमान नकार का और मकार को अनुस्वार होता है झल् परे।

**उदाहरण** - यशांसि। आक्रंस्यते। शान्तः।

**सूत्रार्थ समन्वय** - यशांसि यहाँ यशस्-शब्द का नपुंसकलिङ्ग प्रथम बहुवचन है। उसका रूप साधन प्रक्रिया में यशान् सि स्थिति होती है। वहा विद्यमान नकार पदान्त में नहीं है। अतः वह अपदान्त नकार है। उससे पर झल् सकार है। अत प्रकृत सूत्र से नकार को अनुस्वार होता है। उससे यशांसि रूप निष्पन्न होता है। सूत्र में मकार और नकार को अनुस्वार कहा है। यह नकार का उदाहरण।

[यशान् सि स्थिति कैसे होती है- यहाँ जितने सूत्र आवश्यक है उन सभी का सुबन्त प्रकरण है। अतः उन सभी के ज्ञान के विना सम्पूर्ण प्रक्रिया प्रदर्शन व्यर्थ है।]

आक्रंस्यते - आङ्-उपसर्ग, क्रमु पादविक्षेपे धातु है, उसके बाद लृट् लकार करने पर स्यविकरण का विधान होने पर आ क्रम् स्य ते स्थिति होती है। उसमें मकार पदान्त में नहीं है। और मकार से पर स्य झल् सकार है। अत प्रकृतसूत्र से मकार को अनुस्वार होता है। उससे आक्रंस्यते रूप निष्पन्न होता है। सूत्र में मकार और नकार को अनुस्वार कहा है। तो यह मकार का उदाहरण है।

शमु उपशमे धातु से क्त प्रयय करने पर शान्त रूप बनता है। वहा प्रक्रिया से शाम् त स्थिति होती है। यहाँ मकार अपदान्त है, उसके पर झल् तकार है। अतः नश्चापदान्तस्य झलि सूत्र से मकार को अनुस्वार करने पर शांत स्थिति होती है तब-

## 9.3 अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः॥ ( 8.4.57 )

**सूत्रार्थ** - अनुस्वार को यय परे परसवर्ण होता है।

**सूत्रव्याख्या** - विधिसूत्र है। सूत्र में तीन पद है। अनुस्वारस्य (6/1), ययि (7/1), परसवर्णः (1/1)। परस्य सवर्णः परसवर्णः षष्ठी तत्पुरुष समास। संहितायाम का आदिकार है। सूत्रार्थ- अनुस्वार के स्थान में यय परे परसवर्ण होता है।

**उदाहरण** - शान्तः।

**सूत्रार्थ समन्वय** - शांत स्थिति में इस अनुस्वार के यय परे है। अर्थात् यय से अव्यवहित पूर्व है। अतः प्रकृत सूत्र से अनुस्वार के स्थान में आदेश होता है। आदेश क्या है। पर का सवर्ण। पर तकार है। उसका सवर्ण कौन है। त थ द ध न ये पांच। एक स्थानी और आदेश पांच है। स्थानी संख्या से आदेश संख्या भिन्न है। अतः स्थानेऽन्तरतमः परिभाषा से स्थानी का अन्तरतम आदेश हो। स्थान से, अर्थ से, गुण से, और प्रमाण से आन्तर्य चार प्रकार का होता है। वर्ण का अर्थ नहीं होने से अर्थकृत आन्तर्य नहीं है। आदेशों का प्रमाण अर्थात् उच्चारणकाल अर्धमात्रिक है। अत प्रमाणकृत आन्तर्य सम्भव नहीं है। स्थानी के अनुस्वार का उच्चारणस्थान नासिका है। आदेश में नकार का उच्चारणस्थान दन्त और नासिका है। अन्य

ध्यान दें:



का नासिका नहीं है। अत: स्थान आन्तर्य से अनुस्वार के स्थान में नकार आदेश होता है। तब शान्त शब्द निष्पन्न होता है। उससे परे सुप्रत्यय योग से और प्रक्रिया से शान्त: प्रथमान्त रूप सिद्ध होता है।

## 9.4 वा पदान्तस्य॥ ( 8.4.58 )

**सूत्रार्थ** - पदान्त अनुस्वार का यय परे परसवर्ण विकल्प से होता है।

**सूत्रव्याख्या** - विधि सूत्र है। सूत्र में दो पद हैं। वा विकल्पार्थ अव्यय है। पदस्य अन्त: पदान्त:, तस्य इति षष्ठी तत्पुरुष: समास:। अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण: सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृति है। वहां अनुस्वारस्य (6/1), ययि (7/1), परसवर्ण: (1/1)। परस्य सवर्ण: परसवर्ण: षष्ठी तत्पुरुष समास है। संहितायाम का अधिकार है। सूत्रार्थ - पदान्त अनुस्वार के स्थान में यय परे परसवर्ण विकल्प से होता है संहिता हो तो।

**उदाहरण** - रामन्नमामि। रामं नमामि।

**सूत्रार्थ समन्वय** - रामम् नमामि वाक्य है। वाक्य में संहिता विवक्षाधीन है। यदि संहिता विवक्षित है तो सूत्र यहाँ प्रवृत होता है। वहां रामम् सुबन्त पद है। उसका पदान्त में मकार है। नमामि द्वितीय पद है। उसका प्रथमवर्ण हल् नकार है। अत: मकार का हल् परे अर्थात् हल् से अव्यवहितपूर्व मकार को मोऽनुस्वार: सूत्र से अनुस्वार होता है। तब रामं नमामि स्थिति होती है। वहां अनुस्वार पदान्त में है किन्तु यय परे है। अर्थात् पदान्त अनुस्वार यय के अव्यवहितपूर्व है। अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण: सूत्र से नित्य परस वर्ण प्राप्त है। वहां अब वा पदान्तस्य सूत्र से विकल्प से परसवर्ण का विधान करते हैं। परसवर्ण नहीं होता है तो रामं नमामि साधु वाक्य निष्पन्न होता है। परसवर्ण होता है तो स्थानी अनुस्वार, आदेश पर नकार का सवर्ण है। कौन सवर्ण। त थ द ध न ये पांच। एक स्थानी पांच आदेश। अत: स्थानेऽन्तरतम: परिभाषा से अनुस्वार के स्थान में कौन होता है। अनुस्वार का उच्चारण स्थान नासिका है। आदेश में नकार का उच्चारण स्थान दन्त और नासिका है। अत: नासिका स्थान साम्य से प्राप्त है। अन्यत् आन्तर्य से सम्भव नहीं है। अत: अनुस्वार के स्थान में नकार करने पर रामन्नमामि साधु वाक्य सिद्ध होता है। इसी प्रकार रामं नमामि, रामन्नमामि दोनों वाक्य साधु हैं।

### यह यहाँ संग्रह:-

अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण: इति वा पदान्तस्य इति दोनों सूत्र की प्रवत्ति क्षेत्र की क्रमश: यह फलितार्थ कह सकते हैं - अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण: सूत्र अपदान्त अनुस्वार को यय परसवर्ण नित्य करता है। पदान्त अनुस्वार को यय परे विकल्प से परसवर्ण वा पदान्तस्य सूत्र करता है। अनुस्वार को कब कौन-सा वर्ण होता है नीचे संक्षेप से देते हैं।

अनुस्वार से कवर्ग हो तो परसर्वण ङकार होता है। जैसे शङ्कर इति।

अनुस्वार से पर चवर्ग है तो परसर्वण ञकार होता है। जैसे सञ्चय: इति।

अनुस्वार से पर टवर्ग है तो परसर्वण णकार होता है। यथा त्वण्टीकसे इति।

अनुस्वार से पर तवर्ग है तो परसर्वण नकार होता है। जैसे परन्तु इति।

अनुस्वार से पर पवर्ग है तो परसर्वण मकार होता है। जैसे रामम्पश्य इति।

ध्यान दें:

## पाठगत प्रश्न-1

1. मोऽनुस्वारः यहाँ पर किसके मकार को अनुस्वार?
2. अपदान्त मकार को अनुस्वार किस सूत्र से?
3. अपदान्त मकार को यम परे अनुस्वार किस सूत्र से?
4. त्वम् रामः यहाँ पर मकार को अनुस्वार किस सूत्र से?
5. त्वम् हरिः यहाँ पर मकार को अनुस्वार किस सूत्र से?
6. फलम् रोचते यहाँ पर कौन-सा सन्धि सूत्र प्रवृत होत्ता है?
7. हरिं वन्दे यहाँ कौन-सा सन्धि सूत्र प्रवृत्त होता है?
8. अपदान्त अनुस्वार को परस वर्ण किस सूत्र से होता है?
9. जलं हरति यहाँ अनुस्वार किस सूत्र से?
   1) नश्चापदान्तस्य झलि
   2) वा पदान्तस्य
   3) मोऽनुस्वारः
   4) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः
10. शाम् त स्थिति में शान्त परिवर्तन इस क्रम से होता है?
    1) मकार को न
    2) मकार को अनुस्वार, उसको न
    3) मकार को जश्, उसको न
    4) नकार को म, उसको मकार
11. जलम् नयति यहाँ सन्धि करते हैं तो कौन-सा रूप सम्भव है?
    1) जलं नयति, जलन्नयति
    2) जलम् नयति, जलन्नयति
    3) जलं नयति, जलन्नयति, जलम् नयति
    4) जलम् नयति, जलं नयति
12. जलम् नयति यहाँ पर संहिता नहीं है तो कौन-सा प्रयोग साधु है?
    1) जलं नयति, जलन्नयति
    2) जलम् नयति
    3) जलं नयति
    4) जलम् नयति, जलं नयति

ध्यान दें:



॥ इति हल् सन्धि में अनुस्वार सन्धि ॥

॥ अथ विसर्ग सन्धि॥

## 9.5 अतो रोरप्लुतादप्लुते॥ ( 6.1.109 )

**सूत्रार्थ** - अप्लुत अत् से पर रु के स्थान में उत् होता है अप्लुत अत् परे।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। इस सूत्र में चार पद है। अतः रोः अप्लुताद् अप्लुते सूत्रगतपदच्छेद है। अत् तपर है, उसका रूप अतः पञ्चमी एकवचनान्त है। संहितायाम् अधिकार है। रोः (6/1), अप्लुताद् (5/1), अप्लुते (7/1)। न प्लुतः अल्पुतः, तस्मात् अप्लुताद्। तस्मिन् अप्लुते। यहाँ दोनों में भी नञ्-तत्पुरुषः समास है। ऋत उत् सूत्र से उत् प्रथमान्त पद की अनुवृति है। एङः पदान्तादति सूत्र से अति सप्तमी एकवचनान्त पद की अनुवृति है। वाक्य योजना होती है - अल्पुताद् अतः रोः उत् अप्लुते अति। अतः यहाँ दिग्योग में पञ्चमी है। अतः तस्मादित्युत्तरस्य परिभाषा से अतः (ह्रस्व अकार से) अव्यहित पर के कार्य को विधान करता है। रोः स्थान षष्ठी है। उससे षष्ठी स्थानेयोगा सूत्र से स्थाने पद की प्राप्ति है। अप्लुते अति यहाँ परसप्तमी है। उससे तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य परिभाषा बल से अप्लुत अकार से अव्यवहितपूर्व के कार्य को होता है यह अर्थ प्राप्त होता है। उत् तपर है। अतः तपरस्तत्कालस्य परिभाषा से उत् ह्रस्व ष्ट के उकार को ग्रहण करते है। सभी परिभाषा के बल से सूत्रार्थ होता है - अप्लुत अत परे रु के स्थान में उत् होता है अप्लुत अतः परे संहिता में। अर्थात् यदि अप्लुत से अत (ह्रस्व अकार से) पर रु है तो उसके स्थान में उत् (ह्रस्व उकार) होता है, यदि परे अल्पुत अत् (ह्रस्व अकार) है, किन्तु संहिता हो तो।

**उदाहरण** - शिवोऽर्च्यः।

**सूत्रार्थ समन्वय** - शिव शब्द से प्रथमा विभक्ति में एकवचन प्रत्यय सुप् का विधान करता है। तब शिवस् स्थितिः होती है। इस प्रकार अचर्-धातु का कृत्य प्रत्यय योग से अर्च्यः रूप निष्पन्न होता है। दोनों के मिलान से शिवस् अर्च्यः स्थिति होती है। शिवस् इसके अन्त में सुप् है। अतः सुप्तिङन्तं पदम् सूत्र से उसकी पद संज्ञा होती है। उसके अन्त में सकार है। अतः पदान्त सकार का ससजुषो रुः सूत्र से रुः होता है। उसका उकार अनुनासिक है। अतः उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र से उसकी इत्संज्ञा होती है। उसके बाद तस्य लोपः सूत्र से उकार का लोप होता है। इस प्रकार इत्संज्ञाकरण और उसका लोपकरने से लघु रूप से इस प्रकार प्रकट करते है- अनुबन्ध लोप होने पर और लोप करने पर शिवर् अर्च्यः होता है। वहां अब वकार से पर अप्लुत अत् (ह्रस्व अकार) है। उसके पर रु है। उसके पर अप्लुत अत् है। अतः प्रकृतसूत्र से रु को उत् होता है। तब शिव उ अर्च्यः स्थिति होती है। यहां वकार से पर अवर्ण है। उसके बाद अच् उकार है। अतः आद् गुणः सूत्र से अकार-उकार दोनों के पूर्व पर के स्थान में स्थान आन्तर्य से ओकार होता है। उससे शिवो अर्च्यः स्थिति होती है। यहाँ एच ओकार से पर अच् है। अतः एचोऽयवायावः सूत्र से अवादेश प्राप्त है। परन्तु शिवो इसका ओकार पदान्त में है। उससे पर अत् है। अतः एङः पदान्तादति सूत्र से अकार को पूर्वरूप करने पर शिवोऽर्च्यः वाक्य बनता है। शिव अथवा महेश्वर पूज्यनीय है अर्थ है।

[**व्युत्पत्ति** - 1) प्रकृत सूत्र का अर्थ- अब जिस सूत्र के व्याख्यान का विषय है वह। यहाँ जैसे - अतो रोरप्लुतादप्लुते प्रकृत सूत्र है।

2) ससजुषो रुः (8.2.66) असिद्धकाण्डीय सूत्र है। उससे रुः विहित है। अतो रोरप्लुतादप्लुते (6.1.103) सूत्र सिद्ध काण्ड में है। इसकी दृष्टि से रुत्वं असिद्ध ही है। फिर भी यदि यह रुत्व असिद्ध

ध्यान दें:

हो तो व्याकरण शास्त्र में अन्यत्र कहीं पर भी सिद्ध रुत्व नहीं है। उससे अतो रोरप्लुतादप्लुते सूत्र व्यर्थ हो जाएगा। परन्तु पाणिनि मुनी का कोई भी वचन व्यर्थ नहीं है। अत: वचन प्रमाण्य से वह असिद्ध भी सिद्ध है ऐसा ग्रहण करता है।]

## 9.6 हशि च॥ ( 6.1.110 )

**सूत्रार्थ** - अप्लुत अत के पर रु के स्थान में उत् होता है हश परे।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद है। हशि (7/1), च यह अव्ययपद है। संहितायाम् अधिकार है। अतो रोरप्लुतादप्लुते सूत्र से अप्लुताद् (5/1), अत: (5/1), रो: (6/1) पदों की अनुवृति है। न प्लुत: अप्लुत:, तस्माद् अप्लुताद् इति नञ्-तत्पुरुष: समास:। ऋत उत् सूत्र से उत् प्रथमान्त पद की अनुवृति है। पदयोजना- संहितायाम् अप्लुताद् अत: रो: उत् हशि च। अत: यहाँ दिग्योग पञ्चमी है। उससे अत: से पर का यह अर्थ प्राप्त होता है। हशि यह पर सप्तमी है। उससे हश का अव्यवहित पूर्व का यह अर्थ है। उसी को ही कहते हैं हश परे। रो: यहाँ स्थान षष्ठी। उससे अर्थ रु के स्थान में अर्थ प्राप्त होता है। सूत्रार्थ - अप्लुत अत: से पर रु के स्थान में उत् होता है हश परे। अर्थात् ह्रस्व अकार से पर रु के स्थान में ह्रस्व उकार होता है हश परे।

**उदाहरण** - शिवो वन्द्य:।

**सूत्रार्थ समन्वय** - शिव शब्द से प्रथमा विभक्ति में एकवचन का प्रत्यय सुप् होता है तब शिवस् स्थिति होती है। इसी प्रकार वन्द-धातु से कृत्य प्रत्यय योग में वन्द्य: रूप बनता है। दोनों के मिलान करने से शिवस् वन्द्य: स्थिति होती है। शिवस् इसके अन्त में सुप् है। अत: सुप्तिङन्तं पदम् सूत्र से उसकी पद संज्ञा होती है। उसके अन्त में सकार है। अत: पदान्त सकार को ससजुषो रु: सूत्र से रु: होता है। उसका उकार अनुनासिक है। अत: उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र से उसकी इत्संज्ञा होती है। उसके बाद तस्य लोप: सूत्र से उँकार का लोप होता है। इस प्रकार इत्संज्ञाकरने और उसका लोपकरने पर लघु रूप से प्रकट करते हैं - 'अनुबन्धअ लोप होने पर'। लोप करने पर शिवर् वन्द्य: स्थिति होती है। वहां अब शिवशब्द के वकार से पर अप्लुत अत् (ह्रस्व अकार) है। उससे पर हश् वकार है। अत: प्रकृत सूत्र से रु को उत् होता है। तब शिव उ वन्द्य: स्थिति होती है। यहाँ शिवशब्द के वकार से पर अवर्ण है। उससे पर अच् उकार है। अत: आद् गुण: सूत्र से अकार-उकार दोनों पूर्व पर के स्थान में स्थान आन्तर्य से ओकार होता है। उससे शिवो वन्द्य: साधु वाक्य बनता है।

**प्रश्न** - कुछ पूछते हैं कि शिव: वन्द्य: स्थिति में विसर्ग सकार को किस सूत्र से अथवा शिव: वन्द्य: इसको शिवो वन्द्य: सन्धि किस सूत्र से होती है।

**उत्तर** - शिव: रूप पृथक् साधित है। उससे एक एक पद पृथक् पृथक् संस्कृत, निर्मित है। उन निर्मित पदों को लेकर वाक्य की रचना करते हैं। अत: यह स्थिति पदान्वाख्यानपक्ष में ही सम्भव होती है, वाक्यान्वाख्यानपक्ष में नहीं होती है। शिव: वन्द्य: स्थिति में विसर्ग का परिवर्तन करने के लिए सूत्र नहीं है। विसर्जनीयस्य स: सूत्र से विसर्ग को सकार खर परे ही होता है। हश् परे विसर्ग का परिवर्तन के लिए कोई भी सूत्र नहीं है। अत: शिव: वन्द्य: है तो शिवो वन्द्य: उसका परिवर्तन नहीं कर सकते है। परन्तु जैसे शिव: वन्द्य: यह प्रयोग कर सकते हैं वैसे ही शिवो वन्द्य: भी प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु इसका वहां जाना अथवा उसका यहाँ आना असम्भव है। उससे शिवो वन्द्य: इसकी सन्धि विच्छेद शिवस् वन्द्य: ही करनी चाहिए।

ध्यान दें:



## 9.7 भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य योऽशि॥ ( 8.3.17 )

**सूत्रार्थ** - भो-भगो-अघो-अपूर्व के रु को यादेश अश परे होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। सूत्र में तीन पद हैं। भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य यः अशि सूत्र के पदों में विद्यमान का सन्धि विच्छेद है। भोः च भगोः च अघोः च अः च इति भो-भगो-अघो-आः इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमासः। भो-भगो-अघो-आः पूर्वे यस्मात् सः भो-भगो-अघो-अपूर्वः इति बहुव्रीहिसमासः। भोस् भगोस् अघोस् ये चादिगण में पढ़े हुए सकारान्त निपात है। यः प्रथमान्त पद है। अशि सप्तम्यन्त पद है। रोः सुपि सूत्र से रोः षष्ठ्यन्त पद की अनुवृति है। सूत्रार्थ होता है - भो-भगो-अघो-अपूर्व के रु को यादेश अश परे होता है। अर्थात् रु के पूर्व यदि भो भगो अघो और अवर्ण है किन्तु रु पर यदि अश् है तो रु के स्थान में यकार आदेश होता है।

भोस् भगोस् अघोस् ये चादिगण में पढ़े हुए सकारान्त निपात कहलाते हैं। साधारण सम्बोधन में भोस् इसका प्रयोग होता है। भगवतः का सम्बोधन में भगोस् प्रयोग होता है। पापिनः का सम्बोधन में अघोस् प्रयोग होता है।

**उदाहरण** - देवा इह। देवायिह।

**सूत्रार्थ समन्वय** - (अवर्ण पूर्व के यह उदाहरण है।) देव शब्द से सम्बोधन के अर्थ में प्रथमा बहुवचन के जस्-प्रत्यय का विधान करने की प्रक्रिया से देवास् रूप प्राप्त होता है। उससे पर इह अव्यय के प्रयोग से देवास् इह स्थिति होती है। देवास् के अन्त में सुप् है। अतः सुप्तिङन्तं पदम् सूत्र से उसकी पद संज्ञा होती है। उसके अन्त में सकार है। अतः पदान्त के सकार को ससजुषो रुः सूत्र से रुः होता है। उसका उकार अनुनासिक है। अतः उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र से उसकी इत्संज्ञा होती है। उसके बाद तस्य लोपःसूत्र से उकार का लोप होता है। लोप करने पर देवार् इह स्थिति होती है। वहां अब जो रुः है उससे पूर्व अवर्ण आकार है। उससे पर अश् इकार है। अतः प्रकृत सूत्र से रु के स्थान में यकार होता है। उससे देवाय् इह स्थिति होती है। तब लोपः शाकल्यस्य सूत्र से अवर्ण पूर्व यकार का विकल्प से लोप होता है। लोपपक्ष में देवा इह, लोप अभावपक्ष में देवायिह दोनों रूप सिद्ध होते हैं।

भोस् देवाः। भगोस् नमस्ते। अघोस् याहि। इन तीनों उदाहरण में पदान्त में सकार है। अतः ससजुषो रुः सूत्र से रुत्व और अनुबन्धलोप करने पर भोर् देवाः। भगोर् नमस्ते। अघोर् याहि। स्थिति होती है। वहां अब रेफवर्ण का रु है। उससे पूर्व भो भगो अघो शब्द हैं। उससे पर अश् दकार, नकार और यकार है। अतः प्रकृतसूत्र से रु के स्थान में यकार का विधान करते हैं। उससे भोय् देवाः। भगोय् नमस्ते। अघोय् याहि। स्थिति होती है। तब -

## 9.8 हलि सर्वेषाम्॥ ( 8.3.22 )

**सूत्रार्थ** - भो-भगो-अघो-अपूर्व के यकार का लोप होता है हल परे।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। दो पद है। हलि (7/1), सर्वेषाम् यहाँ सर्व इस सर्वनाम का षष्ठी बहुवचन है। भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य योऽशि सूत्र से भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य पदों की अनुवृति है। भोः च भगोः च अघोः च अः च इति भो-भगो-अघो-आः इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमासः। भो-भगो-अघो-आः पूर्वे यस्मात् सः भो-भगो-अघो-अपूर्वः इति बहुव्रीहिसमासः। भोस् भगोस् अघोस् ये चादिगण में पढ़े हुए सकारान्त निपात है। व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य सूत्र से व्योः पद से यकार इस एकांश की अनुवृति है। लोपः शाकल्यस्य सूत्र से लोपः प्रथमान्त पद की अनुवृति है। पद योजना - भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य

ध्यान दें:

यस्य लोपः हलि सर्वेषाम्। सूत्रार्थ - भो-भगो-अघो-अपूर्व के यकार का लोप होता है हल परे। अर्थात् यकार से पूर्व यदि भो भगो अघो और अवर्ण है किन्तु यकार से पर यदि हल् है तो यकार को लोप आदेश होता है। सर्वेषाम् इसका तात्पर्य है की सभी व्याकरण आचार्यो की इस विषय पर सहमति है कि यकार का लोप होता ही है। लोप नित्य है।

**उदाहरण** - भो देवाः। भगो नमस्ते। अघो याहि।

**सूत्रार्थ समन्वय** - ऊपर लिखित सूत्र में भोय् देवाः। भगोय् नमस्ते। अघोय् याहि। स्थिति होती है। अब यहाँ यकार से पूर्व भो भगो अघो शब्द है । उस यकार से ही पर हल दकार, नकार और यकार है। अतः प्रकृत सूत्र से यकार का नित्य लोप करने पर भो देवाः। भगो नमस्ते। अघो याहि। इत्यादि साधु वाक्य सिद्ध होते हैं।

## यहाँ यह संग्रह

पदान्त सकार के रुत्व को ससजुषो रुः एक ही सूत्र द्वारा प्राधान्य से विधान करते हैं। सकार से पर क्या है, यहा चिन्ता नहीं है। जब सकार को रुत्व होता है तब रु के पूर्व और पर कौन-सा वर्ण अथवा कौन-सा शब्द है उसके विषय में बताते हैं।

1) रु के पूर्व अत्, पर अत् (अ + र् + अ ) तब रु को उत् होता है - (अ + उ + अ)। उससे पर प्रथमा अकार के साथ उकार का गुण होता है - (ओ + अ)। उसके बाद पर को पूर्व रूप होता है - (ओऽ)। (उदा. - देवर् अपि, रामर् अपि। - देव उ अपि, राम उ अपि। देवो अपि, रामो अपि। देवोऽपि, रामोऽपि)

2) रु के पूर्व भो भगो अघो आ, पर अश् है (भो भगो अघो आ + र् + अश्) तब रु को यकार होता है - (भो भगो अघो आ + य् + अश)। (उदा. - देवार् आस्तिकाः। दानवार् नास्तिकाः। - देवाय् आस्तिकाः। दानवाय् नास्तिकाः।)

3) पदान्त यकार से पूर्व भो भगो अघो आ, पर अच् है (भो भगो अघो आ + य् + अच्) तब यकार का विकल्प से लोप होता है - (भो भगो अघो आ + य् + अच्) / (भो भगो अघो आ + . .. + अच्)। इस प्रकार यह ही अन्तिम स्थिति है। इससे परे किसी भी सूत्र से किसी भी कार्य का विधान नहीं करते हैं। (उदा. - देवाय् आस्तिकाः। - देवायास्तिकाः / देवा आस्तिकाः।)

4) पदान्त यकार से पूर्व भो भगो अघो आ, पर हल् (वस्तुत हश्) है (भो भगो अघो आ + य् + हश्) तब यकार को नित्य लोप होता है - (भो भगो अघो आ + ... + हल्) (उदा. - दानवाय् नास्तिकाः। - दानवा नास्तिकाः।)

5) रु के पूर्व इच् पर अश् है (इर् अ, इर् आ, उर् इ, एर् इ,) तब रु के स्थान में भी कोई परिवर्तन नहीं होता है। हरिर् अत्र- हरिरत्र इत्यादि स्थल में।

6) लोपः शाकल्यस्य सूत्र से अश परे यकार और वकार का विकल्प से लोप करते हैं। परन्तु हलि सर्वेषाम् सूत्र से यकार का हल परे नित्य लोप का विधान करते हैं। अश्-मध्य में हश् है। हल्-मध्य में हश् है। दोनों में हश् साधारण है। लोपः शाकल्यस्य सूत्र से हश परे यलोप विकल्प से प्राप्त है, हलि सर्वेषाम् सूत्र से नित्य प्राप्त है। परन्तु हलि सर्वेषाम् सूत्र में सर्वेषाम कहा है। अतः शाकल्यमत में भी हश् परे लोप ही होता है लोप अभाव नहीं परन्तु हश् परे वकार का लोप विकल्प से होता है ऐसा जानना चाहिए।

ध्यान दें:



सारणी में प्रदर्शित उदाहरण का निरीक्षण करो।

| 1 | 2 | 3 | 4 |
|---|---|---|---|
| देवस् अपि | देवस् इह | देवास् एव | देवास् वन्द्याः |
| देवर् अपि | देवर् इह | देवार् एव | देवार् वन्द्याः |
| देव उ अपि | देवय् इह | देवाय् एव | देवाय् वन्द्याः |
| देवो अपि | **देवयिह ✓** | **देवायेव ✓** | **देवा वन्द्याः** |
| देवोऽपि | **देव इह ✓** | **देवा एव ✓** | |
| **5** | **6** | **7** | **8** |
| कविस् अपि | कविस् याति | विष्णुस् आयाति | विष्णुस् जयतु |
| कविर् अपि | कविर् याति | विष्णुर् आयाति | विष्णुर् जयतु |
| **कविर् अपि** | **कविर्याति** | **विष्णुरायाति** | **विष्णुर्जयत** |
| **9** | **10** | **11** | **12** |
| हरेस् इव | हरेस् नाम | विष्णोस् इच्छा | विष्णोस् दया |
| हरेर् इव | हरेर् नाम | विष्णोर् इच्छा | विष्णोर् दया |
| **हरेरिव** | **हरेनार्म** | **विष्णोरिच्छा** | **विष्णोर्दया** |
| **13** | **14** | **15** | **16** |
| देवैस् अपि | देवैस् गीतम् | गौस् एव | गौस् गच्छति |
| देवैर् अपि | देवैर् गीतम् | गौर् एव | गौर् गच्छति |
| **देवैरपि** | **देवैर्गीतम्** | **गौरेव** | **गौर्गच्छति** |

## 9.9 रो रि॥ ( 8.3.14 )

**सूत्रार्थ** - रेफ परे रेफ का लोप होता है।

**सूत्रव्याख्या** - विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद है। रः रि सूत्र में स्थित संधि का विच्छेद है। रः (6/1), रि (7/1)। ढो ढे लोपः सूत्र से लोपः प्रथमान्त पद की अनुवृति है। तब सूत्रार्थ - रेफ परे रेफ का लोप होता है।

उदाहरण को आगे के सूत्र में प्रदर्शित किया है।

## 9.10 ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः॥ ( 6.3.110 )

**सूत्रार्थ** - लोप निमित्त ढ और रेफ परे पूर्व का अण दीर्घ होता है।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। इस सूत्र में चार पद है। ढ्रलोपे (7/1), पूर्वस्य (6/1), दीर्घः

ध्यान दें:

(1/1), अण: (6/1)। यहाँ अण् पूर्वणकार से। वहा समास: - द् च र: च द्वौ इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास:। द्वौ लोपयति इति द्वलोप: इति उपपदसमास:। ढकार-रेफ लोप का निमित्तभूत होने पर द्वलोपे पद का अर्थ है। तब सूत्रार्थ- ढलोप और रेफलोप के निमित्तभूत पूर्व का अण् दीर्घ होता है। ढकार लोप का निमित्त अपर ढकार ही होता है, ढो ढे लोप: सूत्र से जाना जाता है। रेफ लोप का निमित्त अपर रेफ ही होता है रो रि सूत्र से जाना जाता है। अण् - अ इ उ तीन है। सूत्र का सुबोधार्थ- जिस ढकार के परे ढकार का लोप, जिस रेफ के परे रेफ का लोप हुआ, वह ढकार अथवा रेफ यदि परे हो तो उससे पूर्व का अण-अ इ उ इनको दीर्घ होता है।

**उदाहरण** - पुना रमते। हरी रम्य:। शम्भू राजते।

**सूत्रार्थ समन्वय** - पुनर् रेफान्त अव्यय है। पुनर् रमते वाक्य में स्थित रेफ परे रेफ है। अत: रो रि सूत्र से पूर्वरेफ का लोप होता है। तब पुन रमते स्थिति होती है। यहाँ अब रेफ लोप का निमित्त भूत रेफ है। उस रेफ परे होने पर उससे पूर्व अण् अकार को प्रकृत सूत्र से दीर्घ होता है। अत: पुना रमते साधु वाक्य बनता है।

हरिस् रम्य: स्थिति में ससजुषो रु: सूत्र से पदान्त हरिस्-शब्द के सकार को रुत्व करने पर हरि रम्य: स्थिति होती है। वहां रेफ परे रेफ है। अत: रो रि सूत्र से प्रथम रेफ का लोप होता है। तब हरि रम्य: स्थिति होती है। अब यहाँ रेफ लोप का कारण रेफ है। अत प्रकृत सूत्र से उससे पूर्व का अण् इकार को दीर्घ होता है। तब हरी रम्य: साधु वाक्य बनता है।

शम्भुस् राजते स्थिति में ससजुषो रु: सूत्र से पदान्त शम्भुस्-शब्द के सकार को रुत्व करने पर शम्भुर् राजते स्थिति होती है। वहां रेफ परे रेफ है। अत: रो रि सूत्र से प्रथम रेफ का लोप होता है। तब शम्भु राजते स्थिति होती है। यहाँ अब रेफ लोप का कारण रेफ है। अत: प्रकृत सूत्र से उससे पूर्व का अण उकार को दीर्घ होता है। तब शम्भू राजते साधु वाक्य बनता है।

## 9.11 एतत्तदो: सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि॥ ( 6.1.128 )

**सूत्रार्थ** - ककार रहित एतत् तद् से परे जो सु उसका लोप हल् परे होता है नञ् समास होने पर नहीं।

**सूत्र व्याख्या** - विधि सूत्र है। सूत्र में पांच पद हैं। एतत्तदो: (६/२), सुलोप: (१/१), अको: (6/2), अनञ्समासे (7/1), हलि (7/1)। समास: - एतत् च तत् च एतत्तदौ इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास:। तयो: एतत्तदो:। सो: लोप: सुलोप: इति षष्ठी तत्पुरुष:। न नञ्समास: अनञ्समास: इति नञ्तत्पुरुष: समास:। तस्मिन् अनञ्समासे। अविद्यमान: क् ययो: तौ अकौ इति बहुव्रीहिसमास:। तयो: अको:। सूत्रार्थ- ककार रहित एतत्द से परे जो सु उसका लोप हल परे होता है, नञ् समास होने पर नहीं। अर्थात् ककार रहित एतत्-सर्वनाम का और तत्-सर्वनाम का हो सु उसका लोप होता है हल परे। परन्तु नञ् समास हो पर सुलोप नहीं होता है।

**उदाहरण** - स शम्भु:। एष विष्णु:।

**सूत्रार्थ समन्वय** - तत्-सर्वनाम का सुप्रत्यय योग से और प्रक्रिया से सस् शम्भु: स्थिति होती है। वहां तद का सुप्रत्यय हल् शकार परे है। अत: प्रकृत सूत्र से तद का सुलोप करने पर स शम्भु: साधु वाक्य बनता है।

# पाठ-9

## हल् सन्धि में अनुस्वार सन्धि और विसर्ग सन्धि

ध्यान दें:

एतत्-सर्वनाम का सुप्रत्यय योग से और प्रक्रिया से एषस् विष्णु: स्थिति होती है। एतद के सुप्रत्यय का हल वकार परे है। अत: प्रकृत सूत्र से एतद का सुलोप करने पर एष विष्णु: साधु वाक्य बनता है।

### पाठगत प्रश्न-2

13. अतो रोरप्लुतादप्लुते सूत्र का अर्थ लिखें?
14. अतो रोरप्लुतादप्लुते सूत्र में स्थानी कौन है और आदेश कौन है?
15. रु के पूर्व अत् और पर अत् है तो कौन-सा सूत्र प्रवृत होता है?
16. रु के पूर्व आकार और पर आकार है तो कौन-सा सूत्र प्रवृत होता है?
17. हलि सर्वेषाम् सूत्र से क्या होता है?

### पाठ सार

इस पाठ में हल्सन्धि प्रकरण का अङ्गभूत अनुस्वार सन्धि प्रकरण का विस्तार सहित उल्लेख किया है। संहिता में विषयीभूत हल का अव्यवहितपूर्व मान्त पद है तो मकार को अनुस्वार होता है मोऽनुस्वार: सूत्र से। इससे जाना जाता है कि इस सूत्र से पदान्त मकार को अनुस्वार होता है।

नश्चापदान्तस्य झलि सूत्र से अपदान्त में विद्यमान नकार और मकार को अनुस्वार होता है झल् परे। अत: मोऽनुस्वार: और नश्चापदान्तस्य झलि दोनों सूत्र का कार्य क्षेत्र अच्छी प्रकार से जान लेना चाहिए।

इन दोनों सूत्र से जिस अनुस्वार का विधान करते हैं, उसका पुन: आगे कहे हुए कार्य होते हैं।

अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण: सूत्र अपदान्त अनुस्वार का यय परे परसवर्ण नित्य करता है। पदान्त अनुस्वार का यय परे विकल्प से परसवर्ण वा पदान्तस्य सूत्र करता है।

विसर्ग की अनेक गति है। वहां पदान्त सकार को रुत्व ससजुषो रु: एक ही सूत्र से प्रधानता से विधान करते हैं। सकार से परे क्या है इसकी चिन्ता यहाँ नहीं है। जब सकार को रुत्व होता है तब रु के पूर्व और पर कौन-कौन से वर्ण अथवा कौन-से शब्द आते हैं, इस विषय में वहां सूत्र में यह विषय स्पष्ट प्रतिपादित किया है।

### पाठान्त प्रश्न

नीचे कुछ प्रश्न दिये जाते हैं। उनका उत्तर प्रमुख रूप से दीर्घ ही है। सूत्र व्याख्यान और रूप साधन दोनों व्याकरण प्रश्न के मुख्य प्रकार होते हैं। अच्सन्धि प्रकरण में योग्यता वर्धनांश में एक सूत्र का व्याख्यान सहित विस्तार दिखाया है। उसको देखकर और समझकर इन सूत्रों का व्याख्यान करना चाहिए।

झलां जश् झशि सूत्र में रूप साधन कैसे करना चाहिए। रूप साधन के अनेक प्रकार विस्तार सहित प्रदर्शित किये हैं। अत: उस स्थल को देखकर और समझकर अन्य रूपों के साधने का प्रयास करना चाहिए। प्रथम लघु रूप साधनीय। उसके बाद क्रमश: विस्तार करना चाहिए।

1. मोऽनुस्वार: सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण: सूत्र की व्याख्या कीजिए।

ध्यान दें:

3. अतो रोरप्लुतादप्लुते सूत्र की व्याख्या कीजिए।

4. हशि च सूत्र की व्याख्या कीजिए।

5. हलि सर्वेषाम् सूत्र की व्याख्या कीजिए।

6. स्तम्भ में स्थित परस्पर सम्बद्धों का मिलान कीजिए। क-स्तम्भ में सूत्र है। ख-स्तम्भ में स्थिति है। किस सूत्र से कौन-सी स्थिति होती है मिलान कीजिए।

| **क-स्तम्भ** | **ख-स्तम्भ** |
|---|---|
| 1) मोऽनुस्वारः | क) पुना रमते |
| 2) नश्चापदान्तस्य झलि | ख) त्वं रामः |
| 3) वा पदान्तस्य | ग) पुन रमते |
| 4) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः | घ) देवा गच्छन्ति |
| 5) अतो रोरप्लुतादप्लुते | ङ) शान्तः |
| 6) हशि च | च) शिवं प्रणमामि |
| 7) हलि सर्वेषाम् | छ) रामउ हसति |
| 8) रो रि | ज) रामउ अस्ति |
| 8) ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः | झ) आक्रंस्यते |

7. स्तम्भ में स्थित परस्पर सम्बद्ध का मिलान कीजिए। क-स्तम्भ में सूत्र है। ख-स्तम्भ में उन सूत्रों का विधेय है। किस सूत्र से किसका विधान होता है, मिलान कीजिए।

| **क-स्तम्भ** | **ख-स्तम्भ** |
|---|---|
| 1) खरि च | क) परसवर्णः |
| 2) नश्चापदान्तस्य झलि | ख) यलोपः |
| 3) तोः षि | ग) रलोपः |
| 4) ससजुषो रुः | घ) अनुस्वारः |
| 5) वा पदान्तस्य | ङ) च |
| 6) अतो रोरप्लुतादप्लुते | च) दीर्घः |
| 7) वा शरि | छ) उत् |
| 8) रो रि | ज) रुः |
| 9) ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः | झ) विसर्जनीयः |
| 10) हलि सर्वेषाम् | ञ) ष्टुत्वनिषेधः |

8. यहाँ नीचे प्रारम्भ स्थिति देते हैं और जो रूप साधनीय है वह भी देते हैं। उन प्रदत्त रूपों को सूत्र सहित सिद्ध कीजिए।

# पाठ-9

## हल् सन्धि में अनुस्वार सन्धि और विसर्ग सन्धि

ध्यान दें:

| प्रारम्भ | साध्य रूप | प्रारम्भ | साध्य रूप |
|---|---|---|---|
| भूमिम् खनति | भूमिङ्खनति | तस्यास् मतिः | तस्या मतिः |
| आम्रम् चूषति | आम्रञ्चूषति | गौस् गतः | गौर्गतः |
| नदीम् तरति | नदीन्तरति | कास् धावन्ति | का धावन्ति |
| रामम् भज | रामं भज | सस् अस्ति | सोऽस्ति |
| रामस् हसति | रामो हसति | सस् पश्यति | स पश्यति |
| रामस् अत्र | रामोऽत्र | एषस् अस्ति | एषोऽस्ति |
| रामस् आगतः | राम आगतः | एषस् पश्यति | एष पश्यति |
| मन्दस् बद्धः | मन्दो बद्धः | कस् अयम् | कोऽयम् |
| बालास् हि | बाला हि | काकस् रौति | काको रौति |
| बालास् अत्र | बाला अत्र | शम्भुस् राजा | शम्भू राजा |
| मनस् रथः | मनोरथ | मनस् मोदनम् | मनोमोदनम् |

## पाठगत प्रश्नोत्तर

**उत्तर भाग-1**

1. मोऽनुस्वारः यहाँ पदान्त मकार को अनुस्वार हल परे।
2. अपदान्त मकार को अनुस्वार नश्चापदान्तस्य झलि सूत्र से ।
3. अपदान्त मकार को यम परे अनुस्वार मोऽनुस्वारः सूत्र से।
4. त्वम् रामः यहाँ मकार को अनुस्वार मोऽनुस्वारः सूत्र से ।
5. त्वम् हरिः यहाँ मकार को अनुस्वार मोऽनुस्वारः सूत्र से।
6. फलम् रोचते यहाँ पर मोऽनुस्वारः सन्धिसूत्र प्रवृत होता है।
7. हरिं वन्दे यहाँ पर वा पदान्तस्य सन्धिसूत्र प्रवृत होता है।
8. अपदान्त अनुस्वार को यय परे परसवर्ण होता है। सूत्र अनुस्वारस्य ययि परसर्वणः।
9. 3)
10. 2)
11. 1)
12. 2)

**उत्तर भाग-2**

13. अतो रोरप्लुतादप्लुते सूत्र का अर्थ - अप्लुत अत से परे रु के स्थान में उत् होता है अप्लुत अत परे।

ध्यान दें:

14. अतो रोरप्लुतादप्लुते सूत्र में स्थानी हि अप्लुत से अत पर रेफ जो अप्लुत अत से अव्यवहितपूर्व है और आदेश उत् है।

15. रु से पूर्व अत् और पर अत् है तो अतो रोरप्लुतादप्लुते सूत्र प्रवृत होता है।

16. रु से पूर्व आकार और पर आकार है तो भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य योऽशि सूत्र प्रवृत होता है।

17. हलि सर्वेषाम् सूत्र से भो-भगो-अघो-अपूर्व यकार का लोप होता है हल परे।

## प्रथम पुस्तक में स्थित सूत्रों की सूची

### ( अकारादिक्रम से )

**पाठ में स्थान - सूत्र - अष्टाध्यायीक्रम**

[7.8] अकः सवर्णे दीर्घः।। (6.1.97)

[5.13] अचश्च।। (1.2.28)

[6.4] अचो रहाभ्यां द्वे।। (8.4.46)

[4.13] अचोऽन्त्यादि टि।। (1.1.64)

[3.2] अणुदित् सवर्णस्यव।। (1.1.69)

[9.5] अतो रोरप्लुतादव।। (6.1.109)

[2.10] अदर्शनं लोपः।। (1.1.9)

[7.14] अदसो मात्।। (1.1.12)

[4.2] अदेङ् गुणः।। (1.1.2)

[6.6] अनचि च।। (8.4.47)

[9.3] अनुस्वारस्य ययिव।। (8.4.57)

[5.6] अनेकाल्शित् सर्वस्य।। (1.1.55)

[4.11] अपृक्त एकाल्व।। (1.2.41)

[5.4] अलोऽन्त्यस्य।। (1.1.52)

[4.14] अलोऽन्त्यात्व।। (1.1.65)

[2.1] आदिरन्त्येन सहिता।। (1.1.71)

[2.5] आदिर्ञिटुडवः।। (1.3.5)

[5.7] आदेः परस्य।। (1.1.54)

[7.2] आद् गुणः।। (6.1.84)

[5.1] आद्यन्तौ टकितौ।। (1.1.46)

[5.12] इको गुणवृद्धी।। (1.1.3)

[6.2] इको यणचि।। (6.1.77)

[4.23] इग्यणः सम्प्रसारणम्।। (1.1.44)

[7.13] ईदूदेद् द्विवचनंव।। (1.1.11)

[2.12] उच्चैरुदात्तः।। (1.2.29)

[8.14] उदः स्थास्तम्भोः।। (8.4.60)

[2.2] उपदेशेऽजनुनासिकव।। (1.3.2)

[4.18] उपसर्गाः क्रियायोगे।। (1.4.59)

[7.6] उपसर्गाद् ऋतिव।। (6.1.88)

[7.3] उरण् रपरः।। (1.1.50)

[2.11] ऊकालोऽज्व।। (1.2.27)

[7.1] एकः पूर्वपरयोः।। (6.1.81)

[7.9] एङः पदान्तादति।। (6.1.105)

[7.7] एङि पररूपम्।। (6.1.91)

[6.8] एचोऽयवायावः।। (6.1.75)

[9.11] एतत्तदोः सुलोपोव।। (6.1.128)

[7.5] एत्येधत्यूठ्सु।। (6.1.86)

[8.2] खरवसानयोव।। (8.3.15)

[8.7] खरि च।। (8.4.54)

[4.19] गतिश्च।। (1.4.60)

[5.5] ङिच्चा।। (1.1.53)

[4.16] चादयोऽसत्त्वे।। (1.4.57)

[2.7] चुटू।। (1.3.7)

[8.16] झयो होऽन्यतरस्याम्।। (8.4.61)

[8.15] झरो झरि सवर्णे।। (8.4.64)

[8.6] झलां जशोऽन्ते।। (8.2.39)

[6.7] झलां जश् झशि।। (8.4.53)

# पाठ-9

## हल् सन्धि में अनुस्वार सन्धि और विसर्ग सन्धि

ध्यान दें:

[9.10] ढ्रलोपे पूर्वस्यव।। (6.3.110)
[3.3] तपरस्तत्कालस्य।। (1.1.70)
[5.9] तस्मादित्युत्तरस्य।। (1.1.67)
[5.8] तस्मिन्निति निर्दिष्टेव।। (1.1.66)
[2.9] तस्य लोपः।। (1.3.9)
[3.1] तुल्यास्यप्रयत्नंव।। (1.1.9)
[8.11] तोः षि।। (8.4.42)
[8.13] तोर्लि।। (8.4.59)
[4.10] दीर्घं च।। (1.4.12)
[7.12] दूराद्धूते च।। (8.2.84)
[8.10] न पदान्ताट्टोरनाम्।। (8.4.41)
[2.4] न विभक्तौ तुस्माः।। (1.3.4)
[9.2] नश्चापदान्तस्यव।। (8.3.24)
[7.15] निपात एकाजनाङ्।। (1.1.14)
[2.13] नीचैरनुदात्तः।। (1.2.30)
[4.6] परः सन्निकर्षःव।। (1.4.109)
[7.11] पूर्वत्रासिद्धम्।। (8.2.1)
[4.15] प्राग्रीश्वरान्निपाताः।। (1.4.56)
[4.17] प्रादयः।। (1.4.58)
[7.16] प्लुतप्रगृह्यावा।। (6.1.121)
[4.3] भूवादयो धातवः।। (1.3.1)
[9.7] भो-भगो-अघोव।। (8.3.17)
[5.2] मिदचोऽन्त्यात् परः।। (1.1.47)
[2.15] मुखनासिकावचनोव।। (1.1.8)
[9.1] मोऽनुस्वारः।। (8.3.23)
[5.10] यथासंख्यमनुदेशःव।। (1.3.10)
[8.12] यरोऽनुनासिकेव।। (8.4.44)
[4.24] यस्मात् प्रत्ययव।। (1.4.13)
[4.21] यू स्त्र्याख्यौ नदी।। (1.4.3)
[3.5] येन विधिस्तदन्तस्य।। (1.1.72)
[9.9] रो रि।। (8.3.14)
[2.8] लशक्वतद्धिते।। (1.3.8)
[7.10] लोपः शाकल्यस्य।। (8.3.19)
[9.4] वा पदान्तस्य।। (8.4.58)
[8.4] वा शरि।। (8.3.35)
[6.9] वान्तो यि प्रत्यये।। (6.1.76)
[5.14] विप्रतिषेधे परंव।। (1.4.2)
[4.5] विरामोऽवसानम्।। (1.4.110)
[8.3] विसर्जनीयस्य सः।। (8.3.34)
[4.1] वृद्धिरादैच्।। (1.1.1)
[7.4] वृद्धिरेचि।। (6.1.85)
[8.17] शश्छोऽटि।। (8.4.62)
[8.8] शात्।। (8.4.43)
[4.22] शेषो ।।यसखि।। (1.4.7)
[2.6] षः प्रत्ययस्य।। (1.3.6)
[5.3] षष्ठी स्थानेयोगा।। (1.1.49)
[8.9] ष्टुना ष्टुः।। (8.4.40)
[4.4] सनाद्यन्ता धातवः।। (3.1.32)
[2.14] समाहारः स्वरितः।। (1.2.31)
[6.3] संयोगान्तस्य लोपः।। (8.2.23)
[4.9] संयोगे गुरु।। (1.4.11)
[8.1] ससजुषो रुः।। (8.2.66)
[6.1] संहितायाम्।। (6.1.72)
[4.12] सुप्तिङन्तं पदम्।। (1.4.14)
[8.5] स्ताः श्चुना श्चुः।। (8.4.39)
[5.11] स्थानेऽन्तरतमः।। (1.1.50)
[3.4] स्वं रूपं शब्दस्यावा।। (1.1.68)
[4.20] स्वरादिनिपातमव्ययम्।। (1.1.37)
[2.3] हलन्त्यम्।। (1.3.3)
[9.8] हलि सर्वेषाम्।। (8.3.22)
[6.5] हलो यमां यमिव।। (8.4.64)
[4.7] हलोऽनन्तराःव।। (1.1.7)
[9.6] हशि च।। (6.1.110)
[4.8] ह्रस्वं लघु।। (1.4.10)